MAPSY 08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

Developmental Psychology

विकासात्मक मनोविज्ञान

MAPSY 08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

संरक्षक	अध्यक्ष
प्रो. अशोक शर्मा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर**
कुलपति	निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

** संयोजक	* संयोजक
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ) एल.आर. गुर्जर	**प्रो. एच. बी. नंदवाना**
निदेशक (अकादमिक)	निदेशक, सतत शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. विजयलक्ष्मी चौहान (सेवानिवृत्त)	**प्रो.आशा हिंगर (सेवानिवृत्त)**
मनोविज्ञान विभाग	मनोविज्ञान विभाग
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर	राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
प्रो. दामीना चौधरी (सेवानिवृत्त)	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. कीर्ति सिंह**
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा
डॉ. पतंजलि मिश्र	**डॉ. अखिलेश कुमार**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

*डॉ. रजनी रंजन सिंह ,सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 13.06.2015 तक

** डॉ. अनिल कुमार जैन, सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 14.06.2015 से निरन्तर

समन्वयक एवं सम्पादक मण्डल

समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार जैन
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

विषय वस्तु एवं भाषा संबंधीसम्पादन

डॉ. अनिल कुमार जैन
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. अखिलेश कुमार
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखन

1 **डॉ .प्रदीप देहल (इकाई 1,2)**
शिक्षा विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला ,
(हिमाचल प्रदेश)

2 **डॉ. गीता चतुवेदी (इकाई 3,4)**
महाराणा प्रताप टी.टी. कॉलेज ,
कोटा

2 **डॉ. मूल चन्द मीणा (इकाई 5)**
महाराणा प्रताप टी.टी. कॉलेज ,
कोटा

3 **डॉ. अखिलेश कुमार (इकाई 6,7)**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

4 **श्री रश्मि रंजन (इकाई 8,9,10)**
बैकुंठ टीचर ट्रेनिंग कॉलेज, अमलोरी,
सीवान (बिहार)

5 **डॉ सुरेंद्र कुमार शर्मा (इकाई 11,12, 13)**
ICDEOL
शिक्षा विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला ,
(हिमाचल प्रदेश)

6 **डॉ डॉली गांधी (इकाई 14,15,16)**
मनोविज्ञान विभाग
महाराणा प्रताप कृषि विश्वविद्यालय,
उदयपुर

आभार

प्रो. विनय कुमार पाठक
पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. एल.आर. गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. करण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

उत्पादन 2015, ISBN : 978-81-8496-512-4

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि.वि., कोटा, की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व.म.खु.वि.वि. , कोटा के लिए कुलसचिव, व.म.खु.वि.वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MAPSY 08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज नं.
1	मानव एवं जीवन- काल विकास	1
2	विकास के सिद्धांत	20
3	जन्म-पूर्व विकास, जन्म के समय और जन्म बाद विकास	36
4	शारीरिक और गामक विकास , मनोसामाजिक विकास	52
5	प्रतिबोध का विकास,भाषा व वाणी का विकास, संज्ञानात्मक विकास	66
6	आरंभिक वर्षों में सम्बन्धन एवं बच्चों के पालन पोषण के तरीके	83
7	विकासात्मक विकार, अधिगम विकार एवं वाणी विकारों की स्क्रीनिंग एवं उनका परीक्षण	98
8	किशोरावस्था की विशेषताएँ, शारीरिक विकास एवं किशोरावस्था में समायोजन	116
9	किशोरावस्था में सामाजिक परिवर्तन, पहचान, आत्म संप्रत्यय एवं आत्म सम्मान	132
10	कामुकता (कामभाव) रुचि एवं व्यवहार, सम्बन्ध - परिवार एवं सहपाठी	145
11	प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था	156
12	प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था रूचियों में परिवर्तन	171
13	व्यवसायिक और पारिवारिक समायोजन	184
14	मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक परिवर्तन एवं विशेषताएं	198
15	मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन , सेवानिवृति में समायोजन , वृद्धावस्था में पारिवारिक जीवन में परिवर्तन	208
16	एरिक्सन की प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था के प्रति अवधारणा, सफल जरण व मौत के प्रति संप्रत्यय व अवधारणा , वृद्धाश्रम की भूमिका	220

इकाई -1

मानव एवं जीवन- काल विकास

Human and Life - Span Development

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2- उद्देश्य (Objectives of Growth and Development)

1.3- वृद्धि तथा विकास का अर्थ एवं संप्रत्यय (Meaning and concept of Growth and Development)

1.4.- वृद्धि तथा विकास के सिद्धांत (Principles of Growth and Development)

1.4-1 निरन्तरता का सिद्धांत (Principle of Continuity)

1.4-2 व्यक्तिगतता का सिद्धान्त (Principle of Individuality)

1.4-3 परिमार्जितता का सिद्धान्त (Principle of modifiability)

1.4-4 निश्चित तथा पूर्वकथनीय प्रतिरूप का सिद्धान्त (Principle of definite and predictable pattern)

1.4-5 समान प्रतिरूप का सिद्धान्त (Principle of uniform pattern)

1.4-6 एकीकरण का सिद्धान्त (Principle of Integration)

1.4-7 वंशानुक्रम तथा वातावरण की अंत:क्रिया का सिद्धान्त (Principle of interaction between heredity and environment)

1.4-8 चक्राकार प्रगति का सिद्धान्त (Principle of Spiral Advancement)

1.4-9 सामान्य से विशिष्ट की ओर (General to Particular)

1.4-10 जटिलता (Complexity)

1.4-11 परिपक्वता का सिद्धान्त (Principle of maturity)

1.4-12 सारांश (Conclusion)

1.5 - विकास की अवस्थाएं तथा विशेषतायें (Stages and characteristics of development)

1.5-1 - शारीरिक तथा गामक विकास (Physical & Motor Development)

1.5-2 - मानसिक विकास (Mental Development)

1.5-3 भाषा विकास (Language Development)

1.5-4 संवेगात्मक विकास (Emotional Development)

1.5-5 सामाजिक विकास (Social development)

1.6 - शैशवावस्था की विशेषताएँ (Characteristics of infancy)

1.6-1 शारीरिक विकास में तीव्रता (Rapidity in physical Development)

1.6-2 मानसिक क्रियाओं में तीव्रता (Rapidity in mental activities)

1.6-3 सीखने की प्रक्रिया में तीव्रता (Rapidity in mental activities

1.6-4 कल्पना की संजीवता(Live imagination)

1.6-5 दूसरों पर निर्भरता (Dependence on others)

1.6-6 आत्म-प्रेम की भावना(Self love)

1.6-7 नैतिकता का अभाव (Lack of morality)

1.6-8 सामाजिक भावना का विकास (Development of social feelings)

1.6-9 दोहराने की प्रवृति

1.6-10 जिज्ञासा की प्रवृति

1.7 - बाल्यावस्था की विशेषताएँ (Characteristics of childhood)

1.7-1 शारीरिक व मानसिक स्थिरता(Physical and mental stability)

1.7-2 मानसिक योग्यताओं में वृद्धि (Increase in mental abilities)

1.7-3 जिज्ञासा की प्रबलता (Forceful curiosity)

1.7-4 वास्तविक जगत से सम्बन्ध(Relationship with real world)

1.7-5 रचनात्मक कार्यों में आनन्द (Pleasure in creative activities)

1.7-6 सामाजिक गुणों का विकास (Development of social qualities)

1.7-7 नैतिक गुणों का विकास (Development of moral traits)

1.7-8 संवेगों का दमन व प्रदर्शन (Suppression and Exposition of Emotions)

1.7-9 संग्रह करने की प्रवृति(Tendency to Acquisitiveness)

1.7-10 सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता (Intensity of Gregariousness)

1.8- किशोरावस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Adolescence)

1.8-1 शारीरिक विकास (Physical Development)

1.8-2 मानसिक विकास (Mental development)

1.8-3 घनिष्ट व व्यक्तिगत मित्रता (Fast friendship)

1.8-4 व्यवहार में विभिन्नता (Difference in behaviour)

1.8-5 स्वतंत्रता और विद्रोह की भावना (Freedom and revolt feeling)

1.8-6 काम-शक्ति की परिपक्वता (Maturity of sex instinct)

1.8-7 जीवन दर्शन का निर्माण (Formation of philosophy of life)

1.9- वृद्धि तथा विकास में अन्तर (Difference between Growth and Development)

1.10- सारांश

1.11- शब्दावली

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.13- निबंधात्मक प्रश्न

1.14 - संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

आयु की अलग –अलग अवस्थाओं में अलग-अलग व्यक्तियों में ,अलग-अलग संस्कृतियों में और दुनिया के इतिहास के अलग-अलग कालों में भेद पाया जाता है | आज कल अमेरिका के पुरुषों और स्त्रियों की औसत आयु किसी भी अन्य देश के मुकाबले में अधिक है | संतति –निग्रह के कारण जनन क्षमता में और चिकित्सा की उन्नति के कारण मृत्यु संख्या में जो परिवर्तन हुए हैं उनके फलस्वरूप आयु के ऊपरी स्तरों में वृद्धि हुई है |कोई व्यक्ति कितना जीवित रहेगा,इसका पहले से अनुमान करना तो असम्भव है ,लेकिन इस बात के सबूत मौजूद हैं कि उनकी आयु की लम्बाई पर उनके अनुवांशिक दबाव का प्रभाव पड़ता है | कुछ परिवारों में आयु लम्बी पाई गई है कुछ में छोटी | जन्म से पहले और बाद में शिशु की देखरेख और खिलाने पिलाने के तरीकों में उन्नति ,आधुनिक चिकित्सा प्रणालियाँ ,दुर्घटनाओं को रोकने के उपाय ,काम करने की आदतें ,आराम,महत्वाकांक्षा, व्यक्ति के जीने की रफ़्तार ,दबाव और तनाव से समायोजन करने की योग्यता ,जलवायु ,लिंग ,व्यक्ति के जन्म के समय माता की आयु तथा अनेक कारण ऐसे पाए गए हैं जो आयु को प्रभावित करते हैं | शिक्षा का केन्द्र बिन्दू बालक है| शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए |अत: शिक्षा की योजना बनाते समय सबसे पहले बालक की ओर ध्यान जाता है | बालक का विकास कैसे होता है? बालक में किस प्रकार के परिवर्तन आते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर मिल जाने पर उसके अधिगम को समायोजित किया जा सकता है | सामान्यता लोग यह कहते हुए सुनाई देते हैं कि राम का शारीरिक विकास उसकी आयु के बच्चों से कम है ,सोहन के मानसिक विकास की गति अच्छी है क्योंकि वह अल्प आयु में ही गम्भीर विषयों को समझ लेता है अथवा नीना के सामाजिक विकास में कोई कमी रह गई है क्योंकि वह अपनी कक्षा के अन्य छात्राओं के साथ घुलमिल कर नहीं रहती है | इस प्रकार से की जाने वाली सभी बातें विकास से सम्बन्धित होती हैं | वृद्धि तथा विकास सतत चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जो बालक को असहाय शिशु से आत्मनिर्भर प्रौढ बनती है | विकास की यह प्रक्रिया जन्म से पूर्व ही माता के गर्भ में प्रारम्भ हो जाती है तथा जीवन पर्यन्त चलती रहती है | वास्तव में गर्भाधान के साथ साथ ही वृद्धि और विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है तथा जन्म के उपरान्त शैशवावस्था,बाल्यावस्था,किशोरावस्था व प्रौढावस्था में निरंतर किसी न किसी रूप में चलती रहती है | शिक्षा के क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया का बहुत महत्व है | आयु के बढ़ने के साथ-साथ वृद्धि तथा विकास के फलस्वरूप बालक की योग्यताओं तथा क्षमताओं में बढोत्तरी होती रहती है |

1.2 Objectives of Growth and Development (वृद्धि और विकास के उद्देश्य)

इस इकाई को पढने के बाद आप :

- विकास का अर्थ तथा परिभाषा को समझने में सक्षम होंगे |
- विकास के संप्रत्यय को समझने में सक्षम होंगे |
- विकास के सिद्धान्तों को बताने में सक्षम होंगे |
- विकास की अवस्थाओं तथा विशेषताओं को समझने तथा उनकी व्याख्या करने में सक्षम होंगे |
- वृद्धि तथा विकास के बीच अंतर स्पष्ट करने में सक्षम होंगे |

1.3 वृद्धि तथा विकास का अर्थ एवं संप्रत्यय Meaning and concept of Growth and Development

प्रायः वृद्धि तथा विकास को समानार्थक अर्थ में प्रयोग किया जाता है | ये दोनों ही शब्द आगे बढ़ने की ओर संकेत करते हैं परन्तु मनो वैज्ञानिक दृष्टि से इन दोनों में कुछ अन्तर है | सामान्य रूप से वृद्धि शब्द का प्रयोग कोशीय वृद्धि के लिए किया जाता है,जबकि विकास शब्द का प्रयोग वृद्धि के फलस्वरूप शरीर के समस्त अंगों में आए परिवर्तनों के संगठन से है | विकास जीवन पर्यन्त क्रमानुसार चलने वाली प्रक्रिया है | सामाजिक विज्ञान में प्रायः अभिवृद्धि को परिमाणात्मक परिवर्तन के रूप में और विकास को गुणात्मक परिवर्तन के रूप में देखा जाता है | स्पष्ट है कि विकास शरीर के विभिन्न अँगों की कार्यक्षमता को इंगित करता है | विकास शरीर की अनेक संरचनाओं तथा कार्यों को संगठित करने की जटिल प्रक्रिया है | यह वह प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न आंतरिक शरीर रचना संबधित परिवर्तन तथा इनसे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें एकीकृत हो कर व्यक्ति को सरलता व सहजता से कार्य करने के योग्य बनाती है | अत: अनेक वृद्धि प्रक्रिया को समाहित करने वाली श्रृंखलाबद्ध तथा एकीकृत परिवर्तन प्रक्रिया को विकास कहा जाता है | बालक के भार तथा लम्बाई में आये परिवर्तन को वृद्धि तथा बैठना, चलना,पेंसिल पकड़ना आदि परिवर्तन को विकास कहा जाएगा | बालक में होने वाली वृद्धि को अन्य व्यक्ति स्पष्ट रूप से देख सकते हैं| परन्तु कभी-कभी बालक के अँगों के आकार में वृद्धि होने पर भी उसकी कार्यक्षमता में अपेक्षित प्रगति नहीं होती है तथा कहा जाता है कि वृद्धि तो हो रही है मगर विकास ठीक ढंग से नहीं हो रहा है| विकास एक बहुमुखी प्रक्रिया है जिसमें अनेक बातें समाहित रहती हैं |विकास के परिमाणस्वरुप व्यक्ति में नवीन क्षमताएं प्रकट होती हैं | वस्तुत: विकास के अंतर्गत दो परस्पर विरोधी प्रक्रियाएं होती हैं जो निरंतर किसी न किसी रूप में जीवन पर्यन्त चलती रहती हैं | दोनों प्रक्रियायें गर्भकाल से प्रारंभ होती हैं और मृत्यु पर समाप्त हो जाती है | प्रारम्भिक वर्षों में वृद्धि की प्रक्रिया तीव्र गति से होती है ,जबकि क्षय प्रक्रिया अत्यंत मंद गति से चलती है | जीवन के अंतिम वर्षों में क्षय प्रक्रिया तीव्र गति से चलती है, बल्कि वृद्धि प्रक्रिया की गति अत्यंत मंद हो जाती है | विकास का निश्चित क्रम होता है जो रुकता नहीं बल्कि जन्म भर चलता रहता है,किन्तु विकास की गति व्यक्तिगत विभिन्नताओं से प्रभावित

होती है | विकास की विभिन्न अवस्थाएं होती हैं और प्रत्येक अवस्था की अपनी भिन्न विशेषताएं होती हैं | मनुष्य का शारीरिक ,मानसिक ,संवेदात्मक और सामाजिक विकास निरंतर होता रहता है | बालक की बुद्धि ,यौन , पोषण ,ग्रंथियों का स्त्राव,भौतिक वातावरण रोग प्रजाति परिवार के स्थान और संस्कृति आदि का प्रभाव उसके विकास पर पड़ता है | बालक के विकास में कुछ ऐसे काल होते हैं जब केवल वृद्धि होती है विकास नहीं होता | वर्तमान काल में बच्चों के विकास के सभी पक्षों, शारीरिक ,मानसिक, सामाजिक , संवेगात्मक आदि में वृद्धि का विश्लेषण करना मनोवैज्ञानिक पर आधारित शिक्षा का एक आवश्यक अंग है | मनुष्य में विकास की प्रक्रिया जन्म से लेकर मृत्यु तक आबाद गति से चलती रहती है | मनुष्य में जीवन के कुछ वर्षों में विकास तीव्र गति से होता है और कुछ में विकास धीमी गति से होता है | मनुष्य का विकास सिर से प्रारम्भ होकर पैर की ओर चलता है | सभी बालको में वृद्धि तथा विकास का क्रम लगभग एक जैसा ही होता है | मनोविज्ञान बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन कर शिक्षक को बताता है कि कब और किस अवस्था में बालक को क्या और कैसे सिखाना चाहिए | ५ और ६ वर्ष के बालक के लिए सुरक्षा की आवश्यकता होती है | उसकी खेल में रूचि होती है |वह दूसरे बच्चों का साथ चाहता है | शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बालक के विकास की इस विशिष्ट अवस्था पर उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति करे | जैसे –जैसे बालक बडा होता है,उसकी आवश्यकताएं भी बदल जाती हैं | इन्हीं बदलती हुई आवश्यकताओं के फलस्वरूप बालक के शिक्षा प्रकार और विधि में भी परिवर्तन होना चाहिए | मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा शिक्षक बालक के विकास की भी विभिन्न अवस्थाओं से भली –भांति परिचित हो जाता है और उसी के अनुकूल शिक्षा देता है |

Definitions of growth and development (वृद्धि तथा विकास की परिभाषाएं)

'मेरिडीथ के अनुसार-'कुछ लेखक अभिवृद्धि का प्रयोग केवल आकार की वृद्धि के अर्थ में करते हैं और विकास का विभेदीकरण (या विशिष्टिकरण)के अर्थ में "

Some writers reserve the use of 'growth" to designate increments in size and of 'development' to mean differentiation.

Meridith

हरलाक के शब्दों में – 'विकास बड़े होने तक ही सीमित नहीं है वरन इसमें प्रौढावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है | विकास के फलस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ तथा नवीन योग्यताएं प्रकट होती हैं |

Development is not limited to growing larger, instead, it consists of a progressive series of changes towards the goal of maturity. Developments results in new characteristics and new abilities on the part of the individual.

-Hurlok

सोरेन्स्न के अनुसार- शरीर के अँगों में होने वाले परिवर्तन को विकास कहते हैं | विकास का सम्बन्ध वृद्धि से होता है | शरीर की हड्डियों के आकार में वृद्धि होने के कारण कड़ी हो जाती हैं तथा उनके रूप में भी परिवर्तन आ जाता है | मनुष्य का जन्म से मृत्यु तक शारीरिक ,मानसिक तथा सामाजिक विकास होता है |

अभ्यास प्रश्न 1 :

(अ) वृद्धि को..... जा सकता है |

(ब)विकास शब्द का प्रयोग शरीर के समस्त अंगों में आए..... के संगठन से है |

(स) वृद्धि शब्द का प्रयोग..... के लिए किया जाता है |

1.4. वृद्धि तथा विकास के सिद्धान्त Principles of Growth and Development

वृद्धि तथा विकास के संबंध मेंमनोवैज्ञानिकों के द्वारा अनेक अध्ययन किए गए हैं | इन अध्ययनों से सिद्ध हो गया है कि वृद्धि तथा विकास के फलस्वरूप आने वाले परिवर्तनों में पर्याप्त निश्चित सिद्धांतों का अनुपालन करती है | इन सिद्धांतों को वृद्धि तथा विकास के सामान्य सिद्धांतों के नाम से पुकारा जाता है | शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययनकर्ता के लिए वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया को संचालित करने वाले सिद्धांतों को जानना अत्यंत आवश्यक तथा महत्वपूर्ण होगा | कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्नवत हैं |

1.4-1 Principle of Continuity (निरन्तरता का सिद्धान्त)

निरन्तर विकास के सिद्धांत के अनुसार वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया निरन्तर अबिराम गति से चलती है | कभी यह मंद गति से चलती है तो कभी यह तीव्र गति से चलती है | वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया में समग्रता का भाव निहित रहता है | वृद्धि तथा विकास को अलग- अलग सोपानों में नहीं बाँटा जा सकता है | उदाहरण के तौर पर प्रारम्भिक वर्षों में वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया अत्यंत तीव्र होती है और उसके बाद के वर्षों में धीमी हो जाती है, परन्तु विकास प्रक्रिया अनवरत लगातार चलती रहती है | निरन्तर विकास के सिद्धांत से यह निष्कर्ष निकलता है कि वृद्धि तथा विकास में अचानक कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता |

1.4-2 Principle of Individuality (व्यक्तिगतता का सिद्धांत)

विकास की व्यक्तिगतता का सिद्धांत बताता है कि भिन्न –भिन्न व्यक्तियों के विकास की गति एवं दिशा भिन्न-भिन्न होती है | दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी गति तथा अपने ढंग से विभिन्न क्षेत्रों में अपना विकास करता है | एक ही आयु के दो बालकों में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक अथवा चारित्रिक आदि विभिन्नताओं का होना विकास की व्यक्तिगतता को इंगित करता है | यही कारण है कि आयु के समान होने पर भी बालक परस्पर भिन्न होते हैं |

1.4-3 Principle of modifiability (परिमार्जिताता का सिद्धान्त)

इसके अनुसार विकास की गति और दिशा में परिमार्जन सम्भव है | दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रयासों के द्वारा विकास की गति को वांछित दिशा की ओर तथा तीव्र गति से उन्मुख किया जा सकता है | विकास का यह सिद्धांत शैक्षिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी माना जा सकता है | शिक्षा प्रक्रिया के द्वारा बालक के विकास को वांछित दिशा में तीव्र गति से अग्रसर करने का प्रयास किया जा सकता है |

1.4-4 Principle of definite and predictable pattern (निश्चित तथा पूर्वकथनीय प्रतिरूप का सिद्धान्त)

प्रत्येक प्रजाति, चाहे वह पशु प्रजाति हो अथवा मानव प्रजाति ,के विकास का एक निश्चित प्रतिरूप होता है जो उस प्रजाति के समस्त सदस्यों के लिए सामान्य होता है तथा उस प्रजाति के समस्त सदस्य उस प्रतिरूप का अनुसरण करते हैं | यद्यपि किसी भी प्रजाति के सदस्यों में परस्पर व्यक्तिगत भिन्नताएं पाई जाती हैं | परन्तु यह भिन्नताएं बहुत कम होती हैं तथा उस प्रजाति की सामान्य प्रवृति को प्रभावित नहीं कर पाती हैं | व्यक्तियों के किसी समूह के विकास का अनेक वर्षों तक अवलोकन करने पर विकास के विभिन्न पक्षों के विकासात्मक प्रतिमानों को जाना जा सकता है | विकास के इन प्रतिमानों के आधार पर अन्य व्यक्तियों के विकास का पूर्वकथन किया जाता है | इस सिद्धांत को विकास क्रम या विकास दिशा का सिद्धांत के नाम से भी संबोधित किया जाता है |उदाहरण के तौर पर शारीरिक विकास के क्षेत्र में वृद्धि तथा विकास के क्रमबद्ध व पूर्वकथनीय प्रतिरूप होने के अनेक प्रमाण हैं |जन्म-पूर्व जीवन में शारीरिक वृद्धि अधोगति का अनुसरण करती है | इसे मस्त्कोध्मुखी क्रम कहते हैं |

1.4-5 Principle of uniform pattern (समान प्रतिरूप का सिद्धान्त)

समान प्रतिरूप के सिद्धान्त के अनुसार समान प्रजाति के विकास के प्रतिमानों में समानता पाई जाती है | प्रत्येक प्रजाति ,चाहे वह पशु प्रजाति हो या मानव प्रजाति ,अपनी प्रजाति के अनुरूप विकास के प्रतिरूप का अनुसरण करती है | उदाहरण के तौर पर संसार के समस्त भागों में मानव प्रजाति के शिशुओं के विकास का प्रतिरूप एक ही है तथा मानव शिशुओं के विकास के प्रतिरूपों में किसी प्रकार का अंतर नहीं होता है |

1.4-6 Principle of Integration (एकीकरण का सिद्धान्त)

इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न अँगों के विकास में परस्पर समन्वय रहता है | बालक पहले सम्पूर्ण अँगों को तथा फिर उस अंग के विभिन्न भागों को चलाना सीखता है | तत्पश्चात वह इन सभी भागों में समन्वय स्थापित करना सीखता है | जब तक शरीर के विभिन्न अँगों तथा उनके भागों के बीच समन्वय स्थापित नहीं होता है तब तक उचित विकास नहीं हो पाता है | विभिन्न अँगों का एकीकरण ही गतियों को सरल व सहज बनाता है |

1.4-7 Principle of interaction between heredity and environment (वंशानुक्रम तथा वातावरण की अंत:क्रिया का सिद्धान्त)

इस सिद्धान्त के अनुसार बालक का विकास वंशानुक्रम तथा वातावरण की परस्पर अन्तःक्रिया का परिणाम होता है | केवल वंशानुक्रम अथवा केवल वातावरण बालक के विकास की दिशा व गति को निर्धारित नहीं करते हैं वरना दोनों की अन्तःक्रिया के द्वारा विकास दिशा व गति का नियंत्रण होता है | वास्तव में वंशानुक्रम उन सीमाओं को निर्धारित करता है जिससे आगे बालक का विकास करना सम्भव नहीं होता,जबकि वातावरण उन सीमाओं के बीच विकास के अवसर व संभावनाओं को निर्धारित करता है | अच्छे वंशानुक्रम के अभाव में अच्छा वातावरण निष्फल हो जाता है तथा अच्छे वंशानुक्रम के बावजूद दूषित वातावरण बालक को कुपोषण या गम्भीर रोगों का शिकार बना सकता है अथवा उसकी जन्मजात योग्यताओं को कुंठित कर सकता है |

1.4-8 Principle of Spiral Advancement (चक्राकार प्रगति का सिद्धान्त)

इस सिद्धान्त के अनुसार विकास रेखीय गति एवम स्थिर दर से न होकर चक्राकार ढंग से होता है| दूसरे शब्दों में,विकास प्रक्रिया के दौरान बीच-बीच में ऐसे अवसर आते हैं जबकि किसी क्षेत्र विशेष में विकास की पूर्व अर्जित स्थिति का समायोजन करने के लिए उस क्षेत्र की विकास प्रक्रिया लगभग विराम की स्थिति में आ जाती है |कुछ अवधि के उपरांत उस क्षेत्र में विकास की गति फिर बढ़ जाती है |

1.4-9 General to Particular (सामान्य से विशिष्ट की ओर)

विकास की गति सामान्य से विशिष्ट की ओर होती है | पहले यह माना जाता था कि शिशु विशिष्ट क्रियाएँ पहले करता है,उसके बाद सामान्य क्रिया की ओर बढता है किन्तु विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों से यह पता चलता है कि सभी प्रकार के विकास पहले सामान्य रूप में होते हैं ,बाद में विशिष्ट रूप में | जैसे, पहले बालक अपनी सम्पूर्ण शरीर का संचालन करता है,बाद में अंग विशेष का | कागहिल ने अपने अध्ययन के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि पहले सिर और देह का मुख्य भाग संचालित होता है, तत्पश्चात हाथ पैर की उँगलियों का संचालन होता है |

1.4-10 Complexity (जटिलता)

बालक का विकास एक जटिल प्रक्रिया है | इसके अनेक तर्क होते हैं | विकास पर अनेक चरों का प्रभाव पड़ता है | यह सब बातें विकास की गति ओर मात्रा को जटिल बना देती हैं |जन्म से प्रथम दो वर्षों में मस्तिष्क के विकास की दृष्टि से भेजे का विकास अधिक तीव्र होता है किन्तु बाद में यह गति बहुत कम हो जाती है | बाद में शारीरिक,मानसिक विकास अधिक होने लगता है | ऐसा क्यों होता है? विकास की गति को क्या नियंत्रित किया जा सकता है ? इन प्रश्नों का जवाब कठिन है |

1.4-11 Principle of maturity (परिपक्वता का सिद्धान्त)

परिपक्वता का अर्थ है –किसी कार्य में पूर्णता अथवा स्थायित्व का आ जाना | परिपक्वता तथा सीखना एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि उन्हें अलग करना असंभव है | परिपक्वता पर वंशानुक्रम तथा वातावरण के प्रभाव भी देखे गए हैं |

1.4-12 Conclusion(सारांश): वृद्धि तथा विकास के सिद्धांतों का ज्ञान अर्जित करने से अध्यापक स्कूल के कार्यक्रम में विधियों तथा उद्देश्यों को बच्चे के विकास स्तर के अनुसार ढालने में सहायता करता है | यह ज्ञान माता –पिता तथा अध्यापकों को बच्चों के साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करने तथा उनकी समस्याओं को वास्तविक ढंग से हल करने में सहायता करता है | इस ज्ञान से माता-पिता यह समझने में सक्षम हो जाते हैं कि बच्चों के विकास तथा वृद्धि की अवस्था में कौन सी वस्तु अधिक तथा कम है | यदि वे बच्चे से ऊँची आशाएं लगाये बेठे हैं तो बच्चे अपूर्णता और घबराहट अनुभव करेंगे | इसके विपरीत यदि बच्चों से कम आशा रखी जाये तो उन में सीखने की रुचि का अभाव दिखाई देगा |

अभ्यास प्रश्न २ :

(क) विकास सामान्य से.....की ओर चलता है |

(ख) विकास ..... चलने वाली प्रक्रिया है |

(ग) शरीर के विभिन्न अँगों का विकास विभिन्न गति से होता है | (हाँ या न)

(घ) विकास वंश तथा वातावरण का परिणाम नहीं होता है | (हाँ या न)

1.5 विकास की अवस्थाएं तथा विशेषतायें Stages and characteristics of development

अभिवृद्धि तथा विकास का विश्लेषण करते समय शिक्षा –मनोवैज्ञानिक मानव विकास को कुछ अवस्थाओं में बाँट लेते हैं | विकास को अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से बाँटा होता है | निम्नलिखित वर्गीकरण बहुत प्रयुक्त है |

शैशव(Infancy): प्रारम्भ से तीन वर्ष तक |

(क) भ्रूणावस्था –गर्भाधान से जन्म तक |

(ख) शैशवावस्था –जन्म से तीन वर्ष तक |

बाल्यकाल(childhood)- तीन से बारह वर्ष तक |

(क) पूर्व बाल्यकाल –तीन से छह वर्ष तक |

(ख) उत्तर बाल्यकाल – छह से बारह वर्ष तक |

किशोरावस्था(Adolescence)- बारह से उन्नीस वर्ष तक |

प्रोढ़ावस्था(Adulthood)- उन्नीस वर्ष के बाद |

1.5-1 शारीरिक तथा गामक विकास (Physical & Motor Development)

शारीरिक विकास का अर्थ है शरीर के विभिन्न अँगों का विकास और इनकी प्रकार्यात्मक शक्ति | शरीर के रूप में व्यक्ति पहले भ्रूण होता है | जन्म के समय उसका शरीर छोटा होता है | धीरे–धीरे उसके शरीर के अँगों में परिवर्तन होता रहता है |यह परिवर्तन कभी रुकता नहीं | प्रोढ़ावस्था में उसके अंग भी पुष्ट हो जाते हैं किन्तु उसके बाद भी परिवर्तन चलता रहता है | शारीरिक विकास का वैज्ञानिक अध्ययन लगभग सभी देशों में किया गया है | इन अध्ययनों के आधार पर किसी विशेष आयु के बालक व बालिकाओं का औसत भार एवम औसत लम्बाई ज्ञात की गई है और उसके आधार पर बालकों के भार व लम्बाई के विकास की गति का अनुमान लगाया जा सकता है| शारीरिक और गामक विकास का शिक्षा की दृष्टि से महत्व है | अध्यापक शिशु कक्षाओं में प्रायः बच्चों के मानसिक विकास का ही ध्यान रखते हैं | किन्तु शारीरिक कष्ट या विकार की दिशा में मानसिक विकास भी ठीक से नहीं हो सकेगा | बच्चों में दांत साफ करने की ,उचित व्यायाम की, खेल की, उचित श्रम व उचित आराम की आदत डालने की आवश्यकता है | भोजन करने की,दायें हाथ से लिखने की, स्वछता की ,तोलिये के प्रयोग की आदत अपने आप नहीं आती है | मुंह में ऊँगली या पेंसिल डालने से हानि , की शिक्षा देनी पड़ती है |

1.5-2 - **Mental Development (मानसिक विकास)**

मानसिक विकास, समझने की शक्ति, स्मृति,बुद्धि, एवम भाषा योग्यता के विकास से सम्बद्ध है | गर्भावस्था से प्रोढ़ावस्था तक ज्यों –ज्यों तक शारीरिक विकास होता है,मस्तिष्क भी विकसित होता जाता है | मानसिक विकास अंशतः शारीरिक विकास पर निर्भर करता है | बालक का स्नायुमंडल ज्यों

–ज्यों विकसित होता जाता है, वह लिखने पढने, एवम गणित के प्रश्न हल करने में भी समर्थ हो जाता है | ज्यों –ज्यों वह बढ़ता है, त्यों –त्यों अपने मस्तिष्क से अधिक काम लेने लगता है | स्मृति, बुद्धि एवम अधिगम का महत्वपूर्ण घटक है | बिना स्मृति के दोनों का अस्तित्व ही कठिन हो जाएगा | तीन वर्ष से पूर्व शिशु अपने अनुभवों को याद नहीं रख पाता | पूर्व अनुभव तथा पूर्व अधिगम की आवृति स्मृति द्वारा ही संभव है | शैशव से प्रोढ़ावस्था तक स्मृति का विकास होता रहता है | नवजात शिशु का मानसिक जगत अत्यंत सीमित होता है | उसका प्रत्यक्षीकरण अनिश्चित होता है | तीन माह की उम्र में बालक माँ को पहचान लेता है और माता की मुस्कुराहट का प्रत्यक्षीकरण करने लगता है| बाल्यकाल आते -आते वह संसार के पदार्थों का विधिवत प्रत्यक्षीकरण करने लगता है |

1.5-3 -Language Development (भाषा विकास)

अब हम मानसिक विकास के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र की संक्षेप में चर्चा करेंगे और वह है भाषा विकास | बालक के विकास में भाषा का क्या योगदान है यह सर्वविदित है | प्रत्यक्ष निर्माण,तर्क-वितर्क,चिन्तन,अधिगम सभी में भाषा का योगदान है और यह मानसिक विकास के सभी पक्षों को प्रभावित करता है | प्रारम्भ में आठ –दस महीनों तक शिशु केवल चीखकर ऊँ,ऊँ,ऊँ करके ही अपने भावों का आदान –प्रदान करता है |लगभग एक वर्ष की आयु में वह प्रथम शब्द का उच्चारण करता है | चार वर्ष की आयु तक पंहुचते-पंहुचते बालक संज्ञा,विशेषण,क्रिया शब्दों का प्रयोग करने के साथ-साथ भूतकाल ,भविष्यकाल ,वर्तमानकाल ,एकवचन ,बहुवचन आदि का प्रयोग भी करने लगता है | बालक का शब्द भण्डार पहले कम होता है ,बाद में अधिक होता है | बाल्यकाल की तोतली बोली समाप्त होकर व्याकरण- सम्मत भाषा का विकास हो जाता है | बालक अपनी व्याकरण सम्बन्धी भूलों की ओर सतर्क हो जाता है | किशोरावस्था में भाषा का मानक स्वरुप स्पष्ट होने लगता है और किशोर अपनी भावनाओं को शब्दों के माध्यम से प्रकट करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है| बालक के भाषा विकास के सम्बन्ध में स्किनर का मत है कि बालक वातावरण से भाषा सीखता है|भाषा –विकास की दृष्टि से भी प्रारम्भ में छात्रों के शब्द भण्डार की सीमा के अंतर्गत ही पाठों की रचना होनी चाहिए | इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि छात्र भाषा के मूल नियमों का अनुमान लगा सकें और उनके आधार पर नए वाक्यों की रचना कर सकें |

1.5-4 Emotional Development (संवेगात्मक विकास)

शिशु में संवेग का प्रथम सामान्य लक्षण साधारण उत्तेजना के रूप में दृष्टिगोचर होता है | बालक के विकास के साथ-साथ संवेगों के विशिष्ट प्रतिमान स्पष्ट होने लगते हैं | छः माह में अप्रसन्नता भय, घृणा और क्रोध का रूप धारण कर लेती है और अठारह माह में ईर्ष्या भी प्रकट हो जाती है | चार माह का बालक ध्यान आकर्षित करने के लिए चिल्लाता है जबकि उसके पूर्व केवल भूख प्यास प्रकट करने के लिए | गुडइनफ के अनुसार बालक दूसरे वर्ष की आयु में नहाने, खाने और कपड़े पहनने जैसी दैनिक आदतों के संदर्भ में क्रोध करने लगता है | जोन्स ने प्रयोग करके दिखाया कि दो वर्ष का शिशु सांप से नहीं डरता है |

संवेगात्मक विकास परिपक्वता और अधिगम का प्रमाण है | ज्यों-ज्यों बालक प्रौढ़ता की ओर उन्मुख होता है त्यों-त्यों भावात्मक और संवेगात्मक विकास का प्रतिमान निश्चित होता है | संवेगात्मक विकास की दिशा सामान्य से विशिष्ट की ओर जाती है | संवेगों एवं भावों के प्रकाशन की विधि भिन्न-भिन्न होती है | इस भिन्नता का कारण परिपक्वता व अभिमान है | यदि संवेगों के

अभिव्यक्ति में बचकानापन होता है तो उसके कारण के रूप में प्राय: ये कारक होते हैं – 1) अव्यवस्था 2) थकान 3) भावुक व्यक्तियों की संगति 4) अत्यधिक अनुशासन 5) इच्छाओं का दमन 6) किसी परिस्थिति में तैयारी का अभाव | छात्रों को ऐसी परिस्थितियों से बचाना चाहिए | संवेगात्मक विकास में शैशव काल का बहुत महत्व है | मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार भावी संवेगात्मक जीवन की आधारशिला शैशव में ही रख दी जाती है | शैशव में माता के व्यवहार का कड़ा प्रभाव पड़ता है | प्रारंभिक वर्षों में माता का स्नेहपूर्ण व्यवहार बालक के संवेगात्मक विकास में सहायक होता है | माता के प्रेम से वंचित बालक आगे चलकर असामाजिक होने की प्रवृति दिखता है |

शिक्षा का उद्देश्य बालक का केवल मानसिक विकास करना ही नहीं वरन उसे संवेगात्मक परिपक्वता के लिए तैयार करना भी है | बालक का संवेगात्मक विकास उसके अन्य विकासों को भी प्रभावित कर देता है | अधिगम को भी संवेग प्रभावित कर देते हैं | अत: अधिगम में अधिकतम निष्पति के लिए संवेगों पर नियंत्रण आवश्यकहै | अध्यापिकाओं का व्यवहार इस स्तर पर प्रेमपूर्ण होना चाहिए जिससे बालकों का समुचित विकास हो सके | माध्यमिक विद्यालयों व उच्च संस्थानों में छात्रों के संवेगात्मक जीवन को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों में एक प्रमुख कारक है – अध्यापकों का पारस्परिक सम्बन्ध, उनका छात्रों के साथ सम्बन्ध और उनका प्राचार्य के साथ सम्बन्ध1 इस दृष्टि से इस स्तर पर शिक्षकों को सावधान रहना चाहिए |

1.5-5 Social development (सामाजिक विकास)

सामाजिक विकास का तात्पर्य यह है कि सामाजिक आशाओं के अनुरूप व्यवहार करने की क्षमता का विकास करना | हरलाक के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता की प्राप्ति सामाजिक विकास है | सोरेन्सन के अनुसार सामाजिक परिपक्वता व्यक्ति को मित्र बनाने और भिन्नता बनाये रखने की योग्यता द्वारा प्रकट होती है | जन्म से कोई व्यक्ति सामाजिक नहीं होता| सामाजिकता का विकास करना पड़ता है | बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता है वह सामाजिक परम्परा को समझकर उसके अनुकूल अपने को बनाने लगता है | मार्गरेट मीड के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक व्यवहार सीखा हुआ व्यवहार होता है | मिलर और डोलार्ड ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि दो – तीन साल की उम्र में बच्चे अचेतन अनुकरण द्वारा सामाजिक व्यवहार सीखते है | इस प्रकार बालक समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा किसी समूह का सदस्य बन जाता है | सामाजिक विकास के ये दोनों आयाम है – समाजीकरण और सामाजिक क्षेत्र का विस्तार |

सामाजिक विकास को समझने का एक तीसरा आयाम है – सामाजिक भूमिका | भूमिका सांस्कृतिक इकाई है और व्यवहार की अपेक्षा से सम्बन्ध है | अपनी सामाजिक स्थिति के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति से एक निश्चित व्यवहार की अपेक्षा की जाती है | ज्यों – ज्यों बालक बड़ा होता जाता है वह अनेक प्रकार की भूमिकाओं को निभाना सीख लेता है | सामाजिक सामंजस्य की समस्या जटिल होती है | बालक में यह क्षमता कम होती है | किशोर भी धीरे-धीरे सामाजिक सामंजस्य की क्षमता प्राप्त करता है किन्तु किशोर में सामाजिक सामंजस्य की चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है |

सामाजिक विकास का शिक्षा की दृष्टि से निहितार्थ अन्य बातों के अतिरिक्त समाजीकरण की प्रक्रिया को द्रुतगति प्रदान करना है | बालक के सामाजिक विकास में विद्यालय का बहुत महत्व है | ज्यों ही शिशु विद्यालय पहुँचता है शिक्षिका माँ का स्थान ग्रहण कर लेती है | छात्र के सोचने के ढंग,व्यवहार

को सुधारने के ढंग, गलती स्वीकार करने के ढंग, लोगों से मिलने-जुलने व बातचीत करने के ढंग पर विद्यालय की छाप रहती है | अत: शिक्षकों को कक्षा के अंदर बाल समूहों को उचित निर्देश देते रहना चाहिए |

छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने के लिए सामाजिक समारोहों के आयोजन में उन्हें सहभागी बनाना चाहिए | शिक्षा द्वारा यह प्रयास होना चाहिए कि बालक में सामाजिक कुशलता का विकास हो, वह उचित सामाजिक समायोजन कर सके, वह समाजीकरण में उन्नति करे, अपनी सामाजिक स्थिति को पहचाने, और तदनुसार सामाजिक भूमिका निभाए तथा सामाजिक आचरण के उच्च मापदण्ड को अपनाए |

अभ्यास प्रश्न 3 :

(क) गर्वावस्था का समय गर्भाधान से जन्म तक 9 महीने 10 दिन होता है | सत्य या असत्य

(ख) बाल्यावस्था तीन वर्ष से आठ वर्ष तक कुल पांच वर्ष की होती है | सत्य या असत्य

(ग) शैशवावस्था में विशेषकर प्रथम वर्षों में शारीरिक विकास अत्यंत तीव्र गति से होता है | सत्य या असत्य

1.6 शैशवावस्था की विशेषताएँ Characteristics of infancy

शैशवावस्था, मानव विकास की दूसरी अवस्था होती है | पहली अवस्था गर्भकाल है जिसमें शरीर पूर्णत: बनता है और शैशवावस्था में उसका विकास होता है | शैशवावस्था की विशेषताएं निम्नलिखित है –

1.6-1 शारीरिक विकास में तीव्रता (Rapidity in physical Development)
शैशवावस्था के प्रथम तीन वर्षों में शारीरिक विकास अति तीव्र गति से होता है | उसके भार व लम्बाई में वृद्धि होती है | तीन वर्ष के बाद विकास की गति धीमी हो जाती है |

1.6-2 मानसिक क्रियाओं में तीव्रता (Rapidity in mental activities)

शिशु की मानसिक क्रियाओं जैसे – ध्यान, स्मृति, कल्पना, संवेदना आदि के विकास में पर्याप्त तीव्रता होती है | तीन वर्ष की आयु में शिशु की लगभग सभी मानसिक शक्तियाँ कार्य करने लगती है|

1.6-3 सीखने की प्रक्रिया में तीव्रता (Rapidity in mental activities)

शिशु की सीखने की प्रक्रिया में बहुत तीव्रता होती है और वह अनेक आवश्यक बातों को सीख लेता है | गेसल का कथन है –" बालक प्रथम छह वर्षों में बाद के 12 वर्षों से दो गुना सीख लेता है |"

1.6-4 कल्पना की संजीवता(Live imagination)

कुप्पुस्वामी के शब्दों में –"चार वर्ष के बालक के सम्बन्ध में अति महत्वपूर्ण बात है – उसकी कल्पना की संजीवता | वह सत्य और असत्य में अन्तर नहीं कर पाता है | फलस्वरूप वह असत्य भाषी जान पड़ता है |"

1.6-5 दूसरों पर निर्भरता (Dependence on others)

जन्म के बाद शिशु कुछ समय तक बहुत असहाय स्थिति में रहता है | उसे भोजन और अन्य शारीरिक आवश्यकताओं के अलावा प्रेम और सहानुभूति पाने के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है |

1.6-6 आत्म-प्रेम की भावना(Self love)

शिशु में आत्म-प्रेम की भावना बहुत प्रबल होती है | वह अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि का प्रेम प्राप्त करना चाहता है | साथ ही वह यह भी चाहता है कि यह प्रेम उसके अलावा और किसी को न मिले|

1.6-7 नैतिकता का अभाव (Lack of morality)

शिशु में अच्छी और बुरी, उचित और अनुचित बातों का ज्ञान नहीं होता है | वह उन्ही कार्यों को करना चाहता है जिनमे उसे आनन्द आता है, भले ही वह अवांछनीय हों| इस प्रकार उसमें नैतिकता का पूर्ण अभाव होता है |

1.6-8 सामाजिक भावना का विकास (Development of social feelings)

इस अवस्था के अंतिम वर्षों में सामाजिक भावना का विकास हो जाता है | वैलेनटीन का मत है –" चार या पांच वर्ष के बालक में अपने छोटे भाइयों, बहनों या साथियों की रक्षा करने की प्रवृति होती है , एवं 2 से 5 वर्ष के बच्चों के साथ खेलना पसंद करता है | वह अपनी वस्तुओं में दूसरों की साझेदारी बनाता है | वह दूसरे बच्चों के अधिकारों की रक्षा करता है और दुख में उनको सांत्वना देता है |"

1.6-9 दोहराने की प्रवृत्ति

शिशु में दोहराने की प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है | उसमें शब्दों और गतियों को दोहराने की प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है | ऐसा करने से उसे विशेष आनन्द मिलता है |

1.6-10 जिज्ञासा की प्रवृत्ति

शिशु में जिज्ञासा की प्रवृत्ति का बाहुल्य होता है | वह अपने खिलौनों का विभिन्न रूप से प्रयोग करता है | वह उनको फर्श पर फेंक सकता है | वह उनके भागों को अलग–अलग कर सकता है |

1.7 बाल्यावस्था की विशेषताएँ (Characteristics of childhood)

1.7-1 शारीरिक व मानसिक स्थिरता(Physical and mental stability)

6 या 7 वर्ष की आयु के बाद बालक के शारीरिक और मानसिक विकास में स्थिरता आ जाती है | यह स्थिरता उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को दृढ़ता प्रदान करती है | फलस्वरूप उसका मस्तिष्क परिपक्व-सा और वह स्वयं वयस्क-सा जान पड़ता है |

1.7-2 मानसिक योग्यताओं में वृद्धि (Increase in mental abilities)

बाल्यावस्था में बालक की मानसिक योग्यताओं में निरन्तर वृद्धि होती है | वह विभिन्न बातों के बारे में तर्क और विचार करने लगता है | वह साधारण बातों पर अधिक देर तक अपने ध्यान में केन्द्रित कर सकता है | उसमें अपने पूर्व अनुभवों को स्मरण करने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है |

1.7-3 जिज्ञासा की प्रबलता (Forceful curiosity)

बालक की जिज्ञासा विशेष रूप से प्रबल होती है | वह जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आता है उनके बारे में प्रश्न पूछ कर हर तरह की जानकारी प्राप्त करना चाहता है |

1.7-4 वास्तविक जगत से सम्बन्ध(Relationship with real world)

इस अवस्था में बालक शैशवावस्था के काल्पनिक जगत का परित्याग कर वास्तविक जगत में प्रवेश करता है | वह उसकी प्रत्येक वस्तु से आकर्षित होकर उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहता है |

1.7-5 रचनात्मक कार्यों में आनन्द (Pleasure in creative activities)

बालक को रचनात्मक कार्यों में विशेष आनंद आता है | वह साधारणतः घर से बाहर किसी प्रकार का कार्य करना चाहता है |

1.7-6 सामाजिक गुणों का विकास (Development of social qualities)

बालक, विद्यालय के छात्रों और अपने समूह के सदस्यों के साथ पर्याप्त समय व्यतीत करता है |

1.7-7 नैतिक गुणों का विकास (Development of moral traits)

इस अवस्था के आरम्भ में ही बालक में नैतिक गुणों का विकास होने लगता है | स्ट्रेंग के अनुसार – "6, 7, और 8 वर्ष के बालकों में अच्छे- बुरे के ज्ञान का एवम न्यायपूर्ण व्यवहार, ईमानदारी और सामाजिक मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है |

1.7-8 संवेगों का दमन व प्रदर्शन (Suppression and Exposition of Emotions)- बालक को अपने संवेगों पर अधिकार रखना एवं अच्छी और बुरी भावनाओं में अन्तर करना आ जाता है |

1.7-9 संग्रह करने की प्रवृत्ति(Tendency to Acquisitiveness)

बाल्यावस्था में बालकों और बालिकाओं में संग्रह करने की प्रवृति बहुत ज्यादा पाई जाती है | बालक विशेषत: कांच की गोलियों, टिकटों, पत्थर के टुकड़ों का संचय करते हैं | बालिकाएँ चित्रों, खिलौनों, गुड़ियों और कपड़ों के टुकड़ों का संचय करती हैं |

1.7-10 सामूहिक प्रवृति की प्रबलता (Intensity of Gregariousness)

बालक में सामूहिक प्रवृति बहुत प्रबल होती है | वह अपना अधिक से अधिक समय दूसरे बालकों के साथ व्यतीत करने का प्रयास करता है |

1.8- किशोरावस्था की विशेषताएँ Characteristics of Adolescence

''adolescence is a period of great stress and strain, storm and strife.''

The one word which best characterizes adolescence is change. The change is psychological, physiological, psychological.

जिन परिवर्तनों की ओर ऊपर संकेत किया गया है ,उससे सम्बन्धित विशेषताएँ निम्नलिखित

1.8-1 Physical Development (शारीरिक विकास)

किशोरावस्था को शारीरिक विकास का सर्वश्रेष्ठ काल माना गया है | इस काल में किशोर के शरीर में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं | जैसे भार और लम्बाई में तीव्र वृद्धि ,मांसपेशियों और शारीरिक ढांचे में दृढ़ता,किशोरों में दाढ़ी और मूंछ की रोमावलियों एवम किशोरियों में प्रथम मासिक प्रभाव के दर्शन |

1.8-2 Mental development (मानसिक विकास)

किशोर के मष्तिष्क का लगभग सभी दिशाओं में विकास होता है | उसमें विशेष रूप से अग्रलिखित मानसिक गुण पाए जाते हैं | कल्पना और दिवास्वप्नों की बहुलता, बुद्धि का अधिकतम विकास,सोचने-समझने और तर्क करने की शक्ति में वृद्धि ,विरोधी मानसिक दशाएं |

1.8-3 Fast friendship (घनिष्ट व व्यक्तिगत मित्रता)

किसी समूह का सदस्य होते हुए भी किशोर केवल एक या दो बालकों से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है ,जो उसके परम मित्र होते हैं और जिनसे वह अपनी समस्याओं के बारे में स्पष्ट रूप से बातचीत करता है |

1.8-4 Difference in behaviour (व्यवहार में विभिन्नता)

किशोर में आवेगों और संवेगों की बहुत प्रबलता होती है | यही कारण है कि विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का व्यवहार होता है | उदाहरण के तौर पर किसी समय वह अत्यधिक क्रियाशील होता है और किसी समय अत्यधिक काहिल,किसी परिस्थिति में साधारण रूप से उत्साहपूर्ण और किसी में असाधारण रूप से उत्साहहीन |

1.8-5 Freedom and revolt feeling (स्वतंत्रता और विद्रोह की भावना)

किशोरों में शारीरिक और मानसिक स्वंत्रता की प्रबल भावना होती है | वह बड़ों के आदेशों,विभिन्न परम्पराओं ,रीति रिवाजों और अंधविश्वासों के बन्धनों में न बंध कर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहता है |अत: यदि उस पर किसी प्रकार का प्रतिबंध लगाया जाता है ,तो उसमें विद्रोह की ज्वाला फूट पड़ती है |

1.8-6 Maturity of sex instinct (काम-शक्ति की परिपक्वता)

कामेन्द्रियों की परिपक्वता और काम शक्ति का विकास किशोरावस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है | इस अवस्था के पूर्वकाल में बालकों और बालिकाओं में समान लिंगों के प्रति आकर्षण होता है | इस अवस्था के उत्तरकाल में यह आकर्षण विषम लिंगों के प्रति प्रबल रुचि का रूप धारण कर लेता है | फलस्वरूप ,कुछ किशोर और किशोरियाँ लिंगीय सम्भोग का आनंद लेते हैं |

1.8-7 Formation of philosophy of life (जीवन दर्शन का निर्माण)

किशोरावस्था से पूर्व बालक अच्छी और बुरी ,सत्य और असत्य ,नैतिक और अनैतिक बातों के बारे में नाना प्रकार से प्रश्न पूछता है | किशोर होने पर वह स्वयं इन बातों पर विचार करने लगता है और फलस्वरूप अपने जीवन–दर्शन का निर्माण करता है | वह ऐसे सिद्धांतों का निर्माण करना चाहता है, जिनकी सहायता से वह अपने जीवन में कुछ बातों का निर्णय कर सके| इसे कार्य में सहायता देने के उद्देश्य से ही आधुनिक युग में 'युवक आंदोलनों' का संगठन किया जाता है |

अभ्यास प्रश्न 4.

(क) बाल्यावस्था शैक्षिक दृष्टी से बालक के .....की अवस्था है |

(ख) शैशवावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में शिशु में .....भावना का अभाव रहता है |

(ग) बाल्यवस्था में बालक , शैशवावस्था के काल्पनिक जगत का परित्याग करके वास्तविक जगत में .....करता है |

(घ) किशोरावस्था बड़े संघर्ष ,तनाव ,तूफ़ान तथा विरोध की अवस्था है | यह कथन किसका है?

1.9 वृद्धि तथा विकास में अन्तर Difference between Growth and Development

वृद्धि तथा विकास में निम्नलिखित अन्तर है:

Growth(वृद्धि)	**Development (विकास)**
1.वृद्धि की प्रक्रिया ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन भर न चलकर एक निश्चित आयु तक ही जारी रहती है उसके बाद शारीरिक वृद्धि रुक जाती है| शारीरिक परिपक्वता ग्रहण करने के पश्चात वृद्धि रुक जाती है		1.विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो जीवन भर चलती रहती है	शारीरिक परिपक्वता ग्रहण करने के बाद भी यह प्रक्रिया जारी रहती है	
2.वृद्धि के साथ यह आवश्यक नहीं है कि विकास हो	जैसे कोई बालक मोटा हो जाता है तो उसके मोटापे के कारण उसकी कार्यकुशलता का विकास नहीं हो सकता,इसलिये वृद्धि विकास को साथ लेकर नहीं चलती है		2.विकास भी वृद्धि के बिना नहीं हो सकता|जैसे बहुत से बालक शारीरिक रूप से नहीं बढते,परन्तु मानसिक,सामाजिक, और संवेगात्मक रूप से अधिक परिपक्व दिखाई देता हैं	
3.वृद्धि शब्द का प्रयोग प्रायः परिणाम अथवा मात्रा में परिवर्तनों हेतु किया जाता है	अर्थात व्यक्ति की लम्बाई ,भार ,आकार ,शरीर आदि में आये परिवर्तनों की वृद्धि के अंतर्गत चर्चा की जाती है		3.विकास शब्द केवल मात्रा अथवा परिणाम से सम्बन्धित परिवर्तनों हेतु प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि यह बालक के व्यक्तित्व के सभी पक्षों में उन्नति के लिए प्रयुक्त होता है अर्थात इसमें परिमाणात्मक तथा गुणात्मक पक्ष सम्मलित होते हैं	
4.वृद्धि की प्रक्रिया को विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया का एक चरण कहा जा सकता है		

इसलिए वृद्धि शब्द बहुत विस्तृत न हो कर सीमित अभिप्राय लिए हुए है |	4.विकास शब्द स्वयं में ही बहुत विस्तृत शब्द है | वृद्धि इस प्रक्रिया की ही एक उपप्रक्रिया कही जा सकती है | इस प्रक्रिया में सभी प्रकार की उन्नति सम्मिलित होती है |
5.वृद्धि की प्रक्रिया के अंतर्गत होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट देखा जा सकता है | इन्हें मापा व तौला भी जा सकता है | जैसे बालक की लम्बाई, भार आदि |	5.विकास गुणात्मक पक्ष होने के कारण दृष्टिगत तो नहीं हो सकता परन्तु इन्हें महसूस किया जा सकता है | ऐसा हम व्यक्ति के व्यवहार में आये परिवर्तनों के निरिक्षण द्वारा कर सकते हैं | विकास को हम किसी मापन द्वारा माप या तौल नहीं सकते जिस प्रकार वृद्धि में किया जा सकता है |
6.वृद्धि शब्द शरीर के किसी एक पक्ष में होने वाले परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है |	6.विकास शब्द व्यक्ति के व्यक्तित्व में सम्पूर्ण परिवर्तनों को संयुक्त रूप से प्रदर्शित करता है |

अभ्यास प्रश्न 5:

(क) विकास जन्म से ..... तक चलने वाली प्रक्रिया है \|

(ख) वृद्धि ,.....का एक चरण है \|

(ग) विकास में ..... भी शामिल होती है \|

1.10 सारांश

विकास का सम्बन्ध वृद्धि से अवश्य होता है ,पर यह शरीर के अँगों में होने वाले परिवर्तनों को विशेष रूप से व्यक्त करता है \| शैशवावस्था की विशेषताओं को ध्यान में रखकर,हमने शिशु और शिक्षा के जिस स्वरुप की रूपरेखा प्रस्तुत की है ,उसके बहुत कुछ अनुरूप सभी प्रगतिशील देशों ने अपने शिशुओं की शिक्षा की सुव्यवस्था कर दी है \| कदाचित भारत ने अपने को प्रगतिशील न मानने के कारण शिक्षा के क्षत्र क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ है \| फ्रॉयड और उसके सहयोगियों ने बाल्यावस्था को बालक का निर्माणकारी काल मानकर इस अवस्था को अधिक महत्व दिया है \| उनका कहना है कि इस अवस्था में बालक जिन वैयक्तिक,सामाजिक और शिक्षा –सम्बन्धी आदतों एवम व्यवहारों के प्रतिमानों का निर्णय कर लेता है, उनको रूपांतरित करना बहुत कठिन हो जाता है \| किशोरावस्था, जीवन का सबसे कठिन और नाजुक काल है \| इस अवस्था में बालक का झुकाव जिस ओर हो जाता है ,उसी दिशा में वह जीवन में आगे बढ़ता है \| वह धार्मिक या अधार्मिक,देश-प्रेमी या देश-द्रोही,अवय्वसाई या अकर्मण्य –कुछ भी बन सकता है \| महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में सत्य का अनुशरण करने की प्रतिज्ञा इसी अवस्था से की है \|

1.11 शब्दावली

- भारतोलन मशीन- भार को तोलने के लिए
- इन्चीटेप –लम्बाई मापने के लिए

- समाजसेवा के काम के कुछ नमूने
- मानसिक विकास को मापने के लिए बुद्धि परिक्षण टेस्ट
- अपराध –प्रवृति को रोकने की मनोवैज्ञानिक तकनीकें
- निकृष्ट संवेगों के दमन तथा उत्तम संवेगों के विकास के लिए सहगामी
- विषय तथा पाठ्यक्रम

1.12 - अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1: (अ) मापा (ब) परिवर्तन (स) कोशिय वृद्धि

अभ्यास प्रश्न 2: (क) विशिष्ट (ख) निरन्तर (ग) हाँ (घ) न

अभ्यास प्रश्न 3: (क) सत्य (ख) असत्य (ग) सत्य

अभ्यास प्रश्न 4. (क)तीव्र विकास (ख) सामाजिक (ग) प्रवेश (घ) स्टेनले हॉल

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकास से आप क्या समझते हैं ? उसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए|
2. अभिवृद्धि तथा विकास के अन्तर को स्पष्ट करते हुए,उनके मुख्य सिद्धांतों का वर्णन कीजिए|
3. किशोरावस्था के अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डालिए |
4. बालक के सामाजिक विकास को उसके विकास के अन्य पक्षों से पृथक नहीं माना जा सकता है | व्याख्या कीजिए |
5. शैशवावस्था को जीवन का महत्वपूर्ण काल क्यों माना जाता है ?
6. अभिवृद्धि तथा विकास में अन्तर स्पष्ट कीजिए |
7. बाल्यावस्था में शैक्षिक विकास के समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

1.14 संदर्भ ग्रन्थ

- डॉ आर. ए. शर्मा :छात्र का विकास एवम शिक्षण –अधिगम प्रक्रिया |
- एलिज़ाबेथ बी हर्लोक :विकास मनोविज्ञान |
- डॉ एस. पी .गुप्ता ,डॉ अलका गुप्ता :उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान |
- जे .एस. वालिया :शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें |
- पी. डी .पाठक :शिक्षा मनोविज्ञान |

- डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा : समायोजनात्मक मनोविज्ञान |
- अखिलेश श्रीवास्तव :मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवम सिद्धांत|
- डॉ शारदा प्रसाद शर्मा :विकास मनोविज्ञान |
- बी कुप्पुस्वामी :समाज मनोविज्ञान के मूलतत्व |

इकाई - 2

विकास के सिद्धांत

Theories of Development

इकाई की रूपरेखा :

2.0 प्रस्तावना

2.1 विकास के सिद्धांत के उद्देश्य (Objectives of Theories of Development)

2.2- कार्ल रोजेर्स का सूचना सिद्धांत/मानवतावादी (Karl Rojer's Information Processing /Humanistic Theory)

2.2-1 व्यक्तित्व के स्थायी पहलू (Enduring Aspect of Personality)

2.2-2 व्यक्तित्व की गतिकी (Dynamics of Personality)

2.2-3 व्यक्तित्व का विकास(Development of personality)

2.2-4 रोजेर्स के सिद्धांत की विशेषताएं

2.2-5 रोजेर्स के सिद्धांत की कमियां

2.2-6 रोजर्स के सिद्धांत की उपयोगिता

2.3- Maslow's Humanistic Theory (मैसलो का मानवतावादी सिद्धांत)

2.3-1 शारीरिक आवश्यकताएं (Physiological Needs)

2.3-2 सुरक्षा की आवश्यकताएँ (Safety Needs)

21.3-3 सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकताएं(Belongingness and Love Needs)

2.3-4 सम्मान की आवश्यकताएं(Esteem Needs)

2.3-5 आत्मसिद्धि की आवश्यकताएं(Self-actualization Needs)

2.4- मैसलो के सिद्धांत की विशेषताएं

2.5- मैसलो के सिद्धांत की कमियाँ

2.6- मैसलो के सिद्धांत की शिक्षा में उपयोगिता

2.7- इरिकसन का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत

2.8- फ्रॉयड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (Freud's Psycho-analytic theory)

2.9- पावलोव का सम्बंधिकरण का सिद्धांत (व्यवहारवाद उपागम) एवं (Pavlov's theory of conditioning, a behavioristic approach)

2.10- स्किनर का व्यवहारवाद का सिद्धांत (Skinner's theory on behaviorism)

2.11- सारांश

2.12- शब्दावली

2.13 - अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.15- संदर्भ ग्रन्थ

2.1. प्रस्तावना

यह बात स्पष्ट है कि प्राणी की सरंचना तथा उसके कार्य करने के ढंग में गुणात्मक तथा मात्रात्मक परिवर्तन लाने वाली विकास प्रक्रिया जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है | किसी भी क्षेत्र में अपनी उच्चतम स्थिति में आ जाने पर प्राणी को उस क्षेत्र के विशेष में परिपक्व कहा जाता है | हम यह भी जानते हैं कि वृद्धि तथा विकास के दो आधार वंशानुक्रम तथा वातावरण हैं | इन दोनों आधारों की परस्पर अंतर्क्रिया के फलस्वरूप प्राणी का शारीरिक,मानसिक,सामाजिक,संवेगात्मक,नैतिक विकास होता है | यहाँ यह भी इंगित करना उचित ही होगा कि वृद्धि तथा विकास के दो मुख्य कारण परिपक्वता तथा अधिगम होते हैं | परिपक्वता वास्तविकता में आन्तरिक अँगों तथा वंशानुक्रम से प्राप्त गुणों का समय के साथ दृढ़ता की अनुकूलतम स्थिति को प्राप्त करना है | अधिगम से तात्पर्य वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए अर्जित गुणों तथा क्षमताओं को प्राप्त करने से है| नि:सन्देह अधिगम के किसी स्तर के लिए न्यूनतम परिपक्वता की उपलब्धता एक पूर्वशर्त होती है| वांछित शारीरिक अथवा मानसिक परिपक्वता स्थिति के अभाव में आगामी स्तर का अधिगम सम्भव नहीं हो पाता है | यही कारण है कि विकास प्रक्रिया में परिपक्वता तथा अधिगम दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है | वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों के द्वारा अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है | इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांत की व्याख्या हम इस इकाई में करेंगे |

2.1- विकास के सिद्धांत के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कार्ल रोजेर्स का सूचना सिद्धांत/मानवतावादी के संप्रत्यय तथा विशेषताओं की व्याख्या करने में सक्षम होंगे |
- कार्ल रोजेर्स के मानवतावादी सिद्धांत की कमियों को बताने में कामयाब होंगे |
- मैसलो का मानवतावादी सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे | इरिकसन का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत की व्याख्या करने में सक्षम होंगे |
- फ्रॉयड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत की व्याख्या करने में सक्षम होंगे |
- पॉवलाव के व्यवहारवादी अनुबद्ध अनुक्रिया सिद्धांत की व्याख्या करने में सक्षम होंगे |
- स्किनर के व्यवहारवादी सक्रिय अनुबद्द सिद्धांत की व्याख्या करने में सक्षम होंगे |

- पॉवलाव तथा स्किनर के सिद्धांतों की शैक्षिक उपयोगिता को समझ सकेंगे |

2.2-कार्ल रोजेर्स का सूचना सिद्धांत/मानवतावादी (Karl Rojer's Information Processing /Humanistic Theory)

कार्ल रोजेर्स ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन व्यक्तित्व निर्माण (Personality Development)के आधार पर किया है | यह व्यक्तित्व का एक मानवतावादी सिद्धांत (Humanistic Theory)है | कार्ल रोजेर्स के अनुसार व्यक्तित्व का निर्माण घटनाओं पर आधारित होता है | उन्होंने व्यक्तित्व की व्याख्या घटना विज्ञान के आधार पर की है | और चूंकि घटना विज्ञान में व्यक्तिगत विचारों का अध्ययन किया जाता है जो व्यक्ति से सम्बन्धित घटनाओं पर आधारित होता है इसलिए इसे सूचना संग्रह सिद्धांत (Information Processing Theory)भी कहते हैं |

रोजेर्स ने मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया और इस परिणाम में पहुंचे कि मनुष्य का व्यवहार कोई यांत्रिक प्रक्रिया (Mechanical Process) नहीं है, यह एक जैविक (Biological) और मनोवैज्ञानिक (Psychological) प्रक्रिया है | व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में मूल भूमिका उसकी मनोशारीरिक (Psycho-Physical) रचना की होती है | व्यक्ति पर्यावरण में किसी उद्दीपक को देखता है और उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है | यह प्रतिक्रिया उसके मस्तिष्क में संचित अनुभवों के साथ इस उद्दीपक की क्रिया के फलस्वरूप होने वाला परिणाम होता है | समीकरण के रूप में निम्नाकित रूप में व्यक्त किया जा सकता है –

क्रिया

उद्दीपक + अर्जित अनुभव ----------→प्रतिक्रिया

Activity

(Stimulus +Acquired Experience ----------→ Response)

रोजेर्स ने व्यक्तित्व विकास की व्याख्या तीन आधारों पर की है – पहला व्यक्तित्व के स्थायी पहलू (Enduring Aspects of Personality), दूसरा व्यक्तित्व की गतिकी (Dynamics of Personality) और तीसरा व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality). अत: सर्वप्रथम इन्हें समझना आवश्यकहै |

2.2-1 व्यक्तित्व के स्थायी पहलू (Enduring Aspect of Personality)

रोजेर्स के अनुसार व्यक्तित्व के दो पहलु है – पहला व्यक्ति की जीव रचना (Organism) और दूसरा व्यक्ति का आत्म(self). मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी है | उसकी जीव रचना (organism) अनुभवों (experience) का केन्द्र होता है | ये अनुभव चेतन अथवा अचेतन किसी भी अवस्था के हो सकते हैं | आत्म (self) से रोजेर्स का तात्पर्य व्यक्ति के अंदर बने प्रासंगिक क्षेत्र में उन अंशों से होता है जो धीरे-धीरे विशिष्टता को प्राप्त कर मूर्त (personalized) रूप प्राप्त कर लेते हैं, एवं 'मैं' या 'मुझको' के रूप में प्रकट होने लगते हैं | व्यक्ति अपने आपको पहचानने लगता है कि वह क्या है? वह अपनी दृष्टि से अच्छे-बुरे का भेद करने लगता है और स्वयं के लिए सुखद और दुःखद

अनुभूतियों में अन्तर समझने लगता है | इस अन्तर को समझने के लिए वह जो कुछ भी करता है उससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है |

2.2-2 व्यक्तित्व की गतिकी (Dynamics of Personality)

रोजेर्स ने व्यक्तित्व की व्याख्या के लिए अभिप्रेरक (Motive) को मान्यता दी है जिसे उन्होंने वस्तुवादी प्रवृति (Objectivity Tendency) कहा है | रोजेर्स के अनुसार वस्तुवादी प्रवृति से तात्पर्य प्राणी में सभी प्रकार की क्षमताओं को विकसित करने की प्रवृति से है, जो व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है |

वस्तुवादी प्रवृति व्यक्ति के लिए अभिप्रेरक का कार्य करती है ,और यह व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं – भूख, प्यास एवं काम आदि की पूर्ति करता है | व्यक्ति वस्तुवादी प्रवृति को एक कसौटी के रूप में प्रयोग करता है | और उसके आधार पर अपने अनुभवों का मूल्यांकन करता है | मूल्यांकन के बाद जो अनुभव उसके आत्म को संतुष्ट करता है उन्हें वह स्वीकार करता है और जो अनुभव संतुष्ट नहीं करते उन्हें अस्वीकार करता है | रोजेर्स के अनुसार वस्तुवादी प्रवृति से मुख्य रूप से दो प्रकार की आवश्कताओं की उत्पति होती है – एक स्वीकारात्मक सम्मान और एक आत्म सम्मान की | स्वीकारात्मक सम्मान से तात्पर्य दूसरों द्वारा दिए गए सम्मान एवं प्रेम से है | यदि बच्चे दूसरों द्वारा स्वीकार नहीं किए जाते, उनसे प्रेम नहीं मिल पाता तो उनमें असंतोष के भाव जागृत हो जाते है जो उनके व्यक्तित्व विकास में बाधक होते हैं | जब किसी व्यक्ति को महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वरा सम्मान एवं प्रेम मिलता है तो उनमें धनात्मक आत्मसम्मान (Positive self regard) की भावना दृढ होने लगती है उससे वह आगे बढ़ने के लिए प्रेरित होता है |

2.2-3 व्यक्तिव का विकास(Development of personality)

रोजेर्स के अनुसार जब व्यक्ति के आत्म सम्मान और उसके स्वयं के अनुभवों (Experience) में संगतता(Congruency) होती है तो व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास सही दिशा में होता है और जब इनमे असंगतता होती है तो उसमें कुंठा, चिंता आदि का विकास होने लगता है जो उसके व्यक्तित्व पर विपरीत प्रभाव डालता है | रोजेर्स के अनुसार हर व्यक्ति का प्रयास होता है कि उसके आत्मसंप्रत्यय (self-concept) और उसके अनुभवों(experience) में संगतता बनी रहे और वह अपने व्यक्तित्व को एक आदर्श स्थति प्रदान करे | इससे वह अपनी कुंठाओं एवं चिंताओं को कम करने का प्रयास करता है और अपने आपको ऐसे व्यक्तित्व के रूप में गढ़ने का प्रयास करता है जो अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को पहचानता हो और उनका सही – सही प्रयोग करता है |

2.2-4 रोजेर्स के सिद्धांत की विशेषताएं

1) रोजेर्स का सिद्धांत मनुष्य की जीव रचना (Organism) पर आधारित है और रचना में उसकी शारीरिक (physical) और मानसिक (mental) दोनों प्रकार की रचनाएँ आती है, इसलिए यह व्यक्तित्व निर्माण की सही व्याख्या प्रस्तुत करता है |

2) इस सिद्धांत का दूसरा मुख्य तत्व है – आत्म (Self). इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति अपनी अंत:शक्तियों को पहचान कर उनके अनुरूप व्यवहार करता है और साथ ही एक आदर्श आत्म (self) को प्राप्त करने का प्रयास करता है |

3) इस सिद्धन्त का तीसरा मुख्य तत्व है – स्वतंत्रता (Freedom). इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति कोई भी कार्य करने के लिए स्वतंत्र होता है और अपने अच्छे-बुरे के लिए भी स्वयं उत्तरदायी होता है |

4) इस सिद्धांत का चौथा मुख्य तत्व है – वस्तुवादी प्रवृति (Objectivity Tendency) इस सिद्धांत के अनुसार यह प्रवृति मनुष्य में अभिप्रेरक का कार्य करती है और मनुष्य को गतिशील रखती है |

5) यह सिद्धांत व्यक्ति को अपनी अन्त:शक्तियों एवं अनुभवों का उपयोग कर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है |

2.2-5 रोजेर्स के सिद्धांत की कमियां

(1) रोजर्स ने अपने सिद्धांत में यह स्पष्ट नहीं किया कि वस्तुवादी प्रवृति क्या है? साथ ही जन्मजात अन्त:शक्तियों की व्याख्या भी पूर्ण रूप से नहीं की है | अन्त:शक्तियों मूलत: शारीरिक (Physiological) है या मनोवैज्ञानिक (psychological) , इसको भी इन्होंने स्पष्ट नहीं किया है |

2. हम जानते हैं कि व्यक्ति की अन्त:शक्तियों में वैयक्तिक भिन्नताएं होती हैं | रोजर्स ने इस तथ्य को भी स्पष्ट नहीं किया है | फिर कौन मनुष्य किन परिस्थितियों में किन व्यवहारों का चयन करता है,यह वैयक्तिक भिन्नता पर निर्भर करता है, इसको इस सिद्धांत के मद्देनजर नहीं रखा जा सकता है |

3. इस सिद्धांत का मुख्य आधार है व्यक्ति के स्वयं के अनुभव | यह मानव जाति तथा उसकी सामाजिक उपलब्धियों को कम महत्त्व देता है |

4. इस सिद्धांत में आत्मसंप्रत्यय और आदर्श आत्म का निर्माण आदमी स्वयं करता है, यह समाज की मान्यता के विपरीत भी हो सकता है | यह सिद्धांत सामाजिक मान्यताओं एवम आदर्शों की अवहेलना करता है जिनके द्वारा ही व्यक्ति समाज में प्रतिस्थापित होता है |

2.2-6 रोजर्स के सिद्धांत की उपयोगिता

रोजर्स का सिद्धांत मानवतावादी व्यक्तित्व सिद्धांत है, यह मनुष्य को मशीन नहीं, जैविक प्राणी मानता है | इस सिद्धांत के विभिन्न पक्षों से शिक्षा सम्बन्धी निम्नलिखित अभिप्रेरार्थ निकलते हैं,इन्हें ही हम शिक्षा के क्षेत्र में इस सिद्धांत की उपयोगिता मान सकते हैं |

1. बालकों की शिक्षा का विधान उनकी अन्त:शक्तियों के आधार पर करना चाहिए |

2. बालकों को कुछ भी पढ़ाने –सिखाने से पहले उन्हें अभिप्रेरित करना चाहिए |

3. बालकों का आकांक्षा स्तर सदैव उच्च बनाने का प्रयत्न करना चाहिए |

4. बालकों को अपने अनुभवों से सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए |

5. बालकों में आत्म संप्रत्यय के साथ –साथ आदर्श-आत्म का चिंतन भी करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उनके आत्म संप्रत्यय और आदर्श आत्म में अधिक अन्तर न हो | इसमें अधिक अन्तर होने पर व्यक्तित्व संतुलन बिगड़ जाता है | इन दोनों के आधार पर ही उनका नैतिक एवम चारित्रिक विकास करना चाहिए |

अभ्यास प्रश्न -1

(क) रोजर्स के सिद्धांत के अनुसार बालकों की शिक्षा का विधान उनकी ..... के आधार पर करना चाहिए |

(ख) रोजर्स के सिद्धांत का मुख्य आधार है व्यक्ति के..... के अनुभव |

(ग) रोजर्स के सिद्धांत का तीसरा मुख्य तत्व क्या है?

2.3- मैसलो का मानवतावादी सिद्धांत Maslow's Humanistic Theory

मैसलो (A. H. Maslow) ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन व्यक्तित्व के सन्दर्भ में किया है | मैसलो ने व्यवहारवादियों और मनोविश्लेष्ण के इस विचार का विरोध किया कि मनुष्य का व्यवहार शारीरिक एवम बाह्य उद्दीपकों पर निर्भर करता है | उन्होंने मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि व्यक्ति की आंतरिक शक्तियां ही उसके लिए अभिप्रेरकों का काम करती हैं | उन्होंने इन अभिप्रेरकों को मनुष्य की आवश्यकताओं के रूप में प्रस्तुत किया है | मैसलो के अनुसार व्यक्ति इन आवश्यकताओं के रूप में प्रस्तुत किया है | मैसलो के अनुसार व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्बन्धित सामग्री एवम साधन जुटाता है| अनुकूल-प्रतिकूल तथ्य,क्रिया,एवम परिस्थिति आदि की व्याख्या करता है और इन सभी को व्यवस्थित रूप में प्रयोग करता है | इस सिद्धांत में अभिप्रेरणा सबसे महत्वपूर्ण पहलू है | मैसलो ने आवश्यकताओं को वर्गीकृत कर इन्हें एक उत्तरोतर क्रम दिया है जिसे आरोही क्रम सोपान कहा जाता है | इस पद सोपान को निम्नाकित रूप में प्रदर्शित किया गया है |

आत्मसिद्धि की आवश्यकताएं

सम्मान की आवश्यकताएं

(Esteem Need)

संबद्धता एवम स्नेह की आवश्यकताएं

(Belongingness and love Needs)

सुरक्षा की आवश्यकताएं

(Safety Needs)

शारीरिक आवश्यकताएं

(Physiological Needs)

2.3-1 शारीरिक आवश्यकताएं (Physiological Needs)

मैसलो के अनुसार शारीरिक आवश्यकताएँ व्यक्ति की मूलभूत और सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताएं होती हैं | इनमें भोजन, पानी, आराम एवं यौन सम्बन्धी आवश्यकताएं प्रमुख होती हैं | व्यक्ति इनको

पूरी करने में ही कभी-कभी अपनी पूरी जिन्दगी व्यतीत कर देता है | इन आवश्यकताओं की पूर्ति किए बिना वह प्राय: इससे ऊपर के स्तर की आवश्यकताओं की प्राप्ति की बात ही नहीं सोचता | ये आवश्यकताएं उसके लिए आवश्यक और प्रबल होती हैं | इनकी पूर्ति के लिए वह प्रयास करता है | ये जैविक आवश्यकताएँ व्यक्ति के लिए इतनी प्रबल होती है की इनके कारण वह कभी-कभी सामाजिक मूल्यों (values) एवं मानकों (norms) की भी अवहेलना कर देता है |

2.3-2 सुरक्षा की आवश्यकताएँ (Safety Needs)

मैसलो के अनुसार मनुष्य पहली आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात सुरक्षा की आवश्यकताओं की प्राप्ति की ओर बढ़ता है | इन आवश्यकताओं के अन्तर्गत शारीरिक सुरक्षा(security), जीवन में स्थिरता(stability), निर्भरता(dependency), बचाव(protection), भय(fear), चिंता(anxiety), आदि आती हैं | मनुष्य इनकी प्राप्ति की साधन सामग्री पर विचार करता है और उन्हें जुटाने के लिए हर संभव प्रयास करता है | नियम-कानून का निर्माण और पालन इन आवश्यकताओं के अंतर्गत आता है |

2.3-3 सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकताएं(Belongingness and Love Needs)

तीसरे क्रम के अभिप्रेरक हैं – सम्बद्धता एवं स्नेह | सम्बद्धता मनुष्य को परिवार एवं समाज में प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है और वह किसी समूह की सदस्यता प्राप्त करने के लिए एवं अच्छा पडोसी बनने का प्रयास करता है | स्नेह व्यक्ति को स्नेह देने व दूसरों से स्नेह पाने को प्रेरित करता है | सम्बद्धता एवं स्नेह मिलने पर व्यक्ति कुसमायोजन करता हैं |

2.3-4 सम्मान की आवश्यकताएं(Esteem Needs)

प्रथम तीन आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद व्यक्ति को आत्म सम्मान एवं दूसरों से सम्मान पाने की आकांक्षा अभिप्रेरक का काम करती है | आत्म सम्मान पाने के लिए वह अपनी स्वयं की योग्यता एवं क्षमता की पहचान करता है, उनमे वृद्धि के उपायों की खोज करता है और आत्मविश्वास,उपलब्धि, स्वतंत्रता आदि की भावनाओं को विकसित करता है | श्रेष्ठता के इन्हीं गुणों के कारण उसे दूसरों से प्रशंसा, प्रतिष्ठा एव सम्मान प्राप्त होता है | इसके परिणामस्वरुप वह अपने आप को योग्य बनाये रखना चाहता है और समाज के लिए उत्पादक कार्य करता है |

2.3-5 आत्मसिद्धि की आवश्यकताएं(Self-actualization Needs)

मैसलो के अनुसार आत्मसिद्धि की आवश्यकताएं व्यक्ति के लिए अंतिम अभिप्रेरक है | इस स्तर के लिए व्यक्ति तभी बढ़ता है जब वह प्रथम चार स्तरों तक पहुँच चुका होता है | आत्मसिद्धि से तात्पर्य ऐसी अवस्था से है जहाँ व्यक्ति अपनी सभी योग्यताओं एवं अन्त: क्षमताओं से पूर्णतया अवगत हो जाता है और उनके अनुरूप अपने आप को विकसित करने की इच्छा करता है |

2.4- मैसलो के सिद्धांत की विशेषताएं

(1) मैसलो के सिद्धांत के अनुसार मानव की आवश्यकताएं उसके लिए अभिप्रेरक का कार्य करते हैं और वह इनकी पूर्ति के लिए क्रियाशील रहता है |

(2) इस सिद्धांत के अनुसार मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति एक विशेष क्रम में होती है जिसमें सर्वप्रथम व्यक्ति नीचे के स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, इसके बाद वह क्रमश: उच्च क्रम की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास करता है |

(3) मैसलो के अनुसार नीचे के क्रम से प्रथम दो स्तर की आवश्यकताएं – शारीरिक आवश्यकताएं और सुरक्षा की आवश्यकताएं निम्न स्तर की आवश्यकताएं होती हैं और शेष तीन आवश्यकताएं उच्च स्तर की आवश्यकताएं होतीहैं |

(4) इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति जैसे-जैसे ऊपर के क्रम की आवश्यकताओं की प्राप्ति की ओर बढ़ता है उसके व्यक्तित्व का विकास होता जाता है और अंतिम आत्मसिद्धि की आवश्यकता को पूर्ण करने पर वह पूर्ण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बन जाता है |

(5) आत्मसिद्धि के सम्प्रत्यय से व्यक्ति को अपनी अन्त:शक्तियों को समझने में सहायता मिलती है | मैसलो ने आत्मसिद्ध व्यक्ति की कुछ विशेषताएं बताई हैं - प्रत्यक्षीकरण में कुशल(Efficient in perception), अन्य को मान्यता देना (Accept others), सादगी(simplicity), समस्या केन्द्रित समझ(problem centered orientation), अकेलापन तथा अलगाव(privacy and detachment), स्वतंत्र(independent), मानवता से जुडा हुआ (identified with mankind), जन्तान्त्रिय विचारधारा (democratic in outlook),हंसमुख स्वभाव (sense of humour), सृजनात्मक(creative) एवं लचीला(non-conformist).

2.5- मैसलो के सिद्धांत की कमियाँ

1) इस सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए मैसलो ने मात्र 49 प्रयोज्य ही लिए थे इसलिए मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इतने कम प्रयोज्यों के आधार पर किसी सिद्धांत का प्रयोजन वैज्ञानिक नहीं हो सकता |

2) मैसलो द्वारा दिए गए आवश्यकता मॉडल के स्तरों को एक दूसरे से अलग करना अत्यंत कठिन कार्य है |

3) मैसलो द्वारा आत्मसिद्ध व्यक्तियों के जो गुण बताये गए हैं उनसे भी सभी वैज्ञानिक सहमत नहीं हैं |

4) मैसलो ने कहा कि व्यक्ति एक स्तर से दूसरे स्तर पर तभी पहुंचता है जब वह एक स्तर की आवश्यकताओं को प्राप्त कर लेता है | व्यवहार में व्यक्ति बिना पूर्व के स्तर की आवश्यकताओं को प्राप्त किए भी उससे ऊपर के स्तर पर पहुंचता है |

5) सम्मान की आवश्यकता को प्राप्त करने के फलस्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति में प्रतिस्पर्धा का विकास होता है जो आगे चलकर कभी-कभी घृणा एवं द्वेष में परिवर्तित हो जाता है |

2.6- मैसलो के सिद्धांत की शिक्षा में उपयोगिता

मैसलो का यह सिद्धांत एक मानवतावादी व्यक्ति सिद्धांत है, यह मनुष्य को मशीन नहीं जैविक प्राणी मानता है | इस सिद्धांत के विभिन्न पक्षों से शिक्षा सम्बन्धी निम्नलिखित अभिप्रेरार्थ निकलते हैं, इन्हें ही हम शिक्षा के क्षेत्र में इस सिद्धांत की उपयोगिता मान सकते हैं |

1) भिन्न-भिन्न स्तर के बच्चों की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं, शिक्षकों को उनकी आवश्यकताओं के आधार पर ही उनके लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए |

2) किसी भी स्तर की शिक्षा का पाठ्यक्रम वास्तविक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए |

3) बालकों को कुछ भी पढ़ाने-सिखाने से पहले उन्हें वह सब पढने-सीखने के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए |

4) व्यक्ति की आवश्यकताएं उसके लिए सबसे प्रबल होती हैं | अत: बालकों को जो कुछ भी पढ़ना- सीखना हो उसका सम्बन्ध उनकी आवश्यकताओं से जोड़ देना चाहिए |

5) बालकों में सम्मान एवं आत्मसिद्धि की आवश्यकताओं को जागृत कर उनके चरित्र का निर्माण करना चाहिए, उन्हें उच्च व्यक्तित्व का व्यक्ति बनाना चाहिए |

अभ्यास प्रश्न 2-

(क) मैसलो के अनुसार शारीरिक आवश्यकताएँ व्यक्ति की..... और सबसे ..... आवश्यकताएं होती हैं |

(ख)) मैसलो द्वारा दिए गए आवश्यकता मॉडल के स्तरों को एक दूसरे से अलग करना अत्यंत कठिन कार्य है | सत्य या असत्य

(ग) किसी भी स्तर की शिक्षा का पाठ्यक्रम वास्तविक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए | सत्य या असत्य

2.7- इरिकसन का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत

अनेक विद्वानों के सिद्धांतों का अध्ययन किया **किन्तु इरिक एच. इरिकसन** का योगदान इस प्रवृति तथा तथ्य को विकसित करने में विशेष रहा है | **इरिकसन** ने विकास के अलग-अलग पहलुओं – संवेगात्मक, मानसिक तथा सामाजिक विकास के संदर्भ में चिन्तन कियाहै |

इरिकसन का जन्म जर्मनी के फ्रेंक्फर्ट क्षेत्र में डेनिस माता-पिता से १९०२ में हुआ था | पिता की मृत्यु शीघ्र हो जाने के कारण इनकी माता ने पुनर्विवाह किया और इनके सौतेले पिता ने इनको गोद ले लिया | **इरिकसन** ने अपनी धारणा का विकास फ्रॉयड के सिद्धांतों पर किया | **इरिकसन** अपनी बौद्धिकता के प्रति इतना ईमानदार रहा है कि वह कहता है कि मैं नये सिद्धांत का विकास नहीं कर रहा हूँ | इसका मत **फ्रॉयड** के मत से तीन प्रकार से भिन्न है –

1. **इरिकसन** ईड (id) से इगो(igo) तक के परिवर्तन पर बल देता है | इस धारणा का विकास फ्रॉयड प्रौबलम्स ऑफ़ एंग्जाइटी में कर चुका है | इरिक्सन यह मानकर चलता है कि इड तथा इगो से पारस्परिक सामाजिक संबंधों का विकास होताहै |
2. **इरिकसन** ने व्यक्ति को उसके परिवेश में देखा है | यह परिवेश व्यक्ति परिवार समाज संस्कृति का होता है | इससे सामाजिक गतिशीलता का विकास होता है |
3. **इरिकसन** समय की मांग के प्रति भी सजग रहा है | मनोवैज्ञानिक बाधाओं पर विजय प्राप्त करके ही व्यक्ति को विकास के अवसर प्राप्त होते हैं |

इरिकसन द्वारा प्रतिपादित विकास के मनो-विश्लेषनात्मक सिद्धांतों का सारांश यह है–

1. यह सिद्धांत सम्पूर्णता तथा संगठन पर बल देता है |
2. मानव जीवन में विकास का क्रम होता है |
3. वह आधारभूत मानव मूल्यों पर विश्वास करता है |
4. मानव व्यवहार का संचालन करने वाले तत्वों यथा-शक्ति, चालक, काम-प्रवृति के अस्तित्व पर विश्वास करता है |
5. वह फ्रॉयड के इस मत का पूर्ण रूप से समर्थन करता है कि मानवीय कार्यों से जीवन के अनेक पक्षों का विकास होता है |
6. मानव विकास के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक वातावरण का निर्माण अनिवार्य है|

इरिकसन का योगदान बाल विकास के क्षेत्र में नयी धारणाओं तथा मान्यताओं को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है | **हैनरी डब्ल्यू. मेयर के अनुसार "फ्रॉयड के बाद अनुसंधानकर्ता, सृजनात्मक चिंतक तथा लेखक के रूप में इरिकसन सम्पूर्ण पश्चिेश के संदर्भ में व्यक्ति का अध्ययन किया है | मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के क्षेत्र में उसने महत्वपूर्ण कार्य किया है | उसने व्यक्ति को वातावरण के सन्दर्भ में आतंरिक शक्तियों का उपयोग करने वाला माना है |"**

अभ्यास प्रश्न 3 –

1. विकास का सम्बन्ध होता है –

(अ) परिपक्वता से (ब) अभिवृद्धि से

(स) आयु से (द) उपरोक्त सभी से

2. अधिगम प्रक्रिया के लिए आवश्यक होती हैं –

(अ) अभ्यास (ब) प्रेरणा

(स)क्रिया तथा अनुभव (द) उपरोक्त सभी

2.8 फ्रॉयड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (Freud's Psycho-analytic theory)

फ्रॉयड ने किशोरावस्था स्वरूप की ही व्याख्या विश्लेषण के आधार पर की है | सिगमंण्ड फ्रॉयड ने मनोलैंगिक विकास की पांच अवस्थाओं का वर्णन किया है – 1) मौखिक अवस्था (oral stage), (2) गुदा अवस्था (anal stage), (3) यौन प्रधान अवस्था (phallic stage), (4) अशांत अवस्था (latency stage), (5) जनेन्द्रिय अवस्था (genital stage). प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएं हैं | किशोरावस्था का सम्बन्ध मुख्य रूप से है | इस अवस्था में काम इच्छा (libido) लडके और लडकियों के जनेंद्रीय (sex-organ) के भीतर भाग में अवस्थित होती है और उन्हें विषमजातीय लैंगिकता (hetero-sexuality) से यौन आनन्द मिलता है |

फ्रॉयड के मनोलैंगिक विकास सिद्धांत के अनुसार बालकों में काम की प्रवृति जन्म से पाई जाती है | फ्रॉयड के अनुसार व्यक्ति अपनी इच्छा से जो भी कार्य करता है जिससे उसे आनन्द मिलता है, उससे उसकी काम वासना की संतुष्टि होती है | मनोलैंगिक की पांचवीं अवस्था – जनेन्द्रिय अवस्था

(genital stage) किशोरावस्था से सम्बन्धित है | फ्रॉयड के अनुसार मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं का वान्शानुकीय गुणों द्वारा निर्धारण होता है और वातावरण के कारको का अपेक्षाकृत बहुत कम योगदान रहता है | फ्रॉयड के अनुसार जननेंद्रियावस्था में किशोरों की शैशवकाल की लैंगिक अभिरुचियाँ (infantile sexual interests) पुनः जागृत हो जाती हैं और किशोरों में आत्म- प्रेम(autoerotic) प्रवृति का ह्रास होने लगता है तथा वे इस अवस्था में विपरीत लिंगीय व्यक्ति से प्रेम करने लगते हैं | लड़के- लड़कियाँ स्वप्रेम अलग होकर समजातीय लैंगिकता(homo-sexuality) तथा विषमजातीय लैंगिकता(hetero-sexuality) में रुचि लेने लगते हैं | उत्तरकालीन किशोरावस्था(later adolescence) में वे विपरीत लिंग की ओर अधिक आकर्षित होते हैं तथा विषमजातीय लैंगिकता द्वारा अपनी यौन इच्छा की संतुष्टि करते हैं | इस अवस्था में लिंगीय आवेगों(sexual impulses) के साथ-साथ संवेगात्मक आवेगों(emotional impulses) की प्रधानता होती है |

इस अवस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का सम्बन्ध किशोरों के संवेगो को अधिक प्रभावित करता है विशेषत: उनमे मनमौजी होना, घृणा करना, चिंता करना तथा तनाव जैसे नकारात्मक व्यवहारों में वृद्धि होती है | इसके अतिरिक्त किशोरों का आत्मकेंद्रित तथा स्वार्थी व्यवहार परोपकार तथा समाज कल्याण की ओर उन्मुखित हो जाता है |

फ्रॉयड का सिद्धांत भी किशोरावस्था के समग्र रूप की व्याख्या करने में असमर्थ है | यह सिद्धांत केवल लिंगीय आवेशों की व्याख्या पर बल देता है और किशोरों के अलिंगीय आवेगों, द्वंदों प्रतिबलों (stresses)तनावों आदि की व्याख्या नहीं करता है |

अभ्यास प्रश्न 4-

(क) सिगमंण्ड फ्रॉयड ने मानोलेंगिक विकास की कितनी अवस्थाओं का वर्णन किया है ?

(ख) सिगमंण्ड फ्रॉयड ने मानोलेंगिक विकास की तीसरी अवस्था का क्या नाम दिया है?

2.9 पॉवलोव का सम्बंधिकरण का सिद्धांत (व्यवहारवाद उपागम) (Pavlov's theory of conditioning, a behavioristic approach)

व्यक्ति का जन्म,विकास तथा मृत्यु सदैव ही मानव के अध्ययन के लिए जिज्ञासा बने रहे हैं | विकास का अध्ययन मानव व्यव्हार की पूर्णता को जानने के लिए होने लगा है | इसलिए इसका महत्व और बढ़ गया है | आज व्यक्ति के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करना अनेक नवीन पहलुओं का अध्ययन करने के लिए आवश्यक हो गया है | व्यवहारवादियों ने परिणाम के नियम को अभ्यास के नियम में ही सम्मलित करने का प्रयास किया | सीखने के सम्बन्ध में बाट्सन ने अभ्यास के नियम को लाभप्रद बताया | जन्म के शिशु में अनेक प्रतिक्रियाएं रहती हैं | वह अपने अँगों को इधर –उधर चलाता है,उसके शरीर में मांसपेशियां फैलती और सिकुड़ती रहती है | शिशु ने केवल शारीरिक गतियों को ही जन्म से पाया है | बुद्धि,विशेष योग्यता आदि को उसने वंशानुक्रम से नहीं प्राप्त किया | मूलप्रवृति भी जन्मजात नहीं है | पॉवलोव के अनुसार किसी उद्दीपक से एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया होता है | यदि यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया किसी अन्य पदार्थ या घटना से उत्तेजित हो जाये तो उसे हम सम्बन्ध प्रतिक्रिया कह सकेंगे | व्यवहारवद को पॉवलोव के प्रयोगों से बड़ी सहायता मिली | पॉवलोव रूसी वैज्ञानिक था और उसकी रुचि शरीर विज्ञान में विशेष रूप से थी | उसने

सम्बन्ध सहज क्रिया का आविष्कार किया | सम्बन्ध सहज क्रिया का प्रत्यय व्यवहारवाद का प्रमुख प्रत्यय गया है | किन्तु पावलोव ने सम्बन्ध सहज क्रिया का आविष्कार आनुषगिकरूप में ही किया था | एक समय वह कुत्ते के ऊपर पाचन-क्रिया से सम्बन्धित प्रयोग कर रहा था | यह प्रयोग विशुद्ध रूप से शरीर विज्ञान के क्षेत्र में था | उसने देखा कि जो व्यक्ति कुत्ते को भोजन देने आता था उस व्यक्ति के आने से कुत्ते के मुहँ में लार आ जाती थी | भोजन देखने पर ही लार नहीं आती थी वरन व्यक्ति को देख कर भी | यदि वह व्यक्ति बिना भोजन लिए भी उस कुत्ते के सामने से गुजरता था तो भी कुत्ते के मुह में लार आने लगती थी | इस स्थिति को देखकर पॉवलोव ने एक विधिवत प्रयोग किया | कुत्ते को एक निश्चित समय पर भोजन दिया जाता था और भोजन देते समय घंटी बजाई जाती थी | वहाँ पर भोजन उत्तेजना थी और लार आना प्रतिक्रिया | भोजन स्वाभाविक उत्तेजना थी और इस उत्तेजना की उपस्थिति में लार आना स्वाभाविक प्रतिक्रिया | यह देखा गया कि भोजन देते समय घंटी बजाने के कारण बाद में केवल घंटी बजने से ही कुत्ते के मुहँ में लार आ जाती थी | घंटी बजाना कृत्रिम उत्तेजना थी क्योंकि घंटी से लार आना स्वाभाविक प्रतिक्रिया नहीं है | किन्तु लार आने की प्रतिक्रिया घंटी बजाने पर भी होने लगी |

कृत्रिम उत्तेजना ने स्वाभाविक उत्तेजना का स्थान ले लिया | यह सम्बंधिकरण हुआ | यहाँ पर प्रतिक्रिया सम्बंधिकृत हो गई | जब प्रतिक्रिया किसी ऐसी उत्तेजना से सम्बन्धित कर दी जाती है जो मूलतः उस प्रतिक्रिया की उत्तेजना नहीं है तो उस प्रतिक्रिया को सम्बंधिकृत प्रतिक्रिया कहा जाता है| पॉवलोव द्वारा कुत्ते पर किया गया यह प्रयोग बड़ा सरल है किन्तु यह सम्बंधिकरण की प्रतिक्रिया को समझाने के लिए पर्याप्त है | कभी-कभी प्रतिक्रिया वही रहती है और कृत्रिम उत्तेजना मूल उत्तेजना का स्थान ले लेती है जैसा की ऊपर के प्रयोग से स्पष्ट है और कभी-कभी उत्तेजना वही रहती है | किन्तु एक दूसरी प्रतिक्रिया मूल प्रतिक्रिया का स्थान ले लेती है | दूसरी दशा में उत्तेजना का ही सम्बंधिकरण हो जाता है | एक उदाहरण लीजिये | बालक किसी वस्तु की उपस्थिति पर उसकी ओर इशारा करता है | वस्तु उत्तेजना है, इशारा प्रतिक्रिया | बाद में चलकर बालक उस वस्तु की उपस्थिति पर उसकी ओर इशारा करने की बजाय उसका नाम लेना सीख जाता है | वस्तु वही है अर्थात उत्तेजना वही है किन्तु प्रतिक्रिया बदल गयी है | सम्बंधिकरण की दोनों ही दशाओं में उत्तेजना और प्रतिक्रिया के मूल सम्बन्ध में परिवर्तन आता है | सम्बंधिकरण की वृद्धि के विकास का श्रेय पॉवलोव और उसके शिष्य को ही है |

मनुष्य एवं पशु सभी इसी विधि से सीखते हैं | कुत्ते के उदाहरण में हमने उच्चकोटि की सम्बद्ध क्रिया देखी| वस्तुतः भोजन के स्वाद से लार आती है | स्वाद का स्थान गंध ले लेती है | कुत्ते के बच्चे में यह क्रिया नहीं होती| धीरे-धीरे उसकी सम्बद्ध क्रिया का विकास कर दिया जाता है | मनुष्यों में भी यही होता है | बच्चा जोर की आवाज से तो डरता है, किन्तु सांप या आग से नहीं डरता | यदि बच्चा आग के पास जाता है या बच्चे के सामने से सांप निकलता है तो लोग जोर-जोर से चिल्लाने लगते हैं तो बच्चा डर जाता है | कई बार ऐसा होने से बच्चा सांप और आग से डरने लगता है |

सम्बद्ध सहज क्रिया के आविष्कार से व्यवहारवाद को बड़ा बल मिला | इस विधि से व्यवहार का वस्तुनिष्ट अध्ययन किया जा सकता है | इस विधि की वस्तुनिष्ठता से ही व्यवहारवाद इसकी ओर आकर्षित हुआ | व्यवहारवाद के अनुसार मनोविज्ञान का लक्ष्य व्यवहार का नियंत्रण करना है | मनोविज्ञान को किसी उत्तेजना के द्वारा प्रस्तुत प्रतिक्रिया की अथवा किसी प्रतिक्रिया के कारण स्वरूप उत्तेजना की व्याख्या करना है | इस प्रकार मनोविज्ञान में ज्ञानेन्द्रिय, ग्रंथि और मांस-पेशी तथा

स्नायु मंडल का विशेष महत्व है | घनात्मक व्यवहार, मूल्यों ,संकल्प ,मनोभाव और आदतें अनुकूलता की सहायता से बनाई तथा विकसित की जा सकती हैं तथा निषेधात्मक व्यवहार,मनोभाव तथा आदतें हटाई जा सकती हैं | इस विधि के प्रयोग से भ्रमों को दूर किया जा सकता है | उदाहरण के तौर पर एक बच्चे के मन में यह भ्रम बैठ जाता है कि जब वह बिल्ली को रास्ता काटते देखता है तो उसका नुकसान होता है | इस प्रकार के भ्रम को अधिक अनुकूलता द्वारा दूर किया जा सकता है | बच्चे को जब बिल्ली रास्ता काट जाये,नुकसान न हो | इस प्रकार उसका भ्रम दूर हो जाएगा | यह सिद्धांत सभ्यता तथा उन्नति के लिए लाभदायक है | इन सिद्धांत की सहायता से बालक छोटी सी उम्र में बहुत सी चीजें सीख जाता है | यह सिद्धांत वातावरण के साथ समायोजन करने में भी बहुत लाभदायक है |

अभ्यास प्रश्न 5-

(क) पुनर्वलन अधिगम सिद्धांत को पॉवलोव ने दिया है | सत्य या असत्य

(ख) पैबलाव ने कुत्ते पर प्रयोग किया |सत्य या असत्य

2.10 स्किनर का व्यवहारवाद का सिद्धांत (Skinner's theory on behaviorism)

व्यक्ति के विकास पर वंश परम्परा के अतिरिक्त जिन बातों का प्रभाव पड़ता है वे सब वातावरण के अंतर्गत है | वातावरण व्यापक शब्द है | इसके अंतर्गत सामाजिक,नैतिक,आर्थिक,राजनैतिक,शारीरिक,बौधिक,तत्व आते हैं, जो व्यक्ति के विकास को प्रभावित करते हैं | भोजन ,परिवार ,विद्यालय, ग्राम, शिक्षा आदि बातें वातावरण के अंतर्गत आती हैं| दार्शनिक लॉक ने जब यह कहा था कि मानव मन एक स्वच्छ प्लेट के समान है और उस पर कुछ भी लिखा जा सकता है तो वह वातावरण को ही सर्वाधिक शक्तिशाली मान रहा था | शिक्षा द्वारा उपयुक्त वातावरण का निर्माण होता है जिससे बालक के विकास को उचित दिशा दी जा सकती है| कक्षा के अंदर शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह बालक पर पड़ने वाले वातावरण के प्रभाव को समझे,बालक के विकास की गति का निदान खोजे उसके विकास में अन्य,बालक के विकास की अपेक्षा आए अन्तर को समझे और बालक के विकास को उपयुक्त दिशा प्रदान करे1 वह बालक में अपने विकास के प्रति उचित तथा यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने में सहायता करे | स्किनर ने व्यवहारवाद को नये आयाम दिए | स्किनर के अनुसार प्रयोगकर्ता का प्रमुख कार्य यह है की वह उद्दीपक प्रदान कर दे और उस उद्दीपक के प्रति प्राणी की प्रतिक्रिया को जान ले | उद्दीपक और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध के आधार पर व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है | मनोवैज्ञानिक का कार्य बाह्य व्यवहार का अध्ययन करना है न की व्यवहार की आंतरिक रचना का उसे ज्ञान प्राप्त करना है | इस प्रकार स्किनर ने व्यवहार के अध्ययन में वेयुह(molar)दृष्टिकोण का समर्थन किया | स्किनर कहता है कि प्रयोगात्मक विचलनों पर व्यवहार कहाँ तक निर्भर है इसी बात का पता लगाना , मनोवैज्ञानिक का कार्य है | उद्दीपक एवं अन्य अनेक दशाओं पर प्रयोगकर्ता नियंत्रण स्थापित कर सकता है और वह यह देख सकता है कि प्राणी की प्रतिक्रिया उद्दीपक पर निर्भर है या प्रयोगात्मक विचलन पर |

स्किनर ने एक विशेष प्रकार की समस्या- मंजुषा (puzzle-box) का निर्माण किया जिसे प्राय: स्किनर-मंजूषा कहा जाता है | उसने समस्या-मंजूषा के आधार पर सीखने पर कुछ प्रयोग किए | इन प्रयोगों के विषय में सह्चर्य्यावाद के अध्ययन में वर्णन किया जा चुका है |

स्किनर के मत को मौलिक संकार्यवाद का प्रत्यय भौतिकी से आया है | भौतिकी में इसका संबंद्ध वैज्ञानिक प्रत्ययों के अर्थ से है | किसी वैज्ञानिक पद का अर्थ घटना या दृश्य के मापने के कार्य से लगाया जाता है | किसी वैज्ञानिक पदों को संकार्यों से पृथक नहीं समझा जाता है | भौतिकी में प्रयुक्त संकार्यवाद को मनोवैज्ञानिक ने जांचा और उन्होंने इसे मनोविज्ञान में भी प्रयुक्त किया | स्किनर अपने को संकार्यवादी कहने में गर्व अनुभव करता था | उसने संकार्यवाद के चार आवश्यक तत्व बताये| संकार्यवाद में किसी के द्वारा किया गया निरीक्षण निहित है | दूसरे निरीक्षण करने में सांख्यकी कार्य, तीसरे पूर्व एवं पश्चत् के वर्णनों के मध्य में आये तार्किक एवं गणनात्मक सोपान भी मुख्य है | चौथी बात विशेष महत्व की है और वह हैं उपर्युक्त तीनों के अतिरिक्त 'कुछ नहीं'|

यदि हम यह मान लें कि जिस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का हम अध्ययन करने जा रहे हैं वह वही है जिसका हम अध्ययन करने जा रहे हैं तो हमने गोलमाल शब्दों में उस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का अर्थ तो दे दिया लेकिन समस्या का उपयुक्त समाधान हम नहीं प्राप्त कर सके | स्मृति वह है जिसे हम नापने जा रहे हैं आदि विचार तर्कसंगत मालूम नहीं होते | हम बिना किसी धारणा के किसे नापने चलेंगे ? यदि कोई परिकल्पना या धारणा पहले से है तो उसकी समीक्षा भी आवश्यक है | संकार्यवाद इस तथ्य की ओर आँख मूँद लेता है | यह सिद्धांत शिक्षक को शिल्पकार की संज्ञा देता है क्योंकि इस सिद्धांत के प्रयोग से वह छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन ला सकता है | इस सिद्धांत ने शिक्षा तकनीकी,अनुदेशन तकनीकी,अभिक्रमित अनुदेशन तकनीकी का विकास किया है जिसमें प्रत्येक छात्र अपनी अध्ययन गति से अनुदेशन का अनुसरण कर सकता है |

अभ्यास प्रश्न 6-

(क) सक्रिय –अनुबध अधिगम सिद्धांत का प्रतिपादन..... ने किया |

(ख)..... में पुनर्वलन प्राणी की अनुक्रिया से स्वतंत्र होता है |

2.11 सारांश

रोजेर्स ने मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया और इस परिणाम में पहुंचे कि मनुष्य का व्यवहार कोई यांत्रिक प्रक्रिया (Mechanical Process) नहीं है, यह एक जैविक (Biological) और मनोविज्ञानिक(Psychological) प्रक्रिया है | मैसलो ने आवश्यकताओं को वर्गीकृत कर इन्हें एक उत्तरोतर क्रम दिया है जिसे आरोही क्रम सोपान कहा जाता है | इरिकसन ने विकास के अलग-अलग पहलुओं – संवेगात्मक, मानसिक तथा सामाजिक विकास के संदर्भ में चिन्तन किया है | फ्रॉयड के मनोलैंगिक विकास सिद्धांत के अनुसार बालकों में काम की प्रवृति जन्म से पाई जाती है | फ्रॉयड के अनुसार व्यक्ति अपनी इच्छा से जो भी कार्य करता है जिससे उसे आनन्द मिलता है, उससे उसकी काम वासना की संतुष्टि होती है | पॉवलोव के अनुसार किसी उद्दीपक से एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया होता है | यदि यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया किसी अन्य पदार्थ या घटना से उत्तेजित हो जाये तो उसे हम सम्बन्ध प्रतिक्रिया कह सकेंगे | स्किनर ने

व्यवहारवाद को नये आयाम दिए | स्किनर के अनुसार प्रयोगकर्ता का प्रमुख कार्य यह है कि वह उद्दीपक प्रदान कर दे और उस उद्दीपक के प्रति प्राणी की प्रतिक्रिया को जान ले |

2.12-शब्दावली

- **समस्या**- मंजुषा(puzzle-box)-स्किनर के प्रयोग के लिए |
- **इड तथा इगो** - पारस्परिक सामाजिक संबंधों के विकास के लिए |
- **घंटी** - आवाज पैदा करने के लिए |
- **आत्मसिद्धि** - योग्यताओं एवं अन्त: क्षमताओं से पूर्णतया अवगत |
- **आत्म** - व्यक्ति के अंदर बने प्रासंगिक क्षेत्र |

2.13 -अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1

(क) अन्त:शक्तियों (ख) स्वयं (ग) स्वतंत्रता

अभ्यास प्रश्न -2

(क) मूलभूत और महत्वपूर्ण (ख) सत्य (ग) सत्य

अभ्यास प्रश्न 3 –

(क) उपरोक्त सभी से (ख) उपरोक्त सभी

अभ्यास प्रश्न 4-

(क) पांच (ख) यौन प्रधान अवस्था

अभ्यास प्रश्न 5-

(क) असत्य (ख) सत्य

अभ्यास प्रश्न 6-

(क) स्किनर (ख) स्वत: शेपिंग

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. वाटसन ने व्यवहार का किस प्रकार अध्ययन किया ?
2. प्रारम्भिक पर्यावरणीय संपन्नकरण का मानव व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करें |
3. साधनात्मक अनुबंधन से आप क्या समझते हैं?साधनात्मक अनुबंधन के विभिन्न प्रकारों का उदाहरण सहित व्याख्या करें |
4. स्किनर के व्यवहारवाद के सिद्धांत का उदाहरण सहित व्याख्या करें?

5. पावलोव के सम्बंधिकरण के सिद्धांत (व्यवहारवाद उपागम) का शैक्षिक उपयोगिताओं सहित वर्णन करें |
6. फ्रॉयड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार उपयोगी है?
7. मैसलो के मानवतावादी सिद्धांत की व्याख्या आप किस प्रकार करेंगे ?

2.15 -संदर्भ ग्रन्थ

- डॉ आर ए शर्मा :छात्र का विकास एवम शिक्षण –अधिगम प्रक्रिया |
- एलिज़ाबेथ बी हर्लोक :विकास मनोविज्ञान |
- डॉ एस पी गुप्ता ,डॉ अलका गुप्ता :उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान |
- जे एस वालिया :शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें |
- पी डी पाठक :शिक्षा मनोविज्ञान |
- डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा : समायोजनात्मक मनोविज्ञान |
- अखिलेश श्रीवास्तव :मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवम सिद्धांत|
- डॉ शारदा प्रसाद शर्मा :विकास मनोविज्ञान |
- बी कुप्पुस्वामी :समाज मनोविज्ञान के मूलतत्व |
- सामान्य उच्चतर मनोविज्ञान |

इकाई - 3

जन्म-पूर्व विकास, जन्म के समय और जन्म बाद विकास

Prenatal Development, Natal, Post natal Development

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 परिभाषा

3.4 विकास के मुख्य पहलू

3.5 विकास के मुख्य अवस्थाएँ

3.5.1 जन्म-पूर्व विकास

3.5.2 जन्म के समय विकास

3.5.3 जन्म बाद विकास

3.6 शैशवावस्था मे विकास

3.7 बाल्यावस्था मे विकास

3.8 किशोरावस्था मे विकास

3.9 विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

3.10 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

3.11 सारांश

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

"Development is continuous and gradual process"

विकासात्मक मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो मनुष्य के जीवन मे हो रहे परिवर्तन के बारे मे बताता है। मूल रुप से यह शिशुओं और बच्चों से सम्बंध रखता है, पर इस क्षेत्र में शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था और पूरे जीवन काल को लिया गया है। विकासात्मक

मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक शाखा मानी जाती है। विकासात्मक परिवर्तन काफी हद तक जन्म से पहले के जीवन के दौरान अनुवांशिक कारकों और घटनाओं से प्रभावित हो सकते हैं।

विकास से तात्पर्य कार्यक्षमता व कार्यविधि मे बढोतरी से है। विकास परिवर्तन श्रृंखला की वह अवस्था है, जिसमें बच्चा भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढावस्था तक गुजरता है, विकास कहलाता है। बालक का विकास उस समय से ही प्रारंभ हो जाता है जब बालक माँ क़े पेट में होता है।

मानव विकास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति को गर्भ मे आने से लेकर मृत्यु तक विकास के अनेक सोपानों से गुजरना होता है। गर्भावस्था से लेकर जन्म तक बालक मे अनेक प्रकार के परिवर्तन निरन्तर रूप से होते रहते हैं। मनुष्य मे परिवर्तनों का क्रम निरन्तर जारी रहता है किन्तु उसकी गति धीमी हो जाती है। एक सामान्य पोषित बालक में प्रथम वर्ष में तेजी से वृद्धि होती है। वजन में प्रतिदिन 25 से 30 ग्राम बढ़ोतरी होती है। तत्पश्चात यह वृद्धि कम हो जाती है। एक तथ्य सामान्य रूप से अनुमोदित है कि छ: महीने में शिशु का वजन, जन्म की तुलना में दुगुना तथा एक वर्ष में तिगुना हो जाता है, विकास का यह क्रम किशोरावस्था तक जारी रहता है। इस संबंध में विस्तार रूप से जानने के लिए विकास को समझना आवश्यक है।

विकास की प्रक्रिया संसार के सभी जीवों में पाई जाती है। यद्यपि प्राचीन समय में बाल विकास के प्रति उदासीनता थी। आधुनिक युग में विषय के महत्व को प्राथमिकता दिए जाने के कारण मनोवैज्ञानिकों की रूचि मानव विकास के अध्ययनों में दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। बालक का विकास मानव विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। बालक का विकास ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के भविष्य की पृष्ठभूमि तैयार करता है। बालक ही समस्त आकांक्षाओ और अभिरूचियों का केन्द्र होता है। बाल विकास का अध्ययन मनोवैज्ञानिकों के साथ साथ जनसाधारण के लिए भी बहुत उपयोगी है।

अत: बाल विकास का संबंध बालक बालिकाओं की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा परिपक्वता तक का काल इसकी अध्ययन सीमा में आता है।

3.2 उद्देश्य (Aims)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ पायेंगे :-

- विकास के अर्थ को समझ सकेंगे।
- जन्मपूर्व,जन्म के समय और जन्म के बाद के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को समझ संकेगे।
- विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या कर संकेगे।
- विभिन्न अवस्थाओ को प्रभावित करने वाले कारकों को जान पायेंगे।

3.3 परिभाषा (Definitions)

विकास के विषय मे अनेक विद्धानो ने अनेक धारणाएँ व्यक्त की है।

Hurlock: -Development reference qualitive changes, it is not limited to growing layer. It consists of series of changes leading towards the goal of maturity.

Munroe: - Development is a series of changes in which an organism passess from embryonic plate of maturity.

James Drever: - Development means a change in an organism in continuously. **Crow and Crow**---"The child is first and foremost a physical being. His physical constitution is basic to the development of his attitudes and behavior. Hence, it is necessary to study the patterns of his physical growth."

Kolesnik-----" The term growth, development, maturation and learning refer to the physical, mental, social, emotional and moral changes which a person experiences as he advances through life."?

3.4 विकास के मुख्य पहलू (Main Aspects of Development)

शैक्षिक दृष्टि से विकास के सभी पक्षों का अत्यधिक महत्व है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न पक्षों का विकास किस प्रकार होता है तथा विकास की गति को किस प्रकार से तीव्र गति से बढ़ाया जा सकता है।

इन सभी पक्षों को जानने के लिये ही इसका अध्ययन आवश्यक है। विकास की प्रत्येक अवस्था (Infancy, Childhood, Adolescence) में बालक में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, गामक (प्रेरक) आदि परिवर्तन होते है। विकास के निम्नलिखित पहलू माने गए हैं।

1 . शारीरिक विकास

2. मानसिक विकास

3. गत्यात्मक विकास

4. भाषा विकास

5. संवेगात्मक विकास

6. सामाजिक विकास

7. नैतिक विकास

8. व्यक्तित्व विकास

9. चारित्रिक विकास

10. सृजनात्मक विकास

11. कल्पना विकास

12. खेल विकास

3.5 विकास की मुख्य अवस्थाएँ (Main Stages of Development)

बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाएं हैं। इन विभिन्न अवस्थाओं में बालक का व्यक्तित्व अनेक प्रकार से विकसित होता है। व्यक्तित्व के विकास में शारीरिक विकास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि शरीर शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था के समापन तक सभी क्षमताओं, आवश्यकताओं और भावनाओं का आधार स्तंभ है।

विकास की अवस्थाओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है –

3.5.1 जन्म पूर्व विकास

विकास की दृष्टि से गर्भकालीन अवस्था को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है -

1 डिम्बावास्था

2 भ्रूणीय अवस्था

3 भ्रूणावस्था

यद्यपि शिशु का जन्म ही एक संपूर्ण एवं सतत प्रक्रिया का परिणाम है। यह समय 9 कैलेण्डर मास अथवा 10 चन्द्रमास अथवा 280 दिन का होता है। असामान्य अवस्था में न्यूनतम समय 180 दिन तथा अधिकतम 334 दिन हो सकता है। उपरोक्त तीनों अवस्थाओं का विवरण निम्न प्रकार है -

1. **डिम्बावस्था -** डिम्बावस्था को बीजवस्था भी कहा जाता है। यह अवस्था शुक्राणु एवं डिब्ब के संयोग के समय से लेकर भी कहा जाता है। यह अवस्था दो सप्ताह तक मानी गई है। इस अवस्था मे जीव अण्डे की शक्ल का होता है जिसे युक्ता कहते है। युक्ता में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते रहते हैं। कोशों के भीतर खोखलापन विकसित होने लगता है। संसेचित डिम्ब वाहिनी विकसित होने लगते हैं। संसेचित डिम्ब, डिम्बवाहिनी नलिका द्वारा गर्भाशय में आ जाता है। यह परिस्थिति जोखिमपूर्ण होती है। संसेचित डिम्ब गर्भाशय नलिका में नीचे और लगभग एक सप्ताह मे गर्भाशय में पहुंच जाता है। इसके पश्चात सहगर्भता आरंभ हो जाती है एवं गर्भ जीव का उत्तरोत्तर विकास होता रहता है।

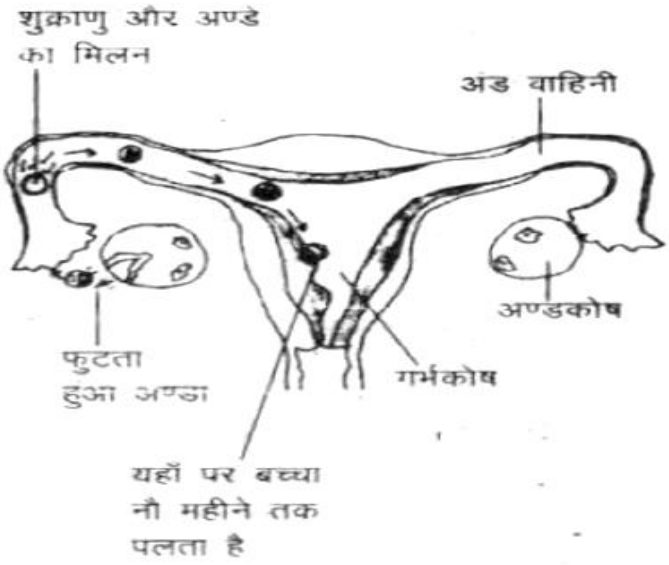

गर्भधारण के पश्चात संसेचित डिम्ब अनेक कोशिकाओं में विभक्त हो जाता है , और भ्रूण का रूप ले लेता है। गर्भाशय में संसेचित डिम्ब का आकार आलपिन के सिर की भांति होता है। गर्भाशय में पहुंचने के बाद लगभग यह एक सप्ताह तक तैरता रहता है। लगभग 10 दिन मे यह गर्भाशय की दीवार से चिपक जाता है और आहार के लिए मां के शरीर से संबंधितहो जाता है। यहीं से वह अपना आहार माता के गर्भ से पाने लगता है।

2. **भ्रूणीय अवस्था -** यह समय गर्भधारण के दो सप्ताह बाद प्रारंभ होता है। दो माह तक का समय भ्रूणीय अवस्था होती है । भ्रूण का आरोपण प्राय: गर्भाशय के ऊपरी भाग अण्डवाहिनी नलिका के द्वार के समीप होता है। विकसित भ्रूण की कोशिकाएं बाद मे एक गुच्छे का आकार धारण कर लेती है, जिसे मोरूला कहते हैं। मोरूला कोशिकाओं की तीन विभिन्न परतों से भिन्न भिन्न अंगों का निर्माण होता है। बाहरी परत को **एक्टोडेरम** कहते हैं। इससे त्वचा, बाल, नाखून, दांत, त्वचा ग्रंथियों और संवेदन ग्रंथियां बनती हैं। मध्य परत **मेसोडेरम** कहलाती है, जिससे त्वचा का आन्तरिक भाग और मांसपेशियों का निर्माण होता है। तीसरी परत **एन्डोडेरम** कहलाती है जिससे संपूर्ण पाचन संस्थानों का निर्माण होता है। फेफड़े, स्त्राव ग्रंथियां, यकृत, थायराइड आदि आन्तरिक अंगों का विकास इसी परत से होता है।

ये सभी अंग अपने से संबंधित कोशिकाओं के विकसित होने पर सामान्य आकार के हो जाते हैं। भ्रूण और गर्भाशय की दीवार के मध्य निकले हुए अंकुर से मिलकर डिम्ब रज्जू अपरा का निर्माण होता है। आरंभ में यह एक धागे की शक्ल का होता है। परन्तु विकसित होते होते नलिका का रूप धारण कर लेता है। इसी अपरा की रक्त वाहिकाओं की सहायता से भ्रूण अपना पोषक तत्व गर्भाशय की रक्त वाहिकाओं से प्राप्त करता है। यदि अण्डाणु गर्भाशय ग्रीवा के निकट आरोपित होता है तो अपरा की स्थिति गर्भ के सामने होती है। भ्रूण के विकास के क्रम में अपरा भी बढता जाता है एवं गर्भाशय के अन्तपृष्ठ का 3/4 भाग

इससे आच्छादित हो जाता है। अपरा और गर्भ के बीच नाभि नाल होती है, उसका एक छोर भ्रूण की नाभि से और दूसरा छोरा अपरा के मध्य भाग से जुडा रहता है। गर्भनाल में धमनी और शिरा रहती है। प्रसव के समय तक अपरा अन्त:गर्भाशय कला के साथ मजबूती से जुडा रहता है। अपरा सूक्ष्म जीव के गर्भ को सूक्ष्म जीवों के प्रवेश से रोकता है, इससे गर्भ के संक्रमित होने की संभावना न्यून हो जाती है।

भ्रूणीय अवस्था में झिल्ली का भी निर्माण होता है। यह पानी युक्त थैली होती है और भ्रूण को चोट आदि से सुरक्षा दिलाती है। शिशु के विकासानुसार थैली का आकार भी बढता जाता है। शिशु प्रसव के समय शिशु के गर्भ से बाहर आने में यह थैली मददगार होती है।

दूसरे माह के अन्त तक भ्रूण की लम्बाई 1 से 2 इंच तथा भार लगभग 2 ग्राम हो जाता है। शरीर की तुलना में सिर का विकास पहले होता है, आंखों की जगह बनने लगती है, कानों का आभास होने लगता है। नाक में केवल एक छिद्र होता है। मुंह बिना ठोड़ी के होता है। इसी समय धड़, यकृत, आंतों, यौन, अंगों, हाथ पैरों एवं अन्य हड्डियों के निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। इस अवस्था में भ्रूण को सरलता से पहचाना जा सकता है।

यह समय बहुत ही कठिनाई का होता है। उस समय माता पिता की लापरवाही से गर्भपात होने की संभावना प्रबल हो जाती है। इसका प्रमुख कारण संवेगात्मक आघात, दुर्बल आहार तथा असन्तुलित की स्थिति का पाया जाना है। इस अवस्था में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होने पर भ्रूण में विकृत्तियां उत्पन्न हो जाती है।

3. **भ्रूणावस्था -** यह समय गर्भ स्थिति के दूसरे मास से लेकर बालक के जन्म तक अर्थात दसवें चन्द्रमास अथवा नवें कैलेण्डर मास तक रहता है। इस अवस्था में शरीर के उन अंगों में वृद्धि होती है, जो पहले की अवस्था में निर्मित हुए थे। तीसरे माह मे गर्भस्थ शिशु का भार 3/4 औंस तथा लम्बाई 3 1/2 इंच होती है। दो माह बाद इसकी लम्बाई 10 इंच एवं भार 9-10 औंस हो जाता है। आठवें माह के अन्त तक लम्बाई 16-18 इंच तथा भार 4-5 पाउण्ड तक हो जाता है।

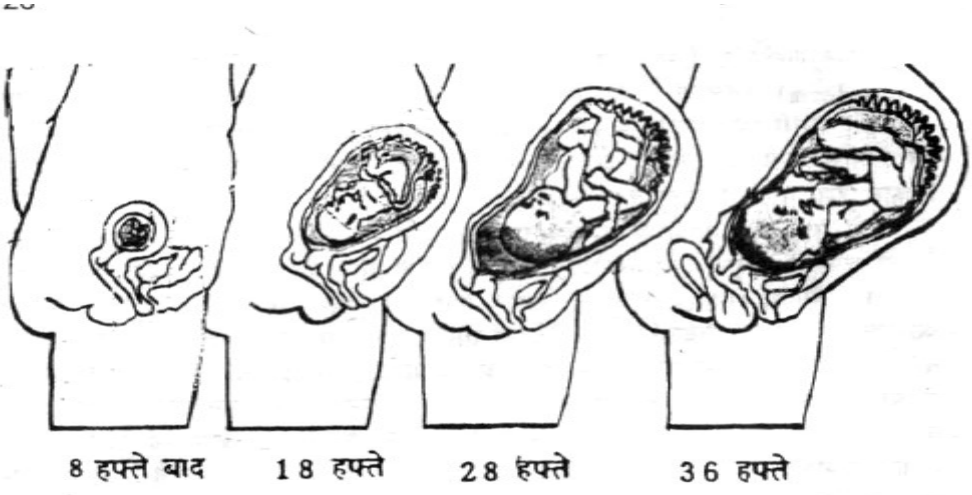

इस अवस्था मे गर्भस्थ बालक के शरीर में कोई नया अवयव विकसित नहीं होता। दूसरी अवस्था में जो अवयव उत्पन्न हो चुके हें, उनका ही आगे विकास होता है।

इस अवस्था मे नाक, मुंह, गले आदि की रचना में अनेक परिवर्तन होते हैं मुलायम बाल भी उगने लगते हैं जिनका रंग जन्म के समय बदल जाता है। दिल की धड़कन आरंभ हो जाती है। जन्म के समय बालक का शरीर लाल हो जाता है क्योंकि भ्रूण रक्त प्रवाहिनी नाड़ियों से घिरा रहता है। इस दौरान संवेदनशीलता, श्रवण, तापक्रम, पीडा, स्वाद, गंध दृष्टि तथा संतुलन बनाये रखने वाली मांसपेशियों का विकास होने लगता है।

इस अवस्था मे गर्भकालीन कठिनाइयां प्राय: नहीं होती हैं। इस अवस्था में साधारणतया दो प्रकार के संकट आते हैं - 1 गर्भस्त्राव 2 समय से पूर्व जन्म। गर्भस्थ बालक मे सातवें माह मे जीवन क्षमता आ जाती है। इस समय जन्म होने पर जीवित रहने की संभावना रहती है क्योकि उसका स्नायु मण्डल पर्याप्त मात्रा में विकसित हो चुका होता है।

शिशु जन्म के समय का ज्ञान स्त्री को हो जाता है। प्रसव पीडा शिशु जन्म के समय का संकेत है। इस समय कमर के आसपास पीड़ा होने लगती है क्योंकि बच्चा गर्भाशय के बाहर आने का प्रयास करता है। गर्भाशय द्वार का आकार बढ़ जाता है। इसी समय योनि का आकार भी बढ़ जाता है तथा बच्चा योनि मार्ग से होता हुआ योनि के बाहर आ जाता है। जन्म के समय पहले बच्चे का सिर योनि से बाहर आता है फिर शेष हिस्सा सरलता से निकलने लगता है।

3.5.2 जन्म के समय विकास

यह अवस्था 280 दिन की होती है। जीव वैज्ञानिक इस अवस्था में 24 दिन के 10 चन्द्र महीने मानते हें। बोलचाल की भाषा में 9 महीने कहे जाते हैं। इस अवस्था मे अधिकांश परिवर्तन शारीरिक होते है। इस अवस्था में शारीरिक विकास की गति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र होती है।

प्रारंभिक शैशवावस्था - यह जन्म से प्रारंभ होकर 10 से 14 दिन तक चलती है। इसे नवजात अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में भी विकास की गति रूक सी जाती है। क्योकि नवजात शिशु नए वातावरण के साथ सामजंस्य स्थापित करता है।

उत्तर शैशवावस्था- इस अवस्था का प्रारंभ लगभग दो सप्ताह से ही हो जाता है। इस अवस्था में शिशु अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर विशेषकर मां पर निर्भर रहता है। आयु वृद्धि के साथ वह मांसपेशियो को नियंत्रित करना सीख जाता है। इस अवस्था के अन्त तक शिशु स्वतंत्र रूप से खाना, बोलना, चलना तथा खेलना सीख जाता है।

बाल्यावस्था - इस अवस्था का प्रारंभ 2 वर्ष के पश्चात होता है। इस अवस्था मे बालक अपने आपको वातावरण के अनुसार समायोजित करने का प्रयास करता है। इस अवस्था से पूर्व ही बालक बोलना सीख जाता है। अत: कठिनाइयों का अनुभव होने पर अभिभावकों से भिन्न भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछता है। उसका मानसिक विकास प्रारंभ हो जाने के कारण वातावरण को जानने की जिज्ञासा प्रबल हो जाती है। स्कूल जाने और साथी समूह के बीच रहने से उसमे सामाजिकता की भावना विकसित होने लगती है।

पूर्व किशोरावस्था - पूर्व किशोरावस्था प्रारंभिक किशोरावस्था के पूर्व की अवस्था है। किशोरियों में इसका प्रारंभ 11 वर्ष की आयु से हो जाता है जबकि किशोरों मे 11 वर्ष के पश्चात पूर्व

किशोरावस्था की अवधि लगभग 2 वर्ष होती है। इस अवस्था में लैंगिक अवयवो का विकास तीव्र गति से होता है। किशोर किशोरियो यौन क्रियाओं के बारे मे समूह मे बात करने में हिचकते हैं।

प्रारंभिक किशोरावस्था - यह अवस्था 13 वर्ष से प्रारंभ होकर 16-17 वर्ष तक चलती है। प्रत्येक किशोर शारीरिक और मानसिक विकास जैसे लम्बाई व वजन में वृद्धि अनुभव करने लगता है एवं बालक एवं बालिका यौन रूप से विकसित होते हैं। स्त्रियों में योनि तथा गर्भाशय का विकास होता है। पुरूषों के समस्त शरीर तथा जननांगों पर बाल तथा दाढी इसी अवस्था मे आती है एवं आवाज बदल जाती है।

उत्तर किशोरावस्था - यह विकास की अन्तिम अवस्था है। यह सामान्यतया 21 वर्ष तक होती है। इस अवस्था मे बालक अपनी शिक्षा व भविष्य से संबंधितयोजनायें बनाने लगता है। यह अवस्था युवावस्था से पूर्व की अवस्था है। इसलिए विभिन्न अवश्यकताओ से समायोजन करना सीखना पडता है। यह किशोरावस्था ही वह अवस्था है। जो बालक को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक आदि दृष्टि से प्रौढ़ बनाती है, व्यक्ति की जीवन शैली बदल जाती है जो कि जीवन पर्यन्त चलती रहती है।

सभी विकासात्मक अवस्थाओं में किशोरावस्था सर्वाधिक आनन्दमयी होती है इसलिए इस अवस्था को सुनहरी अवस्था कहा गया है।

बोध प्रश्न-1

1. विकास के मुख्य पहलू कौन से है?
2. विकास की दो परिभाषा बताईये?
3. विकास की आधारभूत अवस्थाएँ कौन सी है?

3.5.3 जन्म बाद विकास

3.6 शैशवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Infancy)

नवजात शिशु की अवधि सामान्य रूप से दो सप्ताह से तीस दिन की मानी गई है |

"The body of the newborn infant grows and develops until it becomes an adult body."

शैशवावस्था बालक का निर्माण काल है। यह अवस्था जन्म से पाँच वर्ष तक मानी जाती है। पहले तीन वर्ष पूर्व शैशवावस्था और तीन से पाँच वर्ष की आयु उत्तर **शैशवावस्था** कहलाती है। बालक के जन्म लेने के उपरांत की अवस्था को शैशवावस्था कहते हैं। यह अवस्था पाँच वर्ष तक मानी जाती है। नवजात शिशुओ का आकार 19.5 इंच, भार 7.5 पौंड होता है।वह माँ के दूध पर निर्भर करता है।धीरे- धीरे वह आँख खोलता है। उसका सिर धड़ से जुड़ा रहता है। बाल मुलायम एवं मांसपेशिया छोटी एवं कोमल होती है।जन्म के 15 दिन बाद त्वचा का रंग स्थाई होने लगता है।

नवजात शिशु क्रंदन करता है। इससे फेफड़े **(lungs)** में हवा भर जाती है और उसकी श्वसन क्रिया आरम्भ हो जाती है। स्तन पान के कारण उसमें सहज क्रिया प्रकट होती है, वह भूख के समय रोता है। वह 15-20 घटे सोता है। धीरे-धीरे उसमें यह परिवर्तन स्थाई होने लगते है।

बीसंवी शताब्दी को **'बालक की शताब्दी'** कहे जाने का कारण यह है कि इस शताब्दी में मनोविज्ञानियों ने बालक और उसके विकास की अवस्थाओं के सम्बन्ध मे अनेक गम्भीर और विस्तृत अध्ययन किये हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सब अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनका कहना है कि यह अवस्था ही वह आधार है, जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण किया जा सकता है। इस अवस्था मे उसका जितना ही अधिक निरीक्षण और निर्देशन किया जाता है, उतना ही अधिक उत्तम उसका विकास और जीवन होता है।

"The twentieth century has come to be designed as the century of the child"

Crow and Crow

शिशु का जन्म एक सामान्य शारीरिक प्रक्रिया है यद्यपि इसमें कभी कभी कुछ बाधायें उपस्थित हो जाती है। गर्भस्थ शिशु जब मां के गर्भ से जन्म लेता है तब उसे नवजात शिशु कहा जाता है। नवजात शिशु की अवधि सामान्य स्थिति में दो सप्ताह तक की होती है। नवजात शिशु की आयु अधिकतम 30 दिन होती है। जन्म से आधा घण्टा तक की आयु के शिशु को मनोविज्ञान में Partunate कहा जाता है।

इस अवधि में शिशु की नाभि रज्जू को काटकर शिशु मां से अलग किया जाता है। अब वह एक स्वतंत्र और मां से भिन्न जीव बन जाता है।

जन्म के समय शिशुओं का वजन एक सा नहीं होता। यद्यपि कुछ औसत प्रतिमान ज्ञात कर लिये जाते हैं किन्तु इनके वजन, कद, आकार, शारीरिक अनुपात, प्रकृति व अन्य बातों में अन्तर रहता है।

शारीरिक अनुपात की दृष्टि से एक शिशु तथा वयस्क के विकास में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। जन्म के समय बालक का भार लगभग 5 से 8 पौंड तक होता है। उसकी औसत लम्बाई लगभग 20 इंच होती है। लडकों की लम्बाई लडकियों की लम्बाई से लगभग आधा इंच अधिक होती है।

जन्म के समय शिशु की हड्डियां कोमल एवं लचीली होती है। इनकी संख्या 270 होती है। फॉस्फोरस, कैलशियम एवं अन्य खनिज पदार्थों की सहायता से शिशु की हड्डियों का विकास होता है।

शिशु जब जन्म लेता है तब उसकी नाड़ी की गति एक मिनिट में 140 के लगभग होती है। कुछ दिन बाद ही 120 प्रति मिनिट हो जाती है। अध्ययनों द्वारा स्पष्ट हुआ है कि शिशु जब सुप्त अवस्था में होता है तब नाडी की गति कम हो जाती है ओर रोते समय बढ़ जाती है। नाडी की गति की भांति श्वास की गति में भी परितर्वन होते हैं।

नवजात शिशु की भूख तथा निद्रा बाल्यावस्था के बालकों से अधिक होती है थोड़े से ही दूध में भूख मिट जाती है और कुछ देर बाद पुन: भूख लग जाती है। शिशु 24 घंटों में से लगभग 20-22 घंटे सोता है। सोते समय कभी मुस्कुराता है तो कभी रोने की शक्ल बनाता है।

जन्म के पहले अर्थात गर्म में स्नायुमंडल का विकास आरंभ हो जाता है तथा जन्म के समय सभी स्नायु कोषों का निर्माण हो जाता है। जन्म के समय शिशु के पेट की क्षमता 1 औंस होती है तथा दूसरे सप्ताह मे 2 1/2 औंस व 1 महीने पर 3 औंस हो जाती है। वसा का विकास शिशु में तेजी से होता है। लगभग जब शिशु जन्म लेता है तब उसकी आंखों के प्रकाश कोष पूर्ण विकसित नहीं हो पाते हैं। लगभग 30 घंटे बाद शिशु की नेत्रन्द्रिय काम करना आरंभ कर देती है और शिशु को केवल प्रकाश की संवेदना होने लगती है किन्तु देखने की क्रिया बाद में शुरू होती है। तीव्र प्रकाश आंखों पर पडने पर शिशु आंखे मोड लेता है। शिशु को नीला रंग सबसे अधिक प्रभावित करता है।

नवजात शिशु में ध्वनि संवेदना होने या न होने के संबंधमें मतभेद है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि जन्म के कई दिनों बाद तक बालक ध्वनि के प्रति संवेदनशील नहीं होता है।

अत: नवजात शिशु मांस और हड्डियों का ढांचा मात्र नहीं है बल्कि वह एक क्रियाशील जीव है। यदि हम उसके इस लघु शरीर और कद, भार एवं आकार की दृष्टि से रखते हुए उसकी क्रियाशीलता पर विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि वयस्क व्यक्ति की अपेक्षा शिशु अधिक क्रियाशील होता है। शिशु की क्रियाशीलता के संबंधमे सबसे बडी विशेषता यह है कि जब वह किसी बाह्य उद्दीपक से उद्दीप्त होता है तो उसका केवल एक विशिष्ट अंग क्रियाशील नहीं होता है बल्कि उसका सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील हो जाता है।

नवजात शिशु की इस अवस्था को समायोजन की अवस्था भी कहा जा सकता है। इस अवस्था में शिशु को नवीन वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करना पडता है।

3.7 बाल्यावस्था मे शारीरिक विकास (Physical Development in Childhood)

"Childhood is the time when the individual's basic outlooks, values and ideals are to a great extent shaped."

बाल्यावस्था, वास्तव में मानव जीवन का वह स्वर्णिम समय है जिसमें उसका सर्वांगीण विकास होता है। **फ्रॉयड** यद्यपि यह मानते हैं कि बालक का विकास पाँच वर्ष की आयु तक हो जाता है, लेकिन बाल्यावस्था में विकास की यह संपूर्णता गति प्राप्त करती है और एक परिपक्व व्यक्ति के निर्माण की और अग्रसर होती है।

शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था का आरम्भ होता है। यह अवस्था, बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की होती है। बालक मे इस अवस्था मे विभिन्न आदतों, व्यवहार, रुचि एवं इच्छाओं के प्रतिरूपों का निर्माण होता है।

इस अवस्था मे बालक में अनेक अनोखे परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिये 6 वर्ष की आयु में बालक का स्वभाव बहुत उग्र होता है और वह लगभग सब बातों का उत्तर 'न' या 'नहीं' में देता है| 7 वर्ष की आयु में वह उदासीन होता है और वह अकेला रहना पसन्द करता है। 8 वर्ष की आयु में उसमें अन्य बालकों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की भावना बहुत प्रबल होती है। 9 से 12 वर्ष तक की आयु में विद्यालय में उसके लिये कोई आकर्षण नहीं रह जाता है। वह कोई नियमित कार्य न करके, कोई महान और रोमांचकारी कार्य करना चाहता है।

"This is, indeed, a difficult period of child development for parents to understand"

Cole and Cole

बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन अग्रलिखित है -

शारीरिक विकास की प्रक्रिया में अनेक आन्तरिक तथा वाह्य भागों का विकास होता है ।शरीर की रचना, स्नायु प्रणाली, श्वसन प्रणाली, पाचन संस्थान आदि की अभिवृद्धि तथा परिपक्वता एक दूसरे से संबंधितहै । बालक के कंकालीय ढांचे या अस्थिपंजर का निर्माण गर्भस्थ अवस्था से ही आरंभ हो जाता है ।

जन्म के समय बालक की लम्बाई लगभग 20 इंच होती है । लडकों की लंबाई लडकियों की लम्बाई से जन्म के समय आधा से 2 इंच अधिक होती है । एक वर्ष में शिशु की लम्बाई 27-28 इंच, दो वर्ष में 31 इंच 7 वर्ष में 40-42 इंच तक हो जाती है । परिपक्वता आने तक बालक की लम्बाई की गति में कमी आ जाती है । 12 वर्ष की अवस्था मे सामान्य बालक 55 इंच हो जाता है । 10-14 वर्ष की आयु में लडकियों का शारीरिक विकास तेजी से होता है । 10 वर्ष की आयु तक लडके कद में लडकियों से लम्बे होते हैं । परन्तु अगले तीन चार वर्षों में लडकियां लडकों से आगे निकल जाती है।

जन्म के समय बालक का भार 5 से 8 पौण्ड तक होता है । भार में वृद्धि का समय लगभग सभी बालकों में समान रहता है । पहले वर्ष के अन्त में बालक का भार सामान्यत: 70 से 90 पौण्ड तक हो जाता है । एक्टोमार्फिक बालकों का भार कम होने से वे दिखने में दुबले पतले होते हैं जबकि मेसोमार्फिक बालकों का शरीर गठीला व लम्बाई अधिक होती है । इसलिए आम तौरखेलने कूदने के प्रति रूचि, व्यायाम, खाने पीने की आदतें, बालको के भार के विकास को प्रभावित करती है ।

जन्म के समय सिर पूरे शरीर का लगभग 25 प्रतिशत होता है । जन्म के पश्चात सिर आनुपातिक रूप से बढता है । पांच वर्ष की आयु में बालक के सिर का विकास 90 प्रतिशत तक तथा दस वर्ष की आयु में 95 प्रतिशत हो जाता है । लगभग 15-16 वर्ष की आयु में सिर पूरी तरह विकसित हो जाता है ।

चेहरे के उपर का भाग शीघ्र ही पूर्णता प्राप्त कर लेता है । जन्म के समय चेहरा सिर की अपेक्षा बहुत छोटा होता है क्योंकि जन्म के समय बालक के दांत नहीं होते। शैशवावस्था में भी सिर की अपेक्षा चेहरा छोटा लगता है क्योंकि इस के दांत नहीं होते । आठ वर्ष की आयु तक चेहरे का ढांचा जन्म की तुलना में बहुत बडा हो जाता है । इस आयु में बालक के चेहरे से बाल्यपन नजर नहीं आता । परिपक्वता तक स्थायी दांत निकलते रहते हैं तथा ठोडी, जबडा, मुंह तथा आन्तरिक अंग तुलनात्मक रूप से विकसित हो जाते है ।

बालक की हड्डियां कोमल, लचीली होती है । धीरे धीरे उनके आकार मे परिवर्तन होने लगता है एवं कुछ हड्डियां संयुक्त हो जाती हैं । जन्म के समय शिशु में कुल 270 हड्डिया होती है । पूर्णता आने पर 350 तक हो जाती है । कुछ हड्डियां वयस्क होने तक समाप्त हो जाती है और 206 रह जाती है ।

हड्डियों में कठोरता धीरे धीरे ही आती है हड्डियों में कठोरता थायरॉइड ग्रंथि से निकलने वाले हार्मोन द्वारा होती है ।

जन्म के समय मांसपेशियां अविकसित होती है आयु वृद्धि के साथ मांसपेशियों की लम्बाई चौडाई और मोटाई बढती है। लगभग 5-6 वर्ष की अवस्था में मांसपेशियों का विकास तीव्र गति से होता है। मांसपेशियों की मजबूती से शारीरिक शक्ति में अभिवृद्धि होती है।

दांत निकलने की प्रक्रिया जन्म के तीन माह से प्रारंभ होकर परिपक्वतता तक चलती है। शिशु के स्थायी दांत जन्म के कुछ समय पश्चात निर्मित होने लगते हैं। लेकिन 6 वर्ष की आयु के पश्चात दिखाई देते हैं। बालकों के आहार मे कैल्शियम व फास्फोरस की अधिक मात्रा होनी चाहिए जिससे स्थायी दांतों की नीव मजबूत हो।

बाल्यावस्था मे शरीर के आन्तरिक अवयवों का विकास भी अनेक रूपों में होता है।

3.8 किशोरावस्था मे शारीरिक विकास (Physical Development in Adolescence)

"Adolescence is a period of great stress and strain, storm and strike"

मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया मे किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है।बाल्यावस्था समाप्त होती है और शुरु होती है किशोरावस्था। यह अवस्था युवावस्था अथवा परिपक्वावस्था तक रहती है यह सतत प्रक्रिया है इसे बाल्यावस्था तथा प्रौढावस्था के मध्य का सन्धि काल (Transitional period) कहते हैं। इस अवस्था की विडंबना होती है- बालक स्वयं को बड़ा महान समझता है।

बाल्यावस्था के समापन अर्थात 13 वर्ष की आयु से किशोरावस्था आरम्भ होती है। इस अवस्था को तूफान और संवेंगो की अवस्था कहा गया है। किशोरावस्था प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में वह काल है, जो बाल्यावस्था के अंत मे आरम्भ होता है और प्रौढावस्था के आरम्भ में समाप्त हो जाता है। इस अवस्था के आरम्भ होने की आयु, लिंग, प्रजाति, जलवायु, संस्कृति, व्यक्ति के स्वास्थ्य आदि पर निर्भर करती है। सामान्यत: बालकों की किशोरावस्था लगभग 13 वर्ष की आयु में और बालिकाओं की लगभग 12 वर्ष की आयु में आरम्भ होती है।भारत मे यह आयु पश्चिम के ठण्डे देशों की अपेक्षा एक वर्ष पहले आरम्भ हो जाती है।

किशोरावस्था मे बालकों और बालिकाओं में क्रांतिकारी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेंगात्मक परिवर्तन होते हैं। किशोरावस्था वह समय है जिसमें किशोर अपने को वयस्क समझता है और वयस्क उसे बालक समझते हैं। किशोरावस्था में शारीरिक विकास,विकास की चरम गति होती है। यह चरम गति भविष्य के लिये उसकी शारीरिक रचना को स्थाई कर देती है।

"Youth represents the energy of the present and the hope of the future"

Crow and Crow

किशोरावस्था, बाल्यावस्था व युवावस्था के मध्य की अवस्था है, एक किशोर को भारतीय संस्कृति में प्राय: एक व्यक्ति के रूप में जो अपनी पहचान चाहता है और जो अपने जीवन में लक्ष्य को परिभाषित करने में सक्षम है, के रूप में मान्यता नहीं दी जाती।

किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन एकाएक दिखाई देने लगते हैं, ये परिवर्तन आन्तरिक एवं बाह्य दोनों रूपों में होते हैं। लगभग 11 से 14 वर्ष की आयु में लड़कियों की ऊँचाई लड़कों की अपेक्षा

अधिक बढती है। 15 वर्ष की आयु से लडकों की ऊँचाई बढ़नी आरम्भ हो जाती है। इस आयु में किशोरों के भार में एक वर्ष में 10 से लेकर 15 पौण्ड तक की वृद्धि होती है।

किशोरावस्था में लडकों तथा लडकियों की आवाज मे परिवर्तन होता है। लडकों की आवाज में कर्कशता और भारीपन आ जाता है। लड़कियों की आवाज कोमल एवं सुरीली हो जाती है। लडकियों का शारीरिक विकास इस ढंग से होने लगता है कि वे अपने शरीर के प्रति चेतन रहने लगती है।

इस अवस्था में हड्डीयों का लचीलापन समाप्त होने लगता है और उनमे दृढता एवं परिपक्वता आ जाती है, वे गोल हो जाती है। लड़कियों के कूल्हें की हड्डियों के पास चर्बी एकत्र होने लगती है और उनमें भारीपन आने लगता है, चेहरे की रचना में भी स्थिरता आने लगती है। चेहरे पर मुंहासे भी निकलने लगते हैं।

किशोरावस्था में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन शरीर के विभिन्न अंगों पर बाल उगना है। ये बाल शरीर के विभिन्न अंगों जैसे - बगल, गुप्तांग, छाती, दाढी, आदि पर उगते हैं।

किशोरावस्था में प्रजनन अंग पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं। इनकी यौन विशेषताएं भी लगभग परिपक्व हो जाती है। लडकों में वीर्यपतन और लडकियों में मासिक धर्म प्रारंभ हो जाता है। मासिक धर्म के शीघ्र तथा देर से आरंभ होने पर देश की जलवायु, परिवार की आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति तथा संवेगात्मक स्थिति का प्रभाव पड़ता है।

किशोरावस्था में आन्तरिक शारीरिक विकास को यदि देखा जाए तो कहा जा सकता है कि उनकी लम्बाई और चौड़ाई के अनुपात मे ही आन्तरिक अंगों का विकास रहता है। पाचन तंत्र से पूर्व किशोरावस्था में तीव्र गति से विकास होता है परन्तु उत्तर किशोरावस्था के अन्त तक इस तंत्र के विकास की गति मंद हो जाती है|

3.9 गर्भकालीन अवस्था मे शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

गर्भकालीन अवस्था में शारीरिक विकास को अनेक तत्व प्रभावित करते हैं। इस विषय पर समय समय पर मनोवैज्ञानिकों, चिकित्सकों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अनेक अनुसंधान किये हैं। विद्वानो ने भ्रूण पर प्रभाव डालने वाले तत्व इस प्रकार बताये हैं -

1. **भोजन -** गर्भवती महिलाएं कुपोषण का अधिक शिकार होती हैं। मां के कुपोषण का प्रभाव भ्रूण व नवजात शिशु पर भी पडता है। एक कुपोषित मां संभवत: एक कम वजन वाले शिशु को जन्म देती है। गर्भकाल में भ्रूण विकास तेजी से होता है। उसे प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट आदि पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनकी पर्याप्तता से भ्रूण का विकास संतुलित होता है।
2. **माता का स्वास्थ्य** -गर्भावस्था के समय स्वास्थ्य व स्वच्छता संबंधी आदतों का अत्यधिक महत्व है। इस समय प्रतिदिन स्नान तथा अन्दर के वस्त्रों को प्रतिदिन बदलना आवश्यक है। गर्भवती स्त्री को व्यायाम भी लाभदायक होता है। इससे रक्त का संचार अच्छा होता है, भूख बढती है, भोजन का पाचन शीघ्र होता है तथा नींद अच्छी आती है।

टहलना एक ऐसा व्यायाम है जो सभी स्त्रियां कर सकती है । गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन दोपहर के समय कम से कम दो घण्टे आराम भी करना चाहिये।

3. **दवाइयों का सेवन** - गर्भावस्था के समय दवाइयों का सेवन डॉक्टरी सलाह पर भी करना चाहिए क्योंकि कुछ दवाइयां प्लेसेन्टा द्वारा शिशु के शरीर में प्रवेश कर जाती है। गर्भावस्था के प्रथम चरण मे जब भ्रूण गर्भाशय की दीवार से स्थापित हो रहा हो, डॉक्टर की सलाह से ही दवाइयां लेना हितकर है क्योंकि इस समय भ्रूण में किसी प्रकार का दोष उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है।

4. **मद्यपान व धूम्रपान -** मद्यपान का सेवन का प्रभाव पैदा होने वाले शिशु पर पडता है । इसके प्रभाव से शिशु के प्रजनन कोशों में निर्बलता आ जाती है। धूम्रपान का सेवन भी गर्भवती औरतों के लिये हानिकारक है।

5. **यौन संबंध -** सामान्यत: यह माना जाता है कि सामान्य गर्भावस्था में, यौन संबंधस्थापित करना सुरक्षित है तथा अधिकांश दम्पति जन्म से कुछ समय पूर्व भी संभोग कर सकते हैं । गर्भावस्था के समय यौन क्रिया सुखदायी होती है किन्तु यदि यदि गर्भपात का खतरा हो या समय पूर्व प्रसव के लक्षण हों, रक्त स्राव या अन्य स्त्राव या गर्भ का पानी जा रहा हो जैसे लक्षण उत्पन्न होने पर यौन क्रिया से बचना चाहिए।

शिशु का जन्म मां के लिए शारीरिक और सांवेगिक संकट लिये होता है। यह अवस्था मां के लिए पुनर्जन्म की होती है। उसकी समस्त निष्ठा, आस्था और प्यार नवजात शिशु पर केन्द्रित हो जाता है। आज के युग में स्वस्थ बालक के प्रजनन हेतु जन्म पूर्व अवस्था की देखभाल का ज्ञान छात्र-छात्राओं एवं भावी माताओं के लिए अनिवार्य है।

3.10 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि बालक के विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। सभी कारक परस्पर संबंधितऔर एक दूसरे पर निर्भर है। सभी कारकों का विकास पर समान प्रभाव नही पडता, इनमें से कुछ कारणों का विकास की गति पर गहरा और स्थायी प्रभाव पडता है जबकि कुछ कारण विकास को कम प्रभावित करते हैं। सामान्य रूप में विकास को प्रभावित करने वाले कारक निम्न हैं -

1 **आनुवंशिक कारक** – उत्पत्ति संबंधीतथा आनुवंशिक कारक वृद्धि व विकास को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। प्रमुखत: लम्बाई, वजन, व्यक्तित्व, सामाजिक और बौद्धिक विकास का क्रम पीढी दर पीढी चलता है। ऐसे कारक जन्मजात विशेषताएं हैं जो बालक मे जन्म के समय से ही पाई जाती है। आनुवंशिक प्रभावों को जन्म के समय से ही सहज भाव से पहचाना जा सकता है।

2 **पोषक तत्व -** पोषक तत्व बालक की वृद्धि और विकास को जन्म से पूर्व और जन्म के पश्चात प्रभावित करता है । बालक के तीव्र तथा संतुलित शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए संतुलित व पौष्टिक भोजन अति आवश्यक है।

मां का भोजन गर्भकाल से शिशु के विकास को प्रभावित करता है। गर्भावस्था के दौरान मां को दो व्यक्तियों के लिए भोजन करना चाहिए। उसे सामान्य आवश्यकता से 300 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से वृद्धि करनी चाहिये | इससे जन्म से ही बालक शारीरिक रूप से विकसित होगा और यदि उसे भविष्य में भी आवश्यक मात्रा में विटामिन, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, स्टार्च, चिकनाई आदि मिलती रहे तो उसका सर्वांगीण विकास हो सकेगा।

3 **पारिवारिक वातावरण -** बालक के विकास पर सर्वाधिक प्रभाव परिवार के सदस्यो के व्यवहार, आपसी तालमेल, भावात्मक संबंधऔर सहयोग पर पडता है। जिन परिवारों में माता पिता अपने बालकों की देखभाल, सुरक्षा, प्यार, समस्याओं के हल पर विशेष ध्यान देते हैं, वे बालक शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सुदृढ होते हैं, उनका बौद्धिक विकास तीव्र गति से होता है।

4 **आर्थिक कारक -** जीवन का स्तर एक प्रधान कारण है। एक आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवार के बच्चों को संतुलित व पोषक तत्वों से पूर्ण भोजन मिलता है जिससे उनकी लम्बाई और वजन में वृद्धि होती है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न परिवार जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को सहज जुटा लेता है, उसके पास आवास, वस्त्र, खाने की सामग्री, बीमारियों के लिए आवश्यक औषधियों के लिए पर्यात धन होता है। इसलिए उनका शारीरिक और मानसिक विकास तीव्र गति से हो सकता है।

5 **रोग और चोट -** विभिन्न प्रकार के रोगों और अनायास चोटों का भी बाल विकास पर प्रभाव पडता है। खतरनाक रोग जैसे टाइफाइड, पेट के रोग, मानसिक चोट आदि से शारीरिक और मानसिक विकास रुक जाता है। यदि समय पर उपर्युक्त उपचार नहीं कराया जाए तो ये रोग शारीरिक विकलांगता में बदल जाते हैं।

संक्षेप में सामान्य बाल विकास में शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक विकास सभी आते हैं। प्रत्येक माता पिता के लिए अपने शिशु को समझने के लिए सामान्य विकास तथा उसे प्रभावित करने वाले कारकों की पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है।

बोध प्रश्न-2

1. शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक बताओ ?
2. किशोरावस्था मे शारीरिक विकास बताओ ?
3. विकास को प्रभावित करने वाले तत्व कौन से है?

3.11 सारांश

गर्भावस्था ,शैशवावस्था,बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक विकास तथा इसको प्रभावित करने वाले कारकों के विवेचन से स्पष्ट है की शारीरिक विकास बालक के विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। व्यक्ति के शारीरिक विकास को जन्म-पूर्व अवस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था मे बाँटकर समझा जा सकता है। जन्म पूर्व अवस्था मे निषेचन से लेकर जन्म होने तक की लगभग 9 माह की अवधि पर्यन्त शिशु का विकास होता है। शैशवावस्था तथा बाल्यवस्था में तीव्र गति से शारीरिक विकास होता है। जबकि किशोरावस्था मे शारीरिक

विकास मे स्थायित्व आने लगता है वंशानुक्रम , वातावरण, भोजन, दिनचर्या, खेलकूद, व्यायाम पालन-पोषण, स्वास्थ्य आदि कारक शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। शैक्षिक दृष्टि से भी शारीरिक विकास का अत्यंत महत्व है।

3.12 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 गर्भस्थ शिशु के विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वों को संक्षेप में लिखिये।
Write in brief the important factors influencing prenatal development of Child.

2 गर्भस्थ शिशु की विकास की अवस्थाएं बताइये।
Describe the stages of development in prenatal period.

3 शैशवावस्था से किशोरावस्था तक बालक के शारीरिक विकास का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
Describe briefly the physical development from Childhood to adolescence.

4 आन्तरिक अवयवों के विकास की विवेचना कीजिये।
Discuss the development of Internal Organs.

3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

- डॉ0 गुप्ता एस.पी. (2004), " उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- पाठक पी.डी. (2013) , " शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ0 माथुर एस.एस.(2001), " विनोद पुस्तक आगरा
- शर्मा, गणपतराम व व्यास हरिश्चंद्र ,2007 अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक , आधार, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर|
- डॉत्मक मनोविज्ञान , विनोद पुस्तक वर्मा प्रीती व श्रीवास्तव डी . एन . आधुनिक प्रयोगा . मंदिर आगरा
- डॉ भटनागर सुरेश ,2008 श ,िक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षणशास्त्र विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- भटनागर सुरेश ,2009 |शिक्षा मनोविज्ञान, आर लाल बुक डिपो, मेरठ ,
- डॉ सिंह ,अरुण कुमार ,2005. . लिमनोविज्ञान , भारती पब्लिकेशन प्रा ,
- डॉ सिंह ,अरुण कुमार ,(2006)उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, , | बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली
- डॉ ,सिंह, अरुण कुमार.समाज मनोविज्ञान की रूपरेखामोतीलाल बनारसीदा ,सबंगलो रोड , जवाहर नगर, दिल्ली 1 www .wikipedia. com
- www. encyclopedia. com

इकाई - 4

शारीरिक और गामक विकास , मनोसामाजिक विकास

Physical and Motor Development, Psycho-Social Development

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 परिभाषा

4.4 विकास की अवस्थाएँ

4.5 विकास के मुख्य पहलू

4.6 बालक का शारीरिक और गामक विकास

4.7 शारीरिक विकास

4.7.1 शैशवावस्था मे शारीरिक विकास

4.7.2. बाल्यावस्था मे शारीरिक विकास

4.7.3. किशोरावस्था मे शारीरिक विकास

4.8 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

4.9 गामक विकास

4.10 विभिन्न अवस्थाओं में गामक विकास क्रम

4.11 गामक विकास का महत्व

4.12 मनोसामाजिक विकास

4.13 सारांश

4. 14 निबंधात्मक प्रश्न

4.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1 प्रस्तावना

विकासात्मक मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक अध्ययन है। यह मनोविज्ञान की ही एक शाखा मानी जाती है, जो मनुष्य के जीवन में हो रहे परिवर्तनो के बारे में बताता है। मूल रूप से यह शिशुओ और बच्चों

से सम्बंध रखता है, पर इस क्षेत्र मे किशोरावस्था, वयस्क विकास, उम्र बढ़ने और पूरे जीवन काल को लिया जाता है | विकासात्मक मनोविज्ञान के तीन लक्ष्य है – विकास का वर्णन करना, समझाना और अनुकूलन करना । विकासात्मक परिवर्तन काफी हद तक जन्म से पहले के जीवन के दौरान अनुवांशिक कारकों और घटनाओं से प्रभावित हो सकते हैं । इसलिये अनुवांशिकी और जन्मपूर्व विकास को आमतौर पर बच्चे के विकास के अध्ययन के रूप मे शामिल किया जाताहै । सम्पूर्ण जीवन काल के दौरान होने वाले विकास को विकासात्मक मनोविज्ञान कहते हैं ।

बालक के शारीरिक विकास को व्यक्त करने के लिये तीन विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है – विकास, अभिवृद्धि और परिपक्वता । (Development, Growth and Maturation)

Kolesnik ने भी यही मत प्रकट करते हुए लिखा है,"विकास, अभिवृद्धि, परिपक्वता और अधिगम ये सब शब्द उन शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक और नैतिक परिवर्तनों का उल्लेख करते है जिनका व्यक्ति अपने जीवनकाल मे आगे बढ़ते समय अनुभव करता है" ।

बालक के शारीरिक विकास मे गामक विकास का विशेष महत्व है । ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं । गामक क्रियाओं के विकास से बालक की गतियों के क्षेत्र में विस्तार होता है । चलने की गति का विकास होने से वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है । वह अपने साथियों से सम्बंध स्थापित करता है । अपनी इन गतिविधियों के कारण ही वह नवीन परिस्थितियों में प्रवेश करके उनके साथ समायोजन स्थापित करने की कला मे दक्ष होता जाता है ।दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गामक विकास बालक की वातावरण के साथ समायोजन मे सहायता करता है ।

बालक के शारीरिक और मानसिक विकास के साथ- साथ उसका सामाजिक विकास भी होता है । अपने परिवार के सदस्यों, अपने समूह के साथियों, अपने समाज की संस्थाओं और परंपराओं एवं अपनी स्वयं कि रूचियो और इच्छाओं से प्रभावित होकर वह अपने सामाजिक व्यवहार का निर्माण और अपना सामाजिक विकास करता है |

एरिक इरिक्सन एक प्रभावी मनोविज्ञानी है जिन्होंने मनोसामाजिक विकास के बारे में अध्ययन किया है ।

सिगमंड फ्रॉयड दूसरे प्रसिद्ध विकासात्मक मनोविज्ञानी हैं जिन्होंने मनोसामाजिक विकास के बारे में अध्ययन किया है | सामाजिक आदर्शो, परंपराओं एवं रूढ़ियों के अनुसार समाज के अन्य लोगों के सहयोग से जो व्यवहार किया जाता है , उसे सामाजिक विकास के अंतर्गत रखा जाता है। सामाजिक विकास, व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया है ।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ पायेंगे

- शारीरिक विकास के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- शारीरिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं को समझ सकेगे ।
- विभिन्न अवस्थाओं के शारीरिक और गामक विकास की व्याख्या कर सकेगे ।
- विभिन्न अवस्थाओ को प्रभावित करने वाले कारकों को जान पायेंगे ।

- गामक विकास और मनोसामाजिक विकास का महत्व समझ संकेगे|

4.3 परिभाषा

विकास के विषय में अनेक विद्वानों ने अनेक धारणाएँ व्यक्त की हैं।

1. **Elizabeth Hurlock----"**Development is not limited to growing larger; instead, it consists of a progressive series of changes towards the goal of maturity. Development results in new characteristics and new abilities on the part of the individual."
2. **Gessel-----"**Development is more that a concept. It can be observed, appraised and to some extent even measured in three major manifestations-(a) Anatomic, (b) Physiologic (c)Behavioral---- behavior signs, however, constitute a most comprehensive index of development status and developmental potentials."
3. **Crow and Crow**----"The child is first and foremost a physical being. His physical constitution is basic to the development of his attitudes and behavior. Hence, it is necessary to study the patterns of his physical growth."
4. **Kolesnik**-----" The term growth, development, maturation and learning refer to the physical, mental, social, emotional and moral changes which a person experiences as he advances through life."

विकास से आशय शरीर के विभिन्न शारीरिक, गामक, मानसिक, सामाजिक तथा व्यवहारिक संगठन से है। विकास प्राणी में होने वाले कुल परिवर्तनों का योग है। इन परिवर्तनो को होते हुए देखा जा सकता है। जैसे आंतरिक परिवर्तनों एवं योग्यताओं को अवलोकित किया जा सकता है। विकास जीवन पर्यन्त चलता रहता है और इसका अर्थ व्यापक है। शारीरिक विकास के साथ- साथ बौद्धिक,सामाजिक संवेगात्मक विकास भी होता है।

इरिक्सन ने विकास की धारणा में उन सभी तत्त्वो का समावेश किया है जो मनुष्य को संपूर्णता प्रदान करते है यह एक बहुकोणीय दृष्टिकोण है।जिसमें विकास का रुख किसी एक तरफ ना होकर अनेक दिशाओं मे होता है।इससे व्यवहार का विकास होता है और उससे बालक की सामाजिकता विकास की ओर अग्रसर होती है।

4.4 विकास की अवस्थाएँ (Stages of Development)

विकास की प्रक्रिया मे बालक कुछ सोपानों या अवस्थाओं से होकर गुज़रता है। इनके सम्बंध मे मनोविज्ञानियों मे मतभेद है। सामान्य रुप से इनका वर्गीकरण चार भागो में किया जाता है-

1. शैशवावस्था (Infancy)----जन्म से 5 या 6 वर्ष तक

2. बाल्यावस्था (Childhood)---5 या 6 वर्ष से 12 वर्ष तक

3. किशोरावस्था (Adolescence) --- 12 से 18 वर्ष तक

4. प्रौढ़ावस्था (Adulthood) ---- 18 वर्ष के बाद

कुछ वर्ष पूर्व विकासात्मक मनोविज्ञान में विकास की अवस्थाओं के अनुसार ही विकास के लक्षणों का अध्ययन किया जाता था। उस समय यह माना जाता था कि शैशव के बाद बाल्यकाल में या बाल्यकाल के बाद किशोरावस्था में पदार्पण करते ही बालक में परिवर्तन आ जाते हैं। किंतु अब यह सिद्धांत अमान्य हो चुका है और आज यह माना जाता है कि यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है इसलिये सम्पूर्ण विकास को एक सतत प्रक्रिया के रूप मे देखा जाना चाहिये।

4.5 विकास के मुख्य पहलू (Main Aspects of Development)

शैक्षिक दृष्टि से विकास के सभी पक्षों का अत्यधिक महत्व है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न पक्षों का विकास किस प्रकार होता है तथा विकास की गति को किस प्रकार से तीव्र गति से बढ़ाया जा सकता है।

इन सभी पक्षों को जानने के लिये ही इसका अध्ययन आवश्यक है। विकास की प्रत्येक अवस्था (Infancy, Childhood, Adolescence) में बालक में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, गामक (प्रेरक) परिवर्तन होते हैं, इस दृष्टि से प्रत्येक अवस्था को निम्नलिखित मुख्य पहलूओं मे विभाजित किया जा सकता है।

1. शारीरिक और गामक विकास (Physical and Motor Development)

2. मानसिक विकास (Mental Development)

3. सामाजिक विकास (Social Development)

4. चारित्रिक विकास (Character Development)

5. नैतिक विकास (Moral Development)

नोट:- विकास के मुख्य पहलूओं में हम केवल **शारीरिक और गामक (प्रेरक) तथा मनोसामाजिक** विकास का इस इकाई में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न -1.

1. विकासात्मक मनोविज्ञान से आप क्या समझते है?

2. विकास की कितनी अवस्थाएँ मानी गई है?

3. विकास के मुख्य पहलू कौन से है ?

4.6 बालक का शारीरिक और गामक (प्रेरक) विकास (Physical and Motor Development of a Child)

बालक के विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष उसका शारीरिक विकास है। व्यक्ति के शारीरिक विकास को शैश्वास्था,बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था मे बाँटकर समझा जा सकता है। बालक के शारीरिक विकास मे गामक विकास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। शारीरिक विकास में परिपक्वता से बालक की क्रियाओ में धीरे-धीरे परिवर्तन आ जाता है। इसके विपरीत

बालक की क्रियाशीलता ही शैशवावस्था व बाल्यावस्था में व्यायाम का दूसरा रुप है जो कि शारीरिक विकास में योगदान देती है।

4.7 शारीरिक विकास (Physical Development)

विकास के विभिन्न पक्ष हैं जिनमें शारीरिक पक्ष आधारभूत है। शारीरिक विकास का अर्थ है शरीर के विभिन्न अंगों का विकास। शरीर के रूप में व्यक्ति पहले केवल भ्रूण होता है। जन्म के समय उसका शरीर छोटा होता है। धीरे-धीरे उसके शरीर के अंगों मे परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन कभी रुकता नहीं। प्रौढावस्था मे उसके अंग भी पुष्ट हो जाते है किंतु उसके बाद भी परिवर्तन चलता रहता है।

शारीरिक विकास का वैज्ञानिक अध्ययन लगभग सभी देशों में किया गया है। इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला हैं कि जन्म से दो वर्ष तक की आयु के बच्चों का विकास बहुत तीव्र गति से होता है और उसके बाद किशोरावस्था के आने के लगभग दो वर्ष पूर्व तक विकास की गति मंद रहती है। किशोरावस्था मे यह गति पुन: तीव्र हो जाती है। उसके बाद फिर गति मंद रहती है। बालक व बालिकाओं के शारीरिक विकास की गति समान्तर चलती रहती है। किंतु किशोरावस्था मे बालिकाएं अधिक शीघ्र विकसित होती है। हड्डियों मे विस्तार, आँख व कान के कार्यो मे विकास, रक्त संचार प्रणाली में परिवर्तन, स्नायुमंडल का विकास आदि महत्त्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तनों के साथ-साथ बालक में गामक विकास भीं तदनुरूप होता रहता है।

विकास, अभिवृद्धि, परिपक्वता और अधिगम ये सब शब्द उन शारीरिक,मानसिक,सामाजिक, संवेगात्मक और नैतिक परिवर्तनों का उल्लेख करते है, जिनका व्यक्ति अपने जीवन मे आगे बढ़ते समय अनुभव करता है।

" The term growth, development, maturation and learning to the physical, mental, social, emotional and moral changes which a person experiences as he advances through life."

उक्त लेखकों का अनुपालन करके हम बालकों में होने वाले शारीरिक परिवर्तनो के लिये 'विकास' शब्द का प्रयोग करके, विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले उसके शारीरिक विकास का परिचय दे रहे हैं।

4.7.1. शैशवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Infancy)

"The body of the newborn infant grows and develops until it becomes an adult body."

शैशवावस्था बालक का निर्माण काल है। यह अवस्था जन्म से पाँच वर्ष तक मानी जाती है। पहले तीन वर्ष पूर्व शैशवावस्था और तीन से पाँच वर्ष की आयु उत्तर शैशवावस्था कहलाती है। बालक के जन्म लेने के उपरांत की अवस्था को शैशवावस्था कहते हैं। यह अवस्था पाँच वर्ष तक मानी जाती है। नवजात शिशुओ का आकार 19.5 इंच, भार 7.5 पौंड होता है। वह माँ के दूध पर निर्भर करता है ।धीरे- धीरे वह आँख खोलता है । उसका सिर धड़ से जुड़ा रहता है ।बाल मुलायम एवं मांसपेशिया छोटी एवं कोमल होती है।जन्म के 15 दिन बाद त्वचा का रंग स्थाई होने लगता है।

नवजात शिशु क्रंदन करता है। इससे फेफड़े **(lungs)** में हवा भर जाती है और उसकी श्वसन क्रिया आरम्भ हो जाती है। स्तन पान के कारण उसमें सहज क्रिया प्रकट होती है, वह भूख के समय रोता है। वह 15-20 घटे सोता है। धीरे-धीरे उसमें यह परिवर्तन स्थाई होने लगते है।

बीसंवी शताब्दी को **'बालक की शताब्दी''** कहे जाने का कारण यह है कि इस शताब्दी में मनोविज्ञानियों ने बालक और उसके विकास की अवस्थाओं के सम्बन्ध मे अनेक गम्भीर और विस्तृत अध्ययन किये हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सब अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनका कहना है कि यह अवस्था ही वह आधार है, जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण किया जा सकता है। इस अवस्था में उसका जितना अधिक निरीक्षण और निर्देशन किया जाता है, उतना ही अधिक उत्तम उसका विकास और जीवन होता है।

"The twentieth century has come to be designed as the century of the child"

Crow and Crow

Crow and Crow के अनुसार, शेश्वास्था मे शारीरिक विकास निम्न प्रकार से होता है:-

1. **भार (Weight):** जन्म के समय और पूरी शैशवावस्था में बालक का भार बालिका से अधिक होता है। पहले 6 माह मे शिशु का भार लगभग 7.15 पौंड और बालिका का भार लगभग 7.13 पौंड होता है। पहले 6 माह मे शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष के अंत मे तिगुना हो जाता है।

2. **लम्बाई (Length):** जन्म के समय और सम्पूर्ण शैशवावस्था मे बालक की लम्बाई बालिका से अधिक होती है जन्म के समय बालक की लम्बाई लगभग 20.5 इंच और बालिका की लम्बाई 20.3 इंच होती है। अगले 3 या 4 वर्षों मे बालिकाओ की लम्बाई, बालकों से अधिक हो जाती है। उसके बाद बालकों की लम्बाई बालिकाओ से आगे निकलने लगती है। पहले वर्ष में शिशु की लम्बाई लगभग 10 इंच और दूसरे वर्ष में 4 या 5 इंच बढ़ती है।

3. **सिर व मस्तिष्क (Head and Brain)** : नवजात शिशु के सिर की लम्बाई उसके शरीर की कुल लम्बाई की ¼ होती है। पहले दो वर्षों में सिर बहुत तीव्र गति से बढ़ता है,पर उसके बाद धीमी हो जाती है।जन्म के समय शिशु के मस्तिष्क का भार 350 ग्राम होता है और शरीर के भार के अनुपात मे अधिक होता है।

4. **हड्डियां (Bones) :** नवजात शिशु हड्डियां छोटी और संख्या मे 270 होती है। सम्पूर्ण शैशवावस्था में ये छोटी, कोमल, लचीली और भली प्रकार जुड़ी हुई नहीं होती । ये कैल्शियम, फॉस्फेट और अन्य खनिज पदार्थों की सहायता से दिन – प्रतिदिन कडी होती जाती है। इस प्रक्रिया को 'अस्थीनिर्माण (Ossification) कहते हैं। बालकों के तुलना में बालिकाओं में अस्थी-निर्माण की गति तीव्र होती है।

5. **दाँत (Teeth):** छठे माह मे शिशु के अस्थाई या दूध के दाँत निकलने आरंभ हो जाते है। सबसे पहले नीचे के अगले दाँत निकलते हैं , और एक वर्ष की आयु तक उनकी संख्या 8 हो जाती है। लगभग 4 वर्ष की आयु तक शिशु के दूध क़े सब दाँत निकल आते हैं।

6 **अन्य अंग (Other Organs)**: नवजात शिशु की मांसपेशियों का भार उसके शरीर के कुल भार का 23% होता है। यह भार धीरे-धीरे बढ़ता चला जाता है। जन्म के समय हृदय की धडकन कभी तेज कभी धीमी होती है। जैसे -जैसे हृदय बड़ा होता जाता है , वैसे – वैसे धडकन मे स्थिरता आ जाती है। शिशु के शरीर के ऊपरी भाग का लगभग पूर्ण विकास 6 वर्ष की आयु तक हो जाता है। टाँगों और भुजाओं का विकास अत्यंत तीव्र गति से होता है –शिशु के यौन- सम्बंधी अंगो का विकास अति मन्द गति से होता है।

तीन वर्ष की आयु में शिशु के शरीर **और** मस्तिष्क में संतुलन आरम्भ हो जाता है , उसके शरीर के लगभग सब अंग कार्य करने लगते है और उसके हाथ एवं पैर मज़बूत हो जाते हैं। पाँच वर्ष के अंत तक अनेक शिशु पर्याप्त स्वतंत्रता और कुशलता प्राप्त कर लेते हैं।

4.7.2 बाल्यावस्था मे शारीरिक विकास (Physical Development in Childhood)

"Childhood is the time when the individual's basic outlooks, values and ideals are to a great extent shaped."

बाल्यावस्था, वास्तव में मानव जीवन का वह स्वर्णिम समय है जिसमें उसका सर्वांगीण विकास होता है। **फ्रॉयड** यद्यपि यह मानते है कि बालक का विकास पाँच वर्ष की आयु तक हो जाता है, लेकिन बाल्यावस्था में विकास की यह संपूर्णता गति प्राप्त करती है और एक परिपक्व व्यक्ति के निर्माण की और अग्रसर होती है।

शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था का आरम्भ होता है।यह अवस्था, बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की होती है। बालक में इस अवस्था में विभिन्न आदतों, व्यवहार, रुचि एवं इच्छाओं के प्रतिरूपों का निर्माण होता है।

इस अवस्था मे बालक मे अनेक अनोखे परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिये 6 वर्ष की आयु में बालक का स्वभाव बहुत उग्र होता है और वह लगभग सब बातों का उत्तर 'न' या 'नही' में देता है।7 वर्ष की आयु में वह उदासीन होता है और वह अकेला रहना पसन्द करता है |।8 वर्ष की आयु में उसमें अन्य बालकों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की भावना बहुत प्रबल होती है। 9 से 12 वर्ष तक की आयु में विद्यालय में उसके लिये कोई आकर्षण नहीं रह जाता है। वह कोई नियमित कार्य न करके, कोई महान और रोमांचकारी कार्य करना चाहता है।

"This is, indeed, a difficult period of child development for parents to understand"

Cole and Bruce

Crow and Crow के अनुसार, बाल्यावस्था मे शारीरिक विकास निम्न प्रकार होता है----

1. **भार (Weight)--** बाल्यावस्था में बालक के भार में पर्याप्त होती है। 12 वर्ष के अन्त में उसका भार 80 और 95 पौंड के बीच में होता है। इसके बाद बालिकाओं का भार अधिक होना आरम्भ हो जाता है।
2. **लम्बाई (Length)--** बाल्यावस्था मे 6 या 12 वर्ष तक शरीर की लम्बाई कम बढ़ती है। इन सब वर्षों में लम्बाई लगभग 2 या 3 इंच ही बढ़ती है।

3. **सिर व मस्तिष्क (Head and Brain)** – बाल्यावस्था में सिर के आकार में क्रमश: परिवर्तन होता रहता है। 5 वर्ष की आयु मे सिर –**प्रौढ** आकार का 90% और 10 वर्ष की आयु मे 95% होता है। बालक के मस्तिष्क के भार में भी परिवर्तन होता रहता है।

4. **हड्डियां (Bones)-** बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या में दृढ़ता से वृद्धि होती रहती है। इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 270 से बढ़कर 350 हो जाती है।

5. **दांत (Teeth) -** लगभग 6 वर्ष की आयु में बालक के दूध के दाँत गिरने और स्थाई दाँत निकलने आरंभ हो जाते हैं। 12 या 13 वर्ष तक उसके सब स्थाई दाँत निकल आते हैं जिनकी संख्या लगभग 32 होती है। बालिकाओं के स्थाई दाँत बालकों से जल्दी निकलते हैं।

6. **अन्य अंग (Other Organs)**— इस अवस्था में माँसपेशियों का विकास धीरे – धीरे होता है। 9 वर्ष की आयु में बालक की माँसपेशियों का भार उसके शरीर के कुल भार का 27% होता है। हृदय की धडकन की गति में निरंतर कमी होती जाती है। बालक के कन्धे चौड़े, कूल्हे पतले और पैर सीधे और लम्बे होते हैं। बालिकाओं के कंधे पतले, कूल्हे चौड़े और पैर कुछ अंदर को झुके हुए होते हैं। 11 या 12 वर्ष की आयु में बालक और बालिकाओं के यौनानगों का विकास तीव्र गति से होता है।

बाल्यावस्था में बालक के लगभग सभी अंगों का विकास हो जाता है। फलस्वरूप , वह अपनी शारीरिक गति पर नियंत्रण करना जान जाता है,अपने सभी कार्य स्वयं करने लगता है और दूसरों पर निर्भर नहीं रह जाता है।

4.7.3. किशोरावस्था मे शारीरिक विकास (Physical Development in Adolescence)

"Adolescence is a period of great stress and strain, storm and strike"

मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्यावस्था समाप्त होती है और शुरु होती है किशोरावस्था। यह अवस्था युवावस्था अथवा परिपक्वावस्था तक रहती है यह सत्तत प्रक्रिया है इसे बाल्यावस्था तथा प्रौढावस्था के मध्य का सन्धि काल (Transitional period) कहते है। इस अवस्था की विडंबना होती है --- बालक स्वयं को बड़ा महान समझता है।

बाल्यावस्था के समापन अर्थात 13 वर्ष की आयु से किशोरवस्था आरम्भ होती है। इस अवस्था को तूफान और संवेंगो की अवस्था कहा गया है। किशोरावस्था प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में वह काल है, जो बाल्यावस्था के अंत में आरम्भ होता है और प्रौढावस्था के आरम्भ में समाप्त हो जाता होता है। इस अवस्था के आरम्भ होने की आयु, लिंग, प्रजाति, जलवायु, संस्कृति, व्यक्ति के स्वास्थ्य आदि पर निर्भर करती है। सामान्यत: बालकों की किशोरावस्था लगभग 13 वर्ष की आयु में और बालिकाओं की लगभग 12 वर्ष की आयु में आरम्भ होती है। भारत में यह आयु पश्चिम के ठण्डे देशों की अपेक्षा एक वर्ष पहले आरम्भ हो जाती है।

किशोरावस्था में बालकों और बालिकाओं में क्रांतिकारी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेंगात्मक परिवर्तन होते है। किशोरावस्था वह समय है जिसमें किशोर अपने को वयस्क समझता है और वयस्क उसे बालक समझते हैं। किशोरावस्था मे शारीरिक विकास,विकास की चरम गति होती है। यह चरम गति भविष्य के लिये उसकी शारीरिक रचना को स्थाई कर देती है।

"Youth represents the energy of the present and the hope of the future"

Crow and Crow

Crow and Crow के अनुसार, किशोरावस्था मे शारीरिक विकास निम्न प्रकार होता है---

1. **भार (Weight) -** किशोरावस्था में बालकों का भार बालिकाओं से अधिक बढ़ता है इस अवस्था के अंत में बालकों का भार बालिकाओं से लगभग 25 पौंड अधिक होता है।
2. **लम्बाई (Length) -** इस अवस्था में बालक और बालिका की लम्बाई बहुत तेजी से बढ़ती है। बालक की लम्बाई 18 वर्ष तक और उसके बाद भी बढ़ती रहती है। बालिका अपनी अधिकतम लम्बाई पर लगभग 16 वर्ष की आयु में पहुंच जाती है।
3. **सिर व मस्तिष्क (Head and Brain) ---** इस अवस्था में सिर मस्तिष्क का विकास जारी रहता है | 5 या 16 वर्ष की आयु में सिर का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है एवं मस्तिष्क का भार 1,200 और 1,400 ग्राम के बीच में होता है।
4. **हड्डियां (Bones)** – इस अवस्था में अस्थीकरन की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। हड्डियों मे पूरी मज़बूती आ जाती है और कुछ छोटी हड्डियां एक- दूसरे सें जुड़ जाती है।
5. **दाँत (Teeth) -** इस अवस्था में प्रवेश करने के समय बालक और बालिकाओं के लगभग सब स्थाई दाँत निकल आते हैं। यदि उनके प्रज्ञादंत (Wisdom Teeth) निकलने होते हैं, तो वे इस अवस्था के अंत मे या प्रौढ़ावस्था के आरम्भ मे निकलते हैं।
6. **अन्य अँग (Other Organs)** - इस अवस्था हैं माँसपेशियों का विकास तीव्र गति से होता है। हृदय की धडकन में निरंतर कमी होती जाती है। जिस समय बालक प्रौढावस्था में प्रवेश करता है , उस समय उसके हृदय की धडकन 1 मिनट मे 72 बार होती है। बालकों के सीने और कन्धे एवं बालिकाओं के वक्षस्थल और कूल्हे चौडे हो जाते हैं। बालक में स्वप्न-दोष और बालिकाओं में मासिकधर्म आरम्भ हो जाता है। दोनों के यौनांग पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं।

इस अवस्था के अंत तक बालकों और बालिकाओं की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियों का पूर्ण विकास हो जाता है और वे युवावस्था मे प्रवेश करते हैं। किशोरावस्था व्यक्ति के विकास का महत्वपूर्ण काल है। इस काल मे अधिकांश बालकों और बालिकाओं में शारीरिक परिपक्वता आ जाती है, अर्थात वे संतान उत्पन्न करने के योग्य हो जाते है और ये शारीरिक आकृति मे प्रौढ़ों के समान हो जाते हैं।

4.8 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक

"Health growth is closely allied to favorable living conditions. Factors such as poorly planned or unplanned recreation and rest, improper diet, badly ventilated living quarter, as well as deficient inheritance are conducive to underdevelopment**"**

1. **वंशानुक्रम (Heredity)-** माता- पिता के स्वास्थ्य और शारीरिक रचना का प्रभाव उनके बच्चों पर भी पडता हैं। यदि वे रोगी और निर्बल हैं तो उनके बच्चे भी वैसे ही होते हैं। स्वस्थ्य माता- पिता की संतान का ही स्वस्थ शारीरिक विकास होता है।

2. **वातावरण (Environment)** – बालक के स्वाभाविक विकास में वातावरण के तत्व सहायक या बाधक होते है। इस प्रकार के कुछ मुख्य तत्व हैं --- शुद्ध वायु, पर्याप्त धूप और स्वच्छता, सुंदर स्वास्थ्य मुख्य आधार है। यदि बालक का शरीर , पहनने के वस्त्र., रहने का स्थान, खाने का भोजन आदि स्वच्छ होते है तो उसका शारीरिक विकास तीव्र गति से होता चला जाता है।

3. **पौष्टिक भोजन (Balanced Diet) -** पौष्टिक भोजन,थकान का प्रबल शत्रु और शारीरिक विकास का परम मित्र है, अत: बालक के उत्तम विकास के लिये उसे पौष्टिक भोजन दिया जाना आवश्यक है।

4. **निद्रा व विश्राम (Sleep and Rest)-** शरीर के स्वस्थ्य विकास के लिये निद्रा और विश्राम अनिवार्य है। अत: शिशु को अधिक से अधिक सोने देना चाहिये | तीन या चार वर्ष की आयु के शिशु के लिये 12 घंटे की नींद आवश्यक है । बाल्यावस्था और किशोरावस्था में क्रमश; लगभग 10 और 8 घन्टे की नीद पर्याप्त होती है।

5. **प्रेम (Love)** - बालक के उचित शारीरिक विकास का आधार प्रेम है। यदि उसे अपने माता – पिता का प्रेम नहीं मिलता है तो वह दुखी रहने लगता है। बिना प्रेम के बालक का असंतुलित विकास होना असम्भव हो जाता है। शिक्षक को भी बालक के प्रति प्रेम का व्यवहार करना चाहिये।

6. **खेल व व्यायाम (Play and Exercise) -** शारीरिक विकास के लिये खेल या व्यायाम के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। छोटा शिशु पलंग पर पड़ा –पड़ा ही अपने हाथों और पैरों को चलाकर पर्याप्त विश्राम कर लेता है, पर बालकों और किशोरों के लिये खुली हवा मे खेल और व्यायाम की उचित व्यवस्था किया जाना आवश्यक है।

7. **नियमित दिनचर्या (Daily Routine) -** नियमित दिनचर्या, उत्तम स्वास्थ्य की आधारशिला है । बालक के खाने, सोने, खेलने, पढ़ने आदि का समय निश्चित होना चाहिये। इन सब कार्यों के नियमित समय पर होने से उसके स्वास्थ्य तथा विकास में बहुत ही कम बाधाये आयेंगी।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ कारक है । जैसे शारीरिक बीमारी, रहन- सहन आर्थिक दशा आदि।

बोध प्रश्न-2.

1. शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक बताओ ?

2. किशोरावस्था मे शारीरिक विकास बताओ ?

3. शारीरिक विकास का अध्ययन क्यों जरूरी है?

4.9 गामक विकास (Motor Development)

बालक के शारीरिक विकास के साथ ही साथ गामक विकास का भी योगदान है। गामक विकास से हमारा अभिप्राय " बालक की शक्ति, गति और मांसपेशियों के विकास से तथा हाथ, पैरों के समुचित प्रयोग की क्षमता आ जाने से है"।

यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका सम्बंध बालक के संवेगात्मक, सामाजिक विकास बौद्धिक से होता है , तथा स्वयं भी यह अत्यंत उपयोगी है। यह विकास बाल्यावस्था मे तीव्र गति से होता है। गामक विकास से तात्पर्य गतिशीलता से है।

बालक समुचित गामक विकास के द्वारा ही अपने को समाज के अनुरुप बनाना सीखता है । वह अपनी जिज्ञासा बौद्धिक को वस्तुओं के नियंत्रण, खोज और प्राप्ति के द्वारा पूर्ण करता है। वह दूसरे से व्यवहार करने के ढंग सीखता है, उनसे सहयोग करने की भावना ग्रहण करता है । सभी बातें बालक में समुचित गामक व्यवहार के सीखने पर ही आती है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में बालक की सफलता और असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपनी गामक योग्यताओं का प्रयोग किसी कार्य में कैसे और कब करता है।

गामक विकास केवल इसलिये महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इसका सम्बन्ध शारीरिक और मानसिक विकास से है। वरना स्वयं इसकी परम उपयोगिता है और इसी यह किसी भी व्यक्ति के जीवन मे अत्यंत उपयोगी और महत्वपूर्ण समझा जाता है।

Dr. Verma And Upadhaya----बालक की क्रियाएँ करने की क्षमता के विकास को ही गामक विकास कहते हैं।

Dr. Horluk-- मांसपेशियों, तंत्रिकाओ द्वारा तंत्रिका केन्द्रों की समन्वित क्रियाओं द्वारा शारीरिक गति पर नियंत्रण प्राप्त करना ही गामक विकास कहलाता है।

Crow and Crow-----गामक विकास से तात्पर्य उन शारीरिक क्रियाओं से है जो नाड़ियों, एवं मांसपेशियों की क्रियाओं के समन्वय द्वारा संभव होती है। इन दोनों के सम्बन्ध में बालक की क्रियाओं में और अधिक स्थिरता तथा स्पष्टता आ जाती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है की **बालक मे क्रियाएँ करने की क्षमता के विकास** को ही गामक विकास कहते हैं।

4.10. विभिन्न अवस्थाओं मे गामक विकास क्रम (Sequence of Motor Development at Different Stages)

1. **शैशवावस्था:-** इस अवस्था में जन्म के कुछ दिन बाद ही बालक हाथ-पैर चलाना आरम्भ कर देता है। सिर का उठाना, मुस्कुराना , नेत्र की गतिविधि आदि का विकास होता है। वह वस्तुओं को पकड़ना सीखता है। इसके साथ ही बैठना, रेंगना, खड़े होना सीखता है।
2. **बाल्यावस्था:-** इस अवस्था में बालक अपने अनेक कार्य स्वयं करने लगता है। खाना, पहनना, नहाना आदि कार्य स्वयं करना सीख लेता है।
3. **किशोरावस्था :-** किशोरावस्था में आकर बालक की रूचि समाज द्वारा स्वीकृत कौशल, खेलकूद, नृत्य आदि क्रियाओं में अधिक बढ़ जाती है।

4.11 गामक विकास का महत्त्व (Importance of Motor Development)

गामक विकास का बालक के जीवन में विशेष महत्व है। गामक क्रियाओं के विकास से बालक की गतियो के क्षेत्र में विस्तार होता है। चलने की गति का विकास होने से वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है। इस प्रकार वह अपने साथियों से सम्बन्ध स्थापित करता है। उनके साथ विभिन्न प्रकार के खेल खेलता है। अपनी इन गतिविधियों के कारण ही वह नवीन परिस्थितियों में प्रवेश करके उनके साथ समायोजन स्थापित करने की कला में दक्ष होता जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गामक विकास बालक की वातावरण के साथ समायोजन में सहायता करता है गामक क्रियाओं में स्थिरता बढ़ने से वह अनेक कार्य स्वयं करने लगता है। जिससे उसमे आत्मनिर्भरता बढ़ती है और स्वयं के काम पूरा करने में आत्मसंतोष प्राप्त होता है इसी प्रकार खेलकूद की क्रियाओं में भाग लेने से बालक में सामाजिक कुशलता का विकास होता है। गामक विकास के कारण बालक में बौद्धिक क्षमताएँ विकसित होती है। गामक विकास का इतना महत्व होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न –3.

1. गामक विकास से क्या आशय है ?
2. गामक विकास की चार विशेषताएँ बताइये ?
3. गामक विकास मे शिक्षक की भूमिका स्पष्ट कीजिये ?

4.12 मनो-सामाजिक विकास :- (Psycho-social development)

"By social development and growth we mean the increasing ability t get along well with oneself and others."

शिशु जन्म से सामाजिक प्राणी नही होता है। जैसे-जैसे उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है, वैसे ही वैसे उसका मनो-सामाजिक विकास भी होता रहता है। अपने परिवर के सदस्यो, अपने समूह के साथियों, अपने समाज की संस्थाओ और परंपराओं एवं अपनी स्वयं की रुचियों और इच्छाओं से प्रभावित हो कर ही वह अपने सामाजिक व्यवहार का निर्माण करता है और अपना मनो-सामाजिक निर्माण करता है। सामाजिक व्यवहार में स्थिरता ना होकर परिवर्तनशीलता होती है। अत: समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है और सामाजिक विकास एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ता जाता है।

"The process of socialization begins with the infant's first contact with other people and continues throughout life"

बालक के शारीरिक, मानसिक एवं सांवेगिक विकास का मनो सामाजिक विकास से घनिष्ठ सम्बंध है। मानसिक विकास बालक के सामाजिकरण में अधिक योगदान देता है। उसका परिवार के सदस्यों अथवा समाज के सदस्यो के साथ व्यवहार का रूप मनोसामाजिक विकास का ही परिणाम होता है। संवेगात्मक विकास बालक के मनोसामाजिक विकास को परिमार्जित करता है।

संवेगात्मक विकास से बालकों को सामाजिक बनने में अधिक योगदान मिलता है । इस प्रकार बालक के सभी पक्षों का विकास एक दूसरे के साथ जुड़ा हुआ है।

बालक पर समाज का प्रभाव अधिक पड़ता है। उसको समाज के अनुकूल व्यवहार करना पड़ता है। वह समाज में रहकर धीरे–धीरे लोगो के साथ समायोजन करना सीखता है। समाज के परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्ति का महत्व है। बालक जितना अधिक समाज के सदस्यों के संपर्क में आता है उतना ही अधिक उसका मनो सामाजिक विकास होता है । मनो सामाजिक विकास के लिये सामाजिक सम्बंध तथा अवसर आवश्यक है।

व्यक्ति की रूचि, अभिवृतियों, आदतों और आचार – व्यवहार में प्रौढ़ता प्राप्त करना भी मनोसामाजिक विकास मे आता है। आयु के साथ व्यक्ति के व्यक्तिव के गुणों में परिवर्तन होते हैं| इस प्रकार के परिवर्तन व्यक्ति को वातावरण के साथ अभियोजन स्थापित करने में सहायक होते हैं और इस प्रकार व्यक्ति अपने समाज में रहकर सुव्यवस्थित जीवनयापन करने में समर्थ होता है । मनोसमाजिक विकास के आधार पर व्यक्ति भविष्य में आने वाली परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करने में सफल होता है । व्यक्ति को अपने समाज के रीति-रिवाज एवं परंपराओं से भी परिचित होना आवश्यक है। इन परंपराओं के अनुसार ही व्यक्ति को अपना आचरण निर्धारित करना होता है ।इस प्रकार व्यक्ति का मनोसामाजिक विकास एक सतत प्रक्रिया है । सामाजिक दृष्टि से परिपक्व व्यक्ति मे मनोसामाजिक विकास प्रौढ़ता का द्योतक है।

4.13. सारांश

बालक के विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका शारीरिक विकास है। व्यक्ति के शारीरिक विकास को शैशवावस्था, बाल्यावस्था,तथा किशोरावस्था में बाँटकर समझा जा सकता है। वंशानुक्रम, वातावरण, भोजन, दिनचर्या, खेलकूद, व्यायाम, पालन-पोषण , स्वास्थ्य आदि कारक शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं।

शारीरिक विकास के साथ–साथ गामक विकास का भी अत्यंत महत्व है। यह दोनों एक दूसरे पर निर्भर रहते है । गामक विकास बालकों के महत्त्वपूर्ण विकास में से एक है । इसमें बालकों की माँसपेशियों तथा तंत्रिकाओ कै समन्वित कार्य द्वारा अपनी शारीरिक क्रियाओं पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने से होता है। क्रियात्मक विकास माँसपेशियों कि परिपक्वता पर भी निर्भर करता है। क्रियात्मक विकास एक निश्चित क्रम के अनुसार सभी बालकों में होता है । अत: यह predictable होता है। बालक के क्रियाएँ करने की क्षमता के विकास को ही गामक विकास कहते हैं।

बालक ज्यों- ज्यों बड़ा होता जाता है, वह परम्परा को समझकर उसके अनुकूल व्यवहार करने लगता है।

इस तरह बालक ,सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा किसी समूह का सदस्य बन जाता है।

मनोसामाजिक विकास को समझने के लिये सामाजीकरण , सामाजिक विस्तार, सामाजिक भूमिका और सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

4.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करों ?

2 बाल्यावस्था को विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था क्यों कहा जाता है ?

3. शैशावावस्था से किशोरावस्था तक बालक के शारीरिक विकास का वर्णन कीजिये ?

4. बालकों के गामक विकास और मनोसामाजिक विकास का वर्णन कीजिये ?

4.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

- डॉ0 गुप्ता एस.पी. (2004), " उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- पाठक पी.डी. (2013) , " शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ0 माथुर एस.एस.(2001), " विनोद पुस्तक आगरा
- www.wikipedia .com

इकाई - 5

प्रतिबोध का विकास,भाषा व वाणी का विकास, संज्ञानात्मक विकास

Perceptual development, language and speech development, cognitive development

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 प्रतिबोध का विकास

5.3.1 प्रतिबोध की परिभाषा

5.3.2 प्रतिबोध की विशेषतायें

5.3.3 प्रतिबोध की मानसिक प्रक्रियाऐ

5.3.4 प्रतिबोध के निर्धारक तत्व

5.3.5 प्रतिबोध के सिद्धांत

5.3.6 प्रतिबोध की असामान्य दशायें

5.4 भाषा व वाणी का विकास

5.4.1भाषा व वाणी का अर्थ व परिभाषा

5.4.2 भाषा व वाणी विकास के चरण

5.4.3 भाषा विकास का क्रम

5.4.4 भाषा व वाणी का महत्व

5.4.5 भाषा व वाणी के सिद्धांत

5.4.6 भाषा व वाणी को प्रभावित करने वाले कारक

5.5 संज्ञानात्मक विकास

5.5.1 जीन पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का संप्रत्यय

5.5.2 पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

5.5.3 ब्रुनर के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्न

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना(Introduction)

विकास सतत चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जो बालक को असहाय शिशु से आत्मनिर्भर होकर प्रौढ़ बनाती है | विकास की यह प्रक्रिया जन्म से पूर्व ही माता के गर्भ में प्रारंभ हो जाती है तथा जीवन पर्यन्त चलती रहती है। वास्तव में गर्भाधान के साथ ही विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है तथा जन्म के उपरान्त शैशवावस्था ,बाल्यावस्था ,किशोरावस्था व प्रौढावस्था में निरन्तर किसी न किसी रूप में चलती रहती है शिक्षा के क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया का अत्यन्त महत्व है। आयु के बढ़ने के साथ-साथ विकास के फलस्वरूप बालक की योग्यताओं तथा क्षमताओं में वृद्धि होने लगती है। इसलिए शैक्षिक कार्यक्रमों का निर्धारण करते समय बालकों की आयु तथा उनकी विकास अवस्थाओं तथा उनमें होने वाले शारीरिक ,मानसिक,चारित्रिक,सामाजिक,संज्ञानात्मक, भाषिक,नैतिक व प्रतिबोध का ज्ञान कराता है जिससे विभिन्न आयु के बालकों के विकास तथा उनके विभिन्न विषयों के ज्ञान को हृदयगम करने की क्षमता का समुचित ढ़ंग से मूल्यांकन किया जा सके। प्रस्तुत अध्याय में विकास के केवल प्रतिबोध विकास, संज्ञानात्मक विकास, भाषा और वाणी के विकास का ही महत्वपूर्ण अध्ययन किया गया है। विकास शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यक्षमता, संरचनाओं तथा कार्यों को संगठित करने की जटिल प्रक्रिया है। यह वह प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न आन्तरिक शरीर रचना संबंधी परिवर्तन तथा इनसे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं एकीकृत होकर व्यक्ति को सरलता, सहजता व मितव्ययिता से कार्य करने योग्य बनाती है। विकास की बहुमुखी प्रक्रिया के परिणामस्वरुप व्यक्ति में नवीन क्षमताऐं प्रकट होती है।

संज्ञानात्मक विकास में जीन पियाजे (Jean Piaget) के अनुसार संज्ञानात्मक कार्यविधि की दो विशेषताऐं होती hain –संगठन(Organization) तथा अनुकूल (Adaptation) | संगठन से तात्पर्य बालक के प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक (Cognitive) सूचनाओं को सार्थक पैटर्न जिन्हें बौद्धिक संरचनायें कहते हैं में व्यवस्थित करने से है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वयं की बौद्धिक संरचनाओं का निर्माण करता है जो वातावरण के साथ समायोजन करने में उसके ज्ञान तथा कार्यों को संगठित करने का प्रयास करता है परन्तु कभी-कभी वह इस कार्य में सफल नही हो पाता है तब वह अनुकूलन करता है। अनुकूलन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने पूर्व ज्ञान तथा नवीन अनुभवों के मध्य संतुलन स्थापित करता है |बालक विश्व की क्रियाओं का अनुभव संवेदना द्वारा करते हैं | बालक किसी भी ज्ञान का सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करता है | ज्ञान के ग्रहण करने के पश्चात ही उसे वह व्यवहार में लाता है | बालक ज्ञान का प्रतिबोध किस प्रकार करता है ? इसका पहला आधार है संवेदना और दूसरा है प्रतिबोध | संवेदना में बालक अनिश्य की स्थिति में रहता है जबकि प्रतिबोध में निश्चयात्मक रहती है | मानसिक प्रक्रिया का प्रथम स्तर संवेदना है और द्वितीय स्तर प्रतिबोध है | प्रतिबोध के द्वारा ही हमें किसी उत्तेजक का उचित ज्ञान मिलता है | अत: हम कह सकते है कि प्रतिबोधन वह जटिल एवं ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वातावरण में उपस्थित किसी उत्तेजक का उचित ज्ञान सम्भव होता है |

भाषा व वाणी विकास के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति की भाषा में जो शब्द व वाणी मिलती है वह अवधान पर केन्द्रित होती है | भाषा के माध्यम से बालक अपनी इच्छाओं ,भावनाओं व विचारों को दूसरों के सामने प्रस्तुत करते है | वातावरण व प्रकृति के अनुकूलन बनाने के लिए भाषा सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है | भाषा व वाणी के माध्यम से बालक सबकों अपनी ओर आकर्षित एवं सम्मोहित करते हैं | बालकों की मधुर भाषा दूसरों को आनन्द की अनुभू ति कराने वाली होती है | इस अध्याय के अंतर्गत आप बालक के प्रतिबोधात्मक,संज्ञानात्मक ,भाषा व वाणी के विकास का विस्तृत अध्ययन करेंगे |

5.2 उद्देश्य (Objective)

- विकास के संप्रत्यय को समझ सकेंगे |
- प्रतिबोध के अर्थ व परिभाषा को बता सकेगें |
- प्रतिबोध के निर्धारक तत्वों को समझ सकेंगे |
- प्रतिबोध के सिद्धांतो की व्याख्या कर सकेंगे |
- प्रतिबोध की असामान्य दशाओं को स्पष्ट कर सकेंगे |
- भाषा व वाणी के संप्रत्यय को समझ सकेंगे |
- भाषा व वाणी के अर्थ व परिभाषा को बता सकेंगे |
- भाषा व वाणी के महत्व को समझ सकेंगे |
- भाषा व वाणी के सिद्धांतों की व्याख्या कर सकेंगे |
- वाणी गतिकी व प्रतिबोध की व्याख्या कर सकेंगे |
- संज्ञानात्मक विकास के अर्थ व परिभाषा को समझ सकेंगे |
- संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांतो की व्याख्या कर सकेंगे |
- संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं को बता सकेंगे |
- संज्ञानात्मक विक्कास के शैक्षिक महत्व को समझ सकेंगे |

5.3.प्रतिबोध का विकास (Perceptual Development)

विश्व की क्रियाओं का अनुभव हम संवेदना द्वारा करते हैं और संवेदना ध्वनि पर केन्द्रित होती है | संवेदना के पश्चात ज्ञान को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण कर लेना ही प्रतिबोध कहलाता है | प्रतिबोध के द्वारा ही हमें किसी उत्तेजक का उचित ज्ञान मिलता है | प्रतिबोध वह जटिल एवं ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वातावरण में उपस्थित किसी उत्तेजक का ज्ञान सम्भव होता है | प्रतिबोध एक महत्त्वपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है | मनोविज्ञान व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान है |व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का सही अध्ययन प्रतिबोध पर ही निर्भर करता है |प्रतिबोध की

क्रिया संवेदन की प्रक्रिया से प्रारम्भ होती है और किसी व्यवहार करने की क्रिया के पहले तक होती रहती है | प्रतिबोध की प्रक्रिया संवेदना तथा व्यवहार करने की क्रिया के बीच की प्रक्रिया होती है|संवेदन को ज्ञान की पहली सीढ़ी कहा गया है और प्रतिबोध को ज्ञान की दूसरी सीढ़ी कहा गया है| प्रतिबोध वर्तमान अनुभव होता है ,प्रतिबोध उन्हीं व्यक्तियों ,घटनाओं या वस्तुओं का होता है जो हमारे निकट या सम्मुख होते हैं | अनुभव के साथ –साथ प्रतिबोधन भी विकसित होता है | किसी व्यक्ति ,वस्तु तथा घटना के प्रति आवृतियों की संख्या ज्यों-ज्यों बढती जाएगी, प्रतिबोध उतना ही गहन होता जायेगा |

5.3 .1. प्रतिबोध की परिभाषा (Definition of perceptual)

मैक्डूगल(McDugal)-"प्रतिबोध वर्तमान लक्ष्यों का चिन्तन है जब तक एक लक्ष्य उपस्थित रहता है ,तब तक आने वाला उत्तेजक हमारी इन्द्रियों को प्रभावित करता है "|

वुडवर्थ(Wudworth)-"प्रतिबोध इन्द्रियों की सहायता से पदार्थ या बाह्य घटनाओं को जानने की क्रिया है "|

हिलगार्ड एवं एटकिंसन (Hilgard&Atkinson)-'प्रतिबोध एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम लोग वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों की व्याख्या करते हैं तथा उसे संगठित करते हैं '|

स्टेग्नर (Stegner)-'इन्द्रियों द्वारा बाह्य वस्तुओं तथा घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया को प्रतिबोध कहते हैं'|

उपरोक्त परिभाषाओं का समालोकन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'प्रतिबोध एक सक्रिय चयनात्मक एवं संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को अपने आंतरिक अंगो तथा बाह्य वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का तात्कालिक अनुभव है '|

5.3.2.प्रतिबोध की विशेषताऐ (Charactristics of Perceptual)

बालक में प्रतिबोध का विकास जन्म से ही होने लगता है |आरंभ में बालक की आँखे किसी वस्तु को देखती है किन्तु वस्तु पर अधिक देर तक टिकती नहीं है | वह क्या देखता है ? वह क्या सुनता है? किसे सुनता है ?आदि का प्रतिबोध धीरे-धीरे होता है | प्रतिबोध का सम्बन्ध बाह्य जगत से है, प्रतिबोध एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके सहारे व्यक्ति बाह्य उद्दीपकों का अर्थ समझ लेता है| प्रतिबोध की विशेषताऐ निम्नलिखित है :-

1. प्रतिबोध के लिए उद्दीपक अनिवार्य है |
2. प्रतिबोध में उद्दीपक का तात्कालिक अनुभव होता है |
3. प्रतिबोध एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है |
4. प्रतिबोध एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है |
5. प्रतिबोध में उद्दीपकों का संगठन एवं एकीकरण है |
6. प्रतिबोध में उद्दीपकों का अवधान एवं चयन होता है |
7. प्रतिबोध में उद्दीपकों की स्थिरता एवं दृढ़ता होती है |
8. प्रतिबोध में अधिगम एवं पूर्व अनुभव होता है |

5 .3.3.प्रतिबोध में मानसिक प्रक्रियाएं (Mental Process inPerceptual)

प्रतिबोध को व्यक्ति के संवेग ,रुचियाँ ,अभिरूचियाँ ,भाव ,ध्यान ,प्रेरणा आदि प्रभावित करते हैं| आलपोर्ट ने प्रतिबोध में मनोवृति का महत्वपूर्ण प्रभाव बताया है | प्रतिबोध एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमें सम्मिलित तत्वों का जब तक अध्ययन नहीं कर लेते तब तक प्रतिबोध की पूर्ण व्याख्या नहीं कर सकते | प्रतिबोध की मानसिक प्रक्रिया को चार वर्गों में विभाजित करते हैं –(i) संग्राहक प्रक्रिया (Receptor Process) (ii) एकात्मक प्रक्रिया (Unitication Process) (iii) भावात्मक प्रक्रिया (Affective Process) (iv)

5.4.4 प्रतिबोध के निर्धारक तत्व (Factors of Perceptual)

व्यक्ति किसी भी वातावरण में हो वह कुछ ही उत्तेजकों के प्रति प्रतिकिया करता है और शेष उद्दीपक उपेक्षित रह जाते है यही प्रतिबोध की चयनात्मक प्रक्रिया है | प्राणी का यह विशिष्ट व्यवहार जिसमें प्रतिबोध का निर्धारण होता है उसकी विशेषताओं तथा वातावरण में पाये जाने वाले उत्तेजकों के गुणों के आधार पर होता है यही प्रतिबोध के निर्धारक तत्व कहे जाते हैं | प्रतिबोध के निर्धारक तत्व दो प्रकार के है –आंतरिक एवं बाह्य | मनोवैज्ञानकों का ध्यान प्रतिबोध के आंतरिक तत्वों की ओर ज्यादा गया है | मानव की रुचियों ,अभिवृतियो ,आवश्यकताये तथा आदर्श प्रतिबोध की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करते हैं ? यह मनोवैज्ञानिकों का अध्ययन क्षेत्र रहा है | प्रतिबोध जन्मजात होता है या अर्जित | गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिबोध की सम्पूर्ण विशेषताओं को केन्द्रीय स्नायुमंडल की जन्मजात विशेषताओं से सम्बन्धित मानते हैं | साहचर्यवादी तथा इन्द्रियानुभववादी मनोवैज्ञानिक प्रतिबोध को सदैव अनुभव के आधार पर अर्जित मानते है | प्रतिबोध में व्यक्ति की आंतरिक तथा बाह्य तत्व किस प्रकार प्रभावित करते हैं इसका उल्लेख निम्नलिखित है –

(i) प्रतिबोध पर संदर्भ प्रभाव –प्रतिबोध पर इन्द्रिय तथा ज्ञानेंद्रिये पेशियों का प्रभाव पड़ता है |
(ii) प्रतिबोध पर अधिगम का प्रभाव
(iii) प्रतिबोध पर सेट का प्रभाव
(iv) प्रतिबोध पर अभिप्रेरणा का प्रभाव
(v) प्रतिबोध पर अभिरुचियों का प्रभाव
(vi) प्रतिबोध पर व्यक्तित्व एवं वैयक्तिक समायोजन का प्रभाव

5.3.5 प्रतिबोध के प्रमुख सिद्धांत (Major Theories of Perceptual)

प्रतिबोध की प्रकिया को पूर्णरूपेण समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने सात प्रकार के सिद्धांतो का प्रतिपादन किया है जो निम्नलिखित हैं –

(i) **प्रतिबोध का दैहिक सिद्धांत (Physiological theory of Perceptual Theory):-** इस सिद्धांत का प्रतिपादक हेब्ब ने किया है | इसमें सभी तरह की प्रत्यक्ष अनुभूतियों की व्याख्या न्युरोदैहिक प्रकम (Neuro-Physiological Mechanism) के रूप में की जाती है जब कोई उद्दीपक से व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रिया प्रभावित होती है तो उसमें तंत्रिका आवेग उत्पन्न हो जाता है जो मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्र में पहुँचता है इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को प्रतिबोध होता है ज्ञानेन्द्रियों से लेकर मस्तिष्क तक होने वाली प्रक्रिया को न्युरोदैहिक प्रक्रम कहा जाता है | हेब्ब (1949) ने एक विशेष दिशा निर्देश

प्रस्तुत किया कि प्रतिबोध अधिकतर अंश जन्मजात न होकर अर्जित होता है | इसकी व्याख्या हेतु उन्होंने अनुबंधन के नियम का प्रतिपादन किया है | हेब्ब के सिद्धांत में प्रतिबोध प्रक्रिया में गत अनुभूति या सीखना अनिवार्य है इसलिए एक द्वैध चिन्ह प्रक्रम (Dual Trace Mechanism) के संप्रत्यय के अस्तित्व को स्वीकार किया |

(ii) **प्रतिबोध का प्रत्यक्ष सिद्धांत पारिस्थिक सन्दर्भ (Direct Theory of Perceptual an Ecological Perspective)**:- गिब्सन (1979) ने प्रतिबोध के प्रत्यक्ष सिद्धांत का प्रतिपादन किया | गिब्सन ने आर्मी ऑफिसर के रूप में कार्य करते हुए प्रत्यक्ष सिद्धांत की नींव स्थापित की | व्यक्ति की आँख के अक्षिपटल पर पड़ने वाली रौशनी अपने आप में काफी संगठित तथा ज्ञानप्रद होती है और उसे अर्थपूर्ण होने के लिए केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र द्वारा विस्तृत व्याख्या एवं विस्तार की आवश्यकता नहीं होती है व्यक्ति संवेदी-तंत्र पर्यावरण से मिलने वाली सूचनाओ से अच्छी तरह सुमेलित होते हैं | गिब्सन का मानना है कि जो रौशनी हमारी आँख में प्रवेश करती है और वह काफी संगठित एवं संरचित होती है , वातावरण की वस्तुओं से परावर्तित होती है और इस रौशनी में इन वस्तुओं की सारी सूचनाये सम्मिलित होती है | गिब्सन ने अपने सिद्धांत में एफोर्डेंस (Affordance) के संप्रत्यय का प्रतिपादन किया है जिसके माध्यम से वे परावर्तित रौशनी की विशेषताओं को अधिक विशिष्ट करने का सरल प्रयास किया है |

(iii) **प्रतिबोध का सूचना संसाधन सिद्धांत (Information Processing Theory of Perceptual)**:- प्रतिबोध के इस सिद्धांत का प्रतिपादन उन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है जिनकी अभिरुचि कम्प्युटर तथा संचार विज्ञान में ज्यादा रही है | इसमें प्रतिबोध की व्याख्या बाह्य वातावरण या उद्दीपक से प्राप्त सूचनाओं को विभिन्न स्तर पर संशोधित करके किया जाता है | सूचना से तात्पर्य एक ऐसी चीज से होता है जिसके प्राप्त होने से व्यक्ति के मन में उद्दीपक के बारे में बनी अनिश्चतता दूर हो जाती है | सूचना संसाधन में व्यक्ति की प्रतिबोध क्षमता सीमित होती है, कोई व्यक्ति बहुत सारे उद्दीपको में से कुछ का ही प्रतिबोध कर पाता है | सूचना प्रवाह के कई चरण होते हैं –(i) उद्दीपक (Stimulus) (ii) संवेदी ग्राहक(Sensory Receptor) (iii) केंद्रीय तंत्रिका तंत्र(Central Nervous System) (iv) कोर्टीकल मस्तिष्कीय केंद्र (Cortical Brain Centres)(v) अनुक्रिया (Resposce)

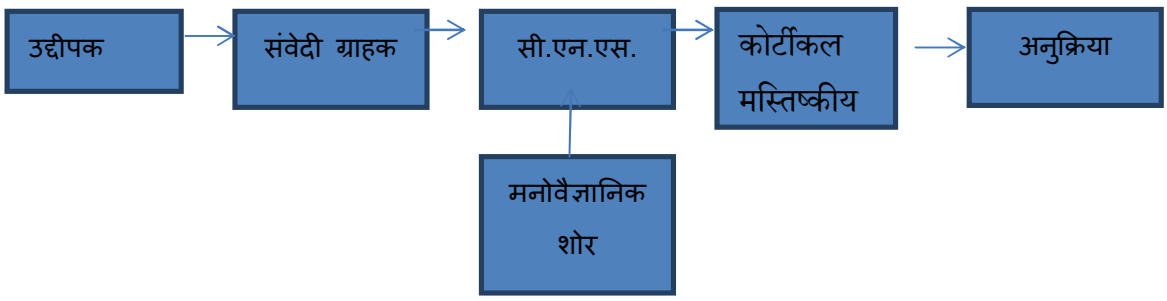

प्रतिबोधकर्ता के भीतर सूचना का प्रवाह

(iv) **प्रतिबोध का गेस्टाल्ट सिद्धांत (Gestalt Theory of Perceptual)**:- गेस्टाल्ट सिद्धांत का प्रतिपादन गेस्टाल्ट मनोविज्ञान स्कूल ने किया है जिसमें वर्दाइमर(Wertheimer),कोहलर(Kohler),कौफ्का(Koffka) का नाम मशहूर है| गेस्टाल्ट सिद्धांत की व्याख्या निम्नांकित चार भागों में की गई है :-(i) आकृति पृष्ठभूमि प्रतिबोध(Figure Ground Perceptual) (ii) प्रतिबोधात्मक संगठन का नियम (Principleof Perceptual Organisation) (iii) समाकृतिकता का सिद्धांत (Principle of Isomorophism) (iv) क्षेत्र बल (Field Forces).

(i) **आकृति पृष्ठभूमि प्रतिबोध:-** गेस्टाल्ट सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का प्रतिबोध अलग- अलग रूप में न करके सम्पूर्ण रूप में करता है | इस सम्पूर्ण प्रत्यक्षण का अपना एक विशेष गुण भिन्न होता है जो वस्तु के भिन्न-भिन्न हिस्सो के प्रतिबोध के विशेष गुण से भिन्न होता है | उदाहरणार्थ व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्ति के चेहरे को देखता है तो उसके आँख ,नाक ,कान ,होठ ,भौ आदि को अलग- अलग नहीं देखता है बल्कि सम्पूर्ण चेहरे के गुणों को देखता है | जब व्यक्ति किसी वस्तु विशेष का बोध करता है तो उसे वस्तु विशेष का कुछ भाग अत्यंत स्पष्ट दिखलाई देता है तथा कुछ तुलनात्मक रूप से कम स्पष्ट दिखाई देता है | जो भाग स्पष्ट दिखाई देता है उसे आकृति तथा जो भाग कम स्पष्ट दिखाई देता है उसे पृष्ठभूमि कहा जाता है ,इस तरह के प्रतिबोध को आकृति पृष्ठभूमि प्रतिबोध कहा जाता है |

(ii) **प्रतिबोधात्मक संगठन का नियम:-** गेस्टाल्टवादियोंका मत है कि प्रतिबोध एक तरह का संगठन पाया जाता है ,जब भी व्यक्ति किसी वस्तु का प्रतिबोध करता है उसे एक खास पैटर्न के रूप में पाया जाता है |

(iii) **समाकृतिकता का सिद्धांत :-** गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रतिपादित समकृतिकता का नियम महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति जिस घटना या वस्तु का प्रतिबोध करता है उससे मस्तिष्क के सम्बन्धित क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन होता है और इन दोनों के बीच घटना या वस्तु जिसका प्रत्यक्षण किया जा रहा है तथा मस्तिष्क में हुए परिवर्तन के बीच एक सीधा सम्बन्ध पाया जाता है |

(iv) **क्षेत्र बल :-** गेस्टाल्टवादियों ने दृष्टि क्षेत्र के दो प्रकारों की कल्पना की है जिनकी कार्यवाहियों से दृष्टि क्षेत्र का कुछ भाग आकृति के रूप में तथा बाकि भाग पृष्ठभूमि के रूप में दिखलाई देती है | ये दोनों बल ससंजक बल (Conhesive Force) तथा अवरोधक बल (Restraining Force. सभी समान उद्दीपक एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं और उसमें मिल जाने की प्रवृति होती है | इस तरह की प्रवृति को ससंजक बल कहा जाता है | दृष्टिक्षेत्र में उपस्थित अनेकों उद्दीपकों में से कुछ उद्दीपक ऐसे भी होते हैं जो एक दूसरे से भिन्न होते हैं | इस प्रकार की भिन्नता से अवरोधक बल उत्पन्न होता है जिसका काम उद्दीपकों को अलग- अलग रखना होता है |

(v) **प्रतिबोध का व्यहारवादी सिद्धांत (Behaviouristic Theory of Perceptual)**:- व्यवहारवादी सिद्धांत के अनुसार अन्य व्यवहारों के समान प्रतिबोध भी एक प्रकार का सीखा गया व्यवहार होता है और जिन नियमो ,सिद्धांतो द्वारा अन्य व्यवहार निर्धारित होते हैं ठीक उन्हीं नियमो एवं सिद्धान्तों द्वारा प्रतिबोध भी निर्धारित

होता है | जिस तरह से कोई सीखा गया व्यवहार आदत रचना ,सामान्यीकरण तथा अवरोध आदि नियमों द्वारा निर्धारित होता है उसी तरह से प्रतिबोध भी इन्हीं नियमों से निर्धारित होता है | हल (hull) ने किसी खास समय में सभी संवेदी तंत्रिका आवेग (Sensory Neuralimpleses) जो तंत्रिका तन्त्र में सक्रिय होते है ,एक दूसरे के साथ अंत:क्रिया करते हैं |

(vi) **प्रतिबोध का निर्देश अवस्था सिद्धांत (Directive State Theory of Perceptual)**:-निर्देश अवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन प्रतिबोध के गेस्टाल्ट सिद्धांत के विरोध में ब्रूनर (Bruner) आलपोर्ट (Allport), शेफ़र एवं मर्फी (Schafer &Murphy) आदि ने किया है | इनका कहना है कि प्रतिबोध में व्यक्तिगत कारकों की उपेक्षा करके गेस्टाल्ट वादियो में बहुत बड़ी भूल की है | इस सिद्धांत के प्रमुख प्रवर्तक ब्रुनर एवं पोस्टमैन (Bruner &Postman) ने बताया कि प्रतिबोध दो तरह के कारकों द्वारा निर्धारित होता है (i)स्थानिक कारक (ii)व्यवहारपरक कारक | स्थानिक कारकों में उद्दीपको से सम्बन्धित आते हैं तथा व्यवहारपरक कारकों में व्यक्तिगत करक जैसे आवश्यकता ,अभिप्रेरक,मान आदि आते हैं | ब्रुनर एवं पोस्टमैनने निर्देश अवस्था सिद्धांत को क्रियात्मक सिद्धांत भी कहा है |

(vii) **प्रतिबोध का कृत्रिम बुद्धि का सिद्धांत (Artifical Intelligence Theory of Perceptual)**:-कृत्रिम बुद्धि सिद्धांत के अनुसार प्रतिबोध एक सम्पूर्ण सिद्धांत के तीन स्तर होते हैं (i) प्रतिबोधात्मक प्रक्रियाओं के दैहिक-प्रक्रम ,नियम जो ऐसी प्रक्रियाओं को विशिष्ट करते है (ii) प्रतिबोध का कार्य उन दैहिक गुणों का विश्लेषण करना है जो उद्दीपकों तक पहुँचने में मदद करता है (iii) प्रतिबोध के संक्रियात्मक नियमों पर अधिक बल डाला गया है | बिने(Binnet) बैंकस क्रोजिसेक (Banks Krozicek) ने कृत्रिम बुद्धि सिद्धांत को दो तरह के विषयों पर बल दिया है (i) उन प्रक्रमों पर जिसके सहारे उद्दीपक से सम्बन्ध सूचनाओ को प्राप्त किया जाता है (ii) वे अनुमान एवं निर्णय जिनका उपयोग करके व्यक्ति किसी प्रत्यक्ष ज्ञान के निष्कर्ष पर पहुंचता है |

प्रतिबोध सम्बन्धी स्थिरता:-प्राणी के प्रत्यक्षीकरण की विभिन्न दशाओं के आधार पर वस्तुओं की संवेदनाएं भी भिन्न हो जाती है परन्तु इन परिवर्तनों की एक सीमा होती है,जिसके बाहर व्यक्ति उन परिवर्तनों को स्थिर रूप में देखता है | वातावरण की स्थिरता में परिवर्तन होने पर भी प्रतिबोध स्थिरता रहती है | प्रतिबोध की स्थिरता चार प्रकार की है (i) आकार स्थिरता (ii) रूप स्थिरता (iii)चमक स्थिरता (iv) रंग स्थिरता

प्रतिबोध के मूल तत्व :- (i) दूरी का प्रतिबोध (Depth Perceptual)(ii) गति का प्रतिबोध(Movement Perceptual) (iii) काल का प्रतिबोध (Time Perceptual) (iv) प्रतिबोधअधिगम Perceptual Learning).

5.3.6 प्रतिबोध की असामान्य दशायें (Abnormal Conditions of Perceptual)

प्रतिबोध की असामान्य दशायें भ्रम (Illusions), विभ्रम (Hallucination), व्यामोह या भ्रान्तियाँ (Delusions) तीन प्रकार की होती है -

1. **भ्रम या दृष्टी-विपर्यय :-**भौतिक उद्दीपक की प्रतिमा और उसके प्रत्यक्षीकरण में पर्याप्त अंतर हो सकता है | हमारा प्रत्यक्षीकरण सदैव यथार्थ नहीं होता है प्रत्यक्षीकरण की यह अशुद्धि ही भ्रम कहलाती है |

2. **विभ्रम :-** विभ्रम एक व्यक्ति की वह अवस्था है जो किसी उत्तेजना के अभाव में प्रत्यक्षीकरण की असामान्यता के रूप में उत्पन्न होती है | अंधकार में व्यक्ति को भूत का प्रत्यक्षीकरण होता है अथवा किसी प्रेमी को एकांत में अपनी प्रेमिका के दर्शन होते है इसी को विभ्रम कहते हैं |

3. **भ्रान्तियाँ :-** त्रुटिपूर्ण विश्वास के कारण भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती है | जब अपना मित्र अथवा सम्बन्धी लम्बे समय तक मिलने नहीं आते हैं तो यह भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है कि अमुक मित्र क्रुद्ध हो गया है | इस प्रकार भ्रान्तियाँ एक दूसरे को दुश्मन बना देती है |

बोध प्रश्न :

1. प्रतिबोध विकास से क्या तात्पर्य है ?

2 . प्रतिबोध को परिभाषित कीजिए ?

3 . प्रतिबोध की विशेषताओं की विवेचना कीजिए ?

4 . प्रतिबोध के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए ?

5 . प्रतिबोध की मानसिक क्रिया को चार श्रेणियों में विभाजित किया है नामोल्लेख कीजिए?

6 . प्रतिबोध की असामान्य दशाऐ बताइए ?

5.4 भाषा व वाणी का विकास (Language and Speech Development)

भाषा नवजात शिशु की सबसे प्रमुख मजबूरी होती है कि वह दूसरों की भाषा एवं हाव-भाव को समझ नहीं पाता है | भाषा एक ऐसा माध्यम है जिससे व्यक्ति अपने विचारों ,इच्छाओं तथा भावनाओं को दूसरों के सम्मुख व्यक्त कर सकता है तथा दूसरों के विचारों ,इच्छाओं,एवं भावनाओं को समझ सकता है | भाषा सम्प्रेषण का एक माध्यम है | भाषा विकास के बिना बालक मानसिक योग्यताओं के विकास से वंचित रह जायेगा | भाषा से तात्पर्य एक ऐसी क्षमता से होता है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने भावों ,विचारों ,इच्छाओं को दूसरों तक पहुँचाता है तथा दूसरों से भावों व विचारों को ग्रहण करता है इसे ही भाषा कहते हैं |भाषा में कई तरह के संचार हो सकते हैं जैसे – मौखिक संचार , मुखाकृति संचार ,आंगिक संचार ,लिखित संचार ,कला संचार ,मूकाभिनय संचार आदि |भाषा विकास के लिए बालक में श्रवण शक्ति अर्थात सुनकर समझने की शक्ति विकसित हो तथा उसमें सार्थक ढंग से ध्वनि उत्पन्न कर बोलने की शक्ति हो |भाषा से सम्बन्धित अध्ययन मिश्र के राजा पासमीटीअस ने किया | भाषा के मनोविज्ञान का अध्ययन मनोभाषिकी (Psycholinguistic) में किया जाता है | भारतवर्ष में भारतीय

मनोभाषिकी परिषद आगरा (Psycholinguistic Association of India, Agra) नाम की संस्था इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रही है |

जार्ज मिलर (George Miller)ने भाषा की विशेषताए बताई है –(i) संरचना (Structure) (ii) प्रक्रिया (Process) (iii) प्रयोग (Use) (iv) अर्थपूर्णता(Meaningful) (v) उत्पादकता (Productivity)

5.4.1.भाषा व वाणी की परिभाषा

हैबर एवं फ्रीड(Haber and Fried 1975) ने लिखा है कि " सभी शब्द संकेत जो परस्पर नियमों से बंधे हैं ,भाषा की संरचना प्रदान करते हैं "|

भाषा की संरचना :-नाडसडी(Nodasdy) ने 4000 मानवीय भाषाओँ का वर्णन किया , भाषा की संरचना को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है –(i) अर्थहीन भाषा का बोलना (Babbling) –इस भाषा को बच्चा 6 महीने में बोलना सीख लेता है | (ii) एक शब्द बोलना (Single word) – एक वर्ष से पूर्व बच्चा एक शब्द जैसे पापा ,ममा इत्यादि बोल लेता है | (iii) दो शब्दों को एक साथ बोलना (Two Word Csombination) – यह बच्चा 2 वर्ष की अवस्था में बोल पाता है | (iv) वाक्य (Sentence) – बच्चा 4 वर्ष की आयु में तीन से आठ शब्दों को बोल सकता है और छोटे वाक्य बना लेता है |

5.4.2 भाषा एवं वाणी विकास के चरण :- मनोवैज्ञानिकों ने बालकों के भाषा व वाणी विकास के चरणों की व्याख्या दो भागों में की गई है –(i) प्राकभाषा विकास (Pre-speech Development) (ii) उत्तरकालीन भाषा विकास की अवस्थाएँ |

(i) प्राक-भाषा विकास :- बालक की 15 महीने की अवस्था को प्राक –भाषा अवस्था कहा जाता है | इस अवस्था में बालक अपनी कुछ इच्छाओं एवं भावनाओं ,आवश्यकताओं को हाव-भाव के द्वारा अभिव्यक्त करता है | सिर्फ माता-पिता ही शिशुओं की भाषा को समझ पाते हैं |प्राक भाषा की अवस्था में बालक संचार अभिव्यक्ति को चार प्रकार से करता है –(i) रुदन (Crying)– नवजात शिशु सबसे पहले रुदन क्रिया द्वारा अपनी आवश्यकताओं को माता-पिता के सम्मुख अभिव्यक्त करता है ,(ii) बबलाना (Babbling)– बबलाना भाषा विकास की दूसरी अवस्था है|प्रथम दो महीने में शिशु अस्पष्ट ध्वनियों को उत्पन्न करता है | मा-मा ,दा –दा,पा –पा आदि ध्वनियों को बबलाता शुरू करता है , (iii) हाव –भाव (Gestures)– हाव-भाव से तात्पर्य शरीर के अंगो द्वारा की गई वैसी क्रियाओं से होता है जिससे कुछ अर्थ निकलता है फलत: वे भाषा के प्रतिस्थापित रूप है | हाव-भाव के माध्यम से शिशु कुछ विशेष ध्वनियों को प्रकट करता है जब तक वह सही शब्दों का वाक्य के रूप में न कर ले | (iv) सांवेगिक अभिव्यक्ति (Emotional Expression) –मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि सुखद संवेग को शिशु जैसे घुटकना,हँसना ,अपनी बांहो को फैलाना आदि द्वारा करता है तथा दुखद संवेग को शिशु रुदन , ठुनकना आदि द्वारा व्यक्त करता है |

(ii) उत्तरकालीन भाषा विकास :- मनोवैज्ञानिकों ने बालकों में उत्तरकालीन भाषा विकास की पांच अवस्थाए बताई है | भाषा विकास हो जाने पर बालक ध्वनियों को दूसरों के समझने लायक हो जाता है उसका सही - सही अर्थ भी स्वयं समझलेता है | इस तरह की भाषा के दो पहलू हैं – क्रियात्मक पहलू एवं मानसिक पहलू | इन पांच अवस्थाओं में शिशुओं में भाषा का वि कास

निम्नांकित है –(i) दूसरों की भाषा को समझना :- प्राय: शिशु हाव भाव तथा आनन अभिव्यक्ति द्वारा परिवार के सदस्यों की भाषा को समझ लेता है (ii) शब्दावली का निर्माण करना :- सामान्यत: बालक वैसे शब्दों को पहले सीखता है जो उनकी भूख प्रेरणा से सम्बन्धित होते हैं | 18 महीने का बच्चा औसतन 10 शब्दों का प्रयोग करता है | (iii) शब्दों का वाक्यों में संगठन करना :- 2 वर्ष का बालक शब्दों को वाक्यों में संगठन करना सीख लेता है, ऐसे शब्दों को बोलने के साथ ही अर्थ भी समझ लेता है (iv) उच्चारण :- शिशु अनुकरण द्वारा शब्दों का उच्चारण करना सीखता है | माता पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों की बात को ध्यनपूर्वक सुन लेता है | (v) भाषा विकास का स्वामित्व:- इस अवस्था में व्यक्ति को शब्दों एवं वाक्यों का सही- सही प्रयोग , भाषा व्याकरण तथा भाषा के वाक्य-विन्यास आदि का पूर्ण ज्ञान हो जाता है | उसे लिखित तथा मौखिक भाषा पर अच्छा नियन्त्रण हो जाता है |

5.4.3.भाषा विकास का क्रम (Sequence of Language Development)

भाषा विकास वाक इन्द्रियों की मांसपेशियों की परिपक्वता तथा पर्यावरण में मिलाने वाली उत्तेजनाओं पर निर्भर करता है | भाषा विकास क्रम निम्न प्रकार से है –(i) ध्वनि की पहचान (Recognition of Sound) (ii) ध्वनि उत्पन्न करना (Production of Sound) (iii) शब्द एवं वाक्यों का निर्माण (Production of Words and Sentences) (iv) लिखित भाषा का प्रयोग (Use of Written Language) (v) भाषा विकास की पूर्ण अवस्था (final stage of language development)

5.4.4 वाणी एवं भाषा का महत्त्व (Importance of Speach and Language)

वाणी एवं भाषा का प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है | **हरलॉक (Harlock) ने** दोनों शब्दों में अंतर करते हुए लिखा है कि भाषा में विचारो के आदान प्रदान के सभी साधन आते हैं जिसमें विचारों तथा भावों को प्रतीकात्मक बनाकर इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे उन्हें दूसरों के सम्मुख विचारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जा सके | पढना, लिखना, बोलना,हावभाव, संकेत, मुखात्मक अभिव्यक्ति तथा कलात्मक अभिव्यक्ति आदि भाषा के ही रूप है | वाणी भाषा का एक स्वरूप है जिसे दूसरों के सम्मुख व्यक्त करने के लिए कुछ ध्वनियाँ या शब्द उच्चारित किए जाते हैं | इस प्रकार वाणी भाषा का एक विशिष्ट रूप है | अस्पष्ट वाणी विकास के साथ-साथ बालकों में स्पष्ट होती जाती है | प्रत्येक ध्वनि को वाणी नहीं कह सकते हैं केवल अर्थ पूर्ण ध्वनि को ही वाणी कहा जायेगा | ध्वनि जिस प्रकार बोली गयी है उसका किसी के साथ सम्बन्ध होना आवश्यक है | ध्वनि के रूप में बोले गए शब्द इस प्रकार सार्थक हों की उनका अर्थ दूसरों की समझ में आना आवश्यक है | भाषा एवं वाणी का महत्त्व निम्न क्षेत्रों में दिखाया गया है –

(i) **सामाजिक संबंधो में वाणी व भाषा का महत्व**– वाणी भाषा के माध्यम से समाज में बात कही जाती है और समझी भी जाती है | वाणी के माध्यम से बालक सामाजिक आदर्शों , नियमों तथा मूल्यों को समझता है | वाणी के द्वारा ही अच्छे सामाजिक सम्बन्ध बनाये जाते हैं |

(ii) **सामाजिक मूल्यों में वाणी व भाषा का महत्व** – जिस प्रकार सामाजिक परिस्तिथियों में वाणी व भाषा के माध्यम से व्यक्ति अपने मधुर सम्बन्ध बनाकर उसका सामाजिक मूल्यांकन करता है |

(iii) **आत्ममूल्यांकन में वाणी व भाषा का महत्त्व** – वाणी व भाषा के आधार पर जिस प्रकार सामाजिक मूल्यांकन होता है उसी प्रकार व्यक्ति वाणी से स्वयं का मूल्यांकन भी करते है |

(iv) **शैक्षिक उपलब्धि में वाणी व भाषा का महत्त्व** – बालक की वाणी तथा लेखन में उसकी अभिव्यक्ति उसकी शैक्षिक उपलब्धि में सहायक होती है उच्च उपलब्धि वाले बालक अधिक बोल व लिख सकते हैं |

5.4.5 वाणी व भाषा विकास का सिद्धांत (Theories of Speech and Language Development)

बालक बोलने तथा वाणी की योग्यता को किस प्रकार अर्जित करते है ? यह प्रश्न मनोवैज्ञानिकों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है मनोवैज्ञानिकों ने भाषा व वाणी के विकास के सिद्धान्तों को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है –

(i) **स्वर यंत्र की परिपक्वता** –भाषा विकास शरीर के किसी एक अंग पर निर्भर नहीं करता बल्कि स्वरयंत्र की परिपक्वता पर निर्भर करता है जैसे – कंठ, तालु, दन्त,होठ,नाक,जीभ आदि |

(ii) **अधिगम सिद्धांत** – अधिगम सिद्धांतवादियों के अनुसार बालक में भाषा विकास उद्दीपक –अनुक्रिया (S-R) के बीच स्थापित साहचर्य पर निर्भर करता है |

(iii) **चोमस्की का सिद्धांत (Chomsky's Theory)-** चोमस्की का कहना है कि बालक में ध्वनि का भाषा के रूप में विकास होता है | यह विकास उसके शरीर में पूर्व स्थापित प्रकिया के आधार पर होता है | चोमस्की ने अपने सिद्धांत का संशोधित रूप 1981 में Government &Binding Theory के नाम से प्रस्तुत किया |

(iv) **सामाजिक अधिगम सिद्धांत (Social Learning Theory)-** इस सिद्धांत के प्रतिपादक बंडूरा (Bandura) के अनुसार बालक भाषा के सम्बन्ध में जो कुछ भी सीखता है वह निरीक्षण तथा अनुकरण के आधार पर सीखता है |

(v) **स्नायुविक आधार सिद्दांत (Neural Basis Theory)-** इस सिद्धांत के अनुसार भाषा विकास स्नायुविक संरचना के प्रकार्यों पर निर्भर करता है |

5.4.6.भाषा व वाणी विकास को प्रभावित करने वाले कारक(Affecting Factors of Speech &Language)

बालकों में भाषा विकास का एक निस्श्चित क्रम के अनुसार विभिन्न अवस्थाओ में होता रहता है भाषा व वाणी विकास की गति कई कारको द्वारा प्रभावित होती है जो निम्नांकित है – (i) स्वास्थ्य (ii) बुद्धि (iii) यौन भिन्नता (iv) सामाजिक आर्थिक स्तर (v) परिवार का आकार (vi) जन्मक्रम (vii) बहुजन्म (viii) द्विभाषा का उपयोग (ix) साथियों के साथ सम्बन्ध (x) माता-पिता द्वारा प्रेरणा |

बोध प्रश्न

1. भाषा विकास का अर्थ बताईये ?

2. भाषा विकास के चरणों के नाम लिखिए ?

3. भाषा व वाणी में क्या अंतर है ?

4. भाषा व वाणी विकास को प्रभावित करने वाले कारको का वर्णन कीजिए ?

5.5. संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development)

शिक्षा मनोवैज्ञानिको के लिए संज्ञानात्मक विकास एक महत्पूर्ण क्षेत्र रहा है संज्ञान से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होता है जिसमें संवेदन, प्रत्यक्षण, प्रतिमा, धारणा, प्रत्याह्वान, समस्या समाधान, चिंतन, तर्कणा जैसी मानसिक प्रक्रियाएँ सम्मलित होती है | **निस्सर** के अनुसार संज्ञान से तात्पर्य संवेदी सूचनाओ को ग्रहण करके उसका रूपांतरण, विस्तरण, संग्रहण, पुनर्लाभ तथा उसका समुचित प्रयोग करने से होता है | संज्ञानात्मक विकास के अध्यन के क्षेत्र में जीन पियाजे (jean piaget) के सिद्धांत को महत्पूर्ण माना है | पियाजे ने बालको के चिंतन एवं तर्कणा के विकास के जैविक तथा संरचनात्मक तत्वों पर जोर देकर संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या की है| ब्रुनर(bruner) ने पियाजे के सिद्धांत को विस्तृत करके एक नया सिद्धांत उत्पन्न किया जो शिक्षको के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ |

5.5.1 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत का संप्रत्यय (Concept of Piaget's Theory of Cognitive Developement):-जीन पियाजे एक प्रमुख स्विस मनोवैज्ञानिक है जिनका प्रशिक्षण प्राणी विज्ञान में हुआ | वे अल्फ्रेड बिने के प्रयोगशाला में बुद्धि परीक्षणों का कार्य रहे थे उसी समय बालको के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत काप्रतिपादन किया |

पियाजे के अनुसार बालको में वास्तविक स्वरूप के बारे में चिंतन करने तथा उसे खोज करने की शक्ति न तो सिर्फ बालको के परिपक्वता स्तर पर और न सिर्फ उसके अनुभवों पर निर्भर करता हैं बल्कि इन दोनों की अंत: क्रिया द्वारा निर्धारित होती है | पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के कुछ संप्रत्य निम्नांकित है–

(i) अनुकूलन(Adaptation)- बालको में वातावरण के साथ समंजन करने की एक जन्मजात प्रवृति होती है जिसे अनुकूलन कहा जाता है | अनुकूलन की दो उपक्रियाऐ हैं –आत्मसात्करण तथा समायोजन

(ii) साम्यधारण (Equilibration) –साम्य्धारण एक एसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसात्करण तथा समायोजन की प्रक्रियाओ के बीच एक संतुलन कायम करता है |

(iii) विकेंद्रण (Decentering) –विकेंद्रीकरण से तात्पर्य किसी वस्तु या चीज के बारे में वस्तुनिष्ठ या वास्तविक ढंग से सोचने की क्षमता से है|

(iv) संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structures) – किसी बालक का मानसिक संगठन या क्षमताओं के सेट को संज्ञानात्मक संरचना कहतेहैं |

(v) स्कीमा (Schema) – स्कीमा से तात्पर्य ऐसी मानसिक संरचना से होता है जिसका सामान्यीकरण किया जा सके |

5.5.2. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत (Piaget's Theory of Cognitive Development) – पियाजे ने बालको के बौद्धिक संरचनाओ के विकास की व्याख्या करने के लिए चार अवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन किया है | वे चार अवस्थाएँ निम्नाकित है-

(1) संवेदनात्मक गामक अवस्था (Sensory-Motor Stage) – 0 से 2 वर्ष तक:- संज्ञानात्मक विकास की प्रथम अवस्था में बालक देखने, पकड़ने, चूसने, पहुंचने आदि की सहज क्रियाओ से व्यवस्थित होता है, जन्म के समय बालक में देखने, चूसने, पकड़ने की क्षमतायें होती है, इस अवस्था में शिशु असहाय जीवधारी से गतिशील, अर्द्धभाषी तथा सामाजिक दृष्टि से चतुर व्यक्ति बन जाते हैं | शिशु आवाज तथा प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया करते है |

(2) पूर्व- संक्रियात्मक अवस्था (Pre-Operational Stage)– 2 से 7 वर्ष तक :- संज्ञानात्मक विकास की इस अवस्था में बालक संकेतात्मक कार्यो का प्रादुर्भाव तथा भाषा का प्रयोग प्रारंभ करता है | इस अवस्था को दो भागों में बांटा गया है –पूर्व प्रत्यात्मक काल तथा अन्तःप्रज्ञा काल इस अवस्था में बालक विभिन्न घटनाओं के संबंध में क्यों तथा कैसे प्रश्न करता है | लगभग चार से सात वर्ष तक की आयु में बालक अंत:प्रज्ञ चिन्तन में होता है | अंत: प्रज्ञ से तात्पर्य बिना किसी तार्किक विचार प्रक्रिया के किसी वस्तु या बात को मस्तिष्क के द्वारा तुरन्तस्वीकार कर लेने से है |

(3) मूर्त- संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operations Stage) – 7 से 12 वर्षतक :- इस अवस्था में पूर्व संक्रियात्मक अवस्था का अतार्किक चिंतन संक्रियात्मक विचारों का स्थान लेने लगता है | बालक मूर्त वस्तुओं के सम्बन्ध में अनेक तार्किक संक्रियाये करने लगता है | मूर्त संक्रिया के दौरान बालक तीन गुणात्मक मानसिक योग्यताओं में पर्याप्त निपुणत हासिल कर लेता है ,ये तीन योग्यताये निम्न है –(i) विचारों की विलोमीयता (ii) संरक्षण (iii) क्रमबद्धता व पूर्ण अंश प्रत्ययों का उपयोग |

(4) औपचारिक–संक्रिया अवस्था (Formal- Operations Stage) – 11 से 15 वर्ष तक :- संज्ञानात्मक विकास की अंतिम अवस्था औपचारिक संक्रिया में बालक अमूर्त बातो के सम्बन्ध में तार्किक चिंतन करने की योग्यता विकसित लेता है | इसमें बालक सांकेतिकव तार्किक अभिव्यक्ति का प्रयोग अधिक करता है |

5.5.3.ब्रुनर के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत (Bruner's Theory of Cognitive Development)

ब्रुनर ने 1966 में पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धांत की उपेक्षा करके एक नये सिद्धांत की रचना की| उन्होंने अपने सिद्धांत को पियाजे की अपेक्षा अधिक उन्नत बनाने की कोशिश की | ब्रुनर ने दो प्रश्नों के उत्तर ढूंडने में अधिक रूचि दिखाई है (i) शिशु किस ढंग से अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से बताते है (ii) शैशवावस्था व बाल्यावस्था में बालकों का मानसिक चिंतन कैसे होता है ? ब्रुनर के अनुसार शिशु अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से तीन तरीको द्वारा बताता है –(i) सक्रियता(Active):- सक्रियता में बालक अपनी अनुभूतियों को क्रिया द्वारा व्यक्त करता है जैसे – दूध की बोतल देख कर शिशु द्वारा मुंह चलाना , हाथ-पैर फैकना, साईकिल चलाना इत्यादि क्रिया करता है | इसमें मनोचालक ज्ञान महत्वपूर्ण होता है |(ii) दृश्य प्रतिमा (Iconic) :- इस अवस्था में प्रतिबिम्बों के द्वारा सूचनाये पहुंचती है , बालकों में दृश्य स्मृति विकसित हो जाती है जैसे शोर चमक गति आदि |(iii) सांकेतिक(Symbolic Stage) :- संकेतात्मक अवस्था में बालक की क्रियात्मक तथा प्रत्यक्षिकृत समझ का प्रतिस्थापन होता है | बालक भाषा, तर्क, गणित तथा संकेतात्मक प्रयोगों को सीख लेता है | संकेतों के प्रयोग से बालकों की संज्ञानात्मक कार्यक्षमता बढ़ जाती है |

बोध प्रश्न :-

1. संज्ञानात्मक विकास से क्या तात्पर्य है ?

2. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की व्याखा कीजिए ?

3. ब्रुनर के संज्ञानात्मक विकास की विवेचना कीजिए ?

4. पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की कितनी अवस्थाएँ बताई है ?

5. ब्रुनर ने संज्ञानात्मक विकास को कितनी श्रेणियों में विभाजित किया है ?

5.6 सारांश

मनोविज्ञान विकास के इस अध्याय में विकासात्मक अवस्थाओं के अंतर्गत प्रतिबोध विकास , भाषा व वाणी का विकास तथा संज्ञानात्मक विकास का वर्णन किया गया है | प्रतिबोध किसी भी वस्तु , घटना या उद्दीपकों के प्रति संवेदना के पश्चात की क्रिया है | प्रतिबोध चयनात्मक प्रक्रिया होती है , प्रतिबोध वस्तु या घटना के प्रति निश्चयात्मक ज्ञान है जो स्थायी हो जाता है | प्रतिबोध वर्तमान अनुभव है , प्रतिबोध उन्हीं व्यक्तियों या घटनाओं का होता है जो हमारे सामने होती है तथा अनुभव के साथ प्रतिबोध क्षमता बढ़ती जाती है | प्रतिबोध विकास के पश्चात भाषा व वाणी का विकास आता है | बालक अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं, भावनाओं को भाषा या वाणी के माध्यम से दूसरों तक पहुंचाता है भाषा व वाणी अनुभवों व संचार का साधन है जिसके माध्यम से बालक संकेतो व उद्दीपकों द्वारा अपने हाव भाव व विचारो को प्रदर्शित करता है | संज्ञानात्मक विकास के अंतर्गत जीन पियाजे , ब्रुनर तथा बंडूरा का नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण मन जाता है | प्रतिबोध चिन्तन तर्क भाषा व वाणी समस्या समाधान आदि के पश्चात संज्ञान व संवेदी सूचनाओं को ग्रहण करने की क्षमता का विकास होता है | पियाजे ने बालक की संवेदी सूचनाओं को ग्रहण करने की चार अवस्थाओ का वर्णन किया है तथा ब्रुनर ने तीन प्रकार की संवेदी श्रेणियों का उल्लेख किया है |

5.7 अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ :-

1. ज्ञान की प्रथम सीढ़ी संवेदना को माना है तो दूसरी सीढ़ी किसे माना है ?

(अ) संवेदना (ब) प्रतिबोध (स) सम्बोध (द) विभ्रम

2 . "प्रतिबोधन इन्द्रियों की सहायता से पदार्थ या बाह्य घटनाओ को जानने की क्रिया है|" यह कथन किसका है ?

(अ) वुडवर्थ (ब) जेम्स ड्रेवर (स) जलोटा (द) मैक्डूगल

3 .प्रतिबोध के प्रत्यक्ष सिद्धांत :पारिस्थिक सन्दर्भ का प्रतिपादन किसने किया है ?

(अ) गिब्सन (ब) हेब्ब (स) कोलमैन (द) वुडवर्थ

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न :-

1 . वाणी व भाषा में क्या अंतर है ?

2 .प्रतिबोध व संज्ञान में अंतर बताइए ?

3 .भाषा व वाणी विकास के सिद्धांत के नाम लिखिए ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न :-

1 .जीनपियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत की विवेचना कीजिए?

2. ब्रुनर के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत की व्याख्या कीजिए?

3. भाषा व वाणी विकास को प्रभावित करने वाले कारको का वर्णन कीजिए?

निबंधात्मक प्रश्न :-

1 .प्रतिबोध से आप क्या समझते है ? प्रतिबोध के निर्धारक तत्वों की विस्तृत विवेचना कीजिए ?

2 .भाषा व वाणी से क्या तात्पर्य है ? भाषा व वाणी की संरचना व संगठन को सविस्तार समझाइये?

3 .संज्ञान से आप क्या समझते है ? संज्ञानात्मक विकास सिद्धांतों की विस्तृत व्याख्या कीजिए ?

5.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. ओझा आर.के .,2005, मनोविज्ञान में समकालीन उपागम एवं विचारधाराएँ , विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- डॉ शर्मा जे.डी, 2005 मनोविज्ञान की पद्धतियों एवं सिद्दांत, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा|
- शर्मा, गणपतराम व व्यास हरिश्चंद्र ,2007 ,अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर |
- डॉ. वर्मा प्रीती व श्रीवास्तव डी . एन . आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान , विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- डॉ भटनागर सुरेश, 2008 , शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षणशास्त्र विनोद पुस्तक मंदिर आगरा |
- भटनागर सुरेश, 2009 , शिक्षा मनोविज्ञान, आर लाल बुक डिपो, मेरठ |
- डॉ सिंह , अरुण कुमार, 2005, मनोविज्ञान , भारती पब्लिकेशन प्रा. लि .|
- डॉ सिंह, अरुण कुमार, (2006), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली |
- डॉ.सिंह, अरुण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली |
- डॉ सिंह , अरुण कुमार ,2001 ,शिक्षा मनोविज्ञान , भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर पटना |
- गुप्ता, एस. पी.व अल्का , 2007 , उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भंडार ,इलाहाबाद |

- माथुर,एस .एस ,2004, शिक्षा मनोविज्ञान , विनोद पुस्तक मंदिर , आगरा |
- मंगल,एस. के., 2002 , शिक्षा मनोविज्ञान , प्रेन्टिस हॉल ऑफ़ इंडिया , नई दिल्ली |
- शर्मा एस. एन., शर्मा अंजना, 2003, आधुनिक मनोविज्ञान के आधार,एच.पी . भार्गव बुक हाउस, आगरा |
- डॉ.उपाध्याय कुमार विनोद , डॉ. भार्गव सुनीता, अधिगम का मनोसामाजिक आधार एवं शिक्षण, अरिहंत शिक्षा प्रकाशन, जयपुर |
- Howard D.V., 1983, Cognitive Psychology, New York, McMillan publishing,Co.Inc.
- Chauhan S.S, 1990, Advanced Education Psychology, Vikas Publication House, New Delhi.
- www.wikipedia.com
- www. encyclopedia.com
- www.google.com

इकाई 6

आरंभिक वर्षों में सम्बन्धन एवं बच्चों के पालन पोषण के तरीके

Attachment in Early Years and Child Rearing Practices

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 प्रस्तावना

6.4 संबंधनके अध्ययन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

6.5 बॉल्बी का संबंधन का सिद्धांत

6.6 मेरी ऐंसवर्थ का संबंधन प्रतिमान

6.7 संबंधन को प्रभावित करने वाले कारक

6.8 बच्चों के पालन पोषण के तरीके

6.9 इकाई सारांश

6.10 महत्वपूर्ण शब्द एवं पद

6.11अभ्यास प्रश्न

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ / अन्य अध्ययन

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

संबंधन(Attachment) - संबंधन/स्नेह हमारे जीवन में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के साथ एक दृढ़, प्रेमपूर्ण संबंधहै, जो हमें प्रसन्नता प्रदान करता है, जब हम उनसे अंत:क्रिया करते हैं या जब तनाव के क्षणों में उनका साथ प्राप्त होता है। प्रथम वर्ष के उतरार्द्ध में शिशु का संबंधन उन परिचित व्यक्तियों से हो जाता है जो उसकी आवश्यकतायें पूरी करते हैं। सर्वप्रथम सिगमंड फ्रॉयड ने यह बताया था कि शिशु का माता के साथ भावनात्मक संबंध उसके जीवन के सभी संबंधोंकी नीव होता है। हालाँकि बाद के शोधों से यह साबित हुआ कि यद्यपि शैशवावस्था का संबंधबाद के संबंधनको प्रभावित करता है पर संबंधनके अनुभवों के निर्धारक माता पिता एवं बालक के संबंधकी सतत गुणवत्ता भी होती है। बालकों के विभिन्न व्यक्तियों के साथ संबंधन के अध्ययन में मनोवैज्ञानिकों ने काफी रूचि

ली और इससे सम्बंधित कई सिद्धांत प्रतिपादित किये गये परन्तु उनमें प्रमुख सिद्धांतों में बॉल्बी एवं मेरी ऐंसवर्थ का रहा है | आइये सर्वप्रथम हम संबंधन के अध्ययन के आरंभ को जानें।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद

- सम्बन्धन का अर्थ समझा सकेंगे एवं उसे परिभाषित कर सकेंगे|
- सम्बन्धन के विभिन्न सिद्धांतों की चर्चा कर सकेंगे|
- सम्बन्धन के बॉल्बी के सिद्धांत की चर्चा कर सकेंगे|
- सम्बन्धन के मेरी ऐंसवर्थ के सिद्धांत की चर्चा कर सकेंगे|
- सम्बन्धन के विभिन्न प्रतिमानों को बता सकेंगे |
- माता पिता के आतंरिक कार्यकारी का बालकों पर प्रभाव बता सकेंगे |
- सम्बन्धन को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में बता सकेंगे |
- बच्चों के पालन पोषण के तरीकों की व्याख्या कर सकेंगे |

6.3 संबंधन के अध्ययन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

शिशुओं के उनके पालनकर्ता साथ भावनात्मक संबंधसदियों से ज्ञात है परन्तु सर्वप्रथम 19 वीं सदी के उतरार्द्ध में संबंधनका वैज्ञानिक अध्ययन मनोविज्ञानियों एवं मनोचिकित्सकों ने शुरू किया और तत्संबंधीसिद्धान्त विकसित करने का प्रयास किया। मनोविश्लेषणवादियों (मुख्यत: फ्रॉयड) ने बच्चे का माता के साथ संबंधन के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला परन्तु उनका सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित था कि यह शिशुओं के लिबिडो को संतुष्ट करता है । मनोविश्लेषणवादियों ने बच्चों के उनके पालनकर्ता के नजदीक रहने के प्रयास को उस अभिप्रेरणा का परिणाम माना जो शिशु के भोजन और उसकी लैंगिक संतुष्टि से जुड़ा हुआ था । 1930 के दशक में मनोविलश्लेषणवादियों की धारणा के वितरीत, ब्रिटिश विकास मनोविज्ञानी इसान सैटी (Ian Sutie) ने बताया कि क्षुधा शांति एवं लिबिडो की संतुष्टि की बजाय बच्चे की प्यार की आवश्यकता किसी व्यक्ति से उसके अनुबंधन का कारण होती है । कनाडियन मनोवैज्ञानिक विलियम क्लाज (जो कि मैरी ऐंसवर्थ) के शिक्षक थे ने बताया कि बच्चों में संबंधन के विकसित होने का मुख्या कारण है सुरक्षा की आवश्यकता जो किसी व्यक्तित्व का एक सामान्य भाग है और भूख और अन्य शारीरिक संतुष्टि से परे है । बॉल्वी द्वारा संबंधन के सिद्धांत के विकास के समय ही एक और 'निर्भरता का सिद्धांत' (Theory of Dependency) भी काफी प्रचलित हो रहा था । इस सिद्धान्त की मान्यता थी कि बच्चे अपने वयस्क पालनकर्ता पर आरंभ में बहुत ज्यादा निर्भर होते हैं जो बाद में धीरे धीरे कम होता जाता है और तदनुसार बड़े होने पर बच्चों के संबंधनव्यवहार भी धीरे धीरे कम होते जाते हैं । इसके विपरीत बॉल्बी के संबंधन सिद्धान्त की मान्यता है कि बड़े बच्चों और वयस्कों में भी संबंधन व्यवहार यथावत रहता है जो तनाव के क्षणों में प्रदर्शित होता है । वस्तुत: बॉल्बी के संबंधनका सिद्धान्त उनकी तत्कालीन संबंधनसिद्धान्तों से अंसतुष्टि का प्रतिफल था ।

बॉल्बी द्वारा संबंधन के सिद्धांत का विकास

विश्व स्वास्थ्य संगठन के लिये **1951** में लिखे गये मोनोग्राफ **मातृत्व देखभाल एवं मानसिक स्वास्थ्य (Maternal Care & Metal Health)** में बॉल्बी ने अपनी परिकल्पना कि ' शिशु एवं बच्चों को अपनी माता के साथ या किसी स्थानापन्न के साथ एक आत्मीयतापूर्ण सतत संबंध का अनुभव करना चाहिए जिसमें दोनों को एक संतुष्टि और प्रसन्नता का अनुभव हो' दुनिया के आगे रखा और यह भी बताया कि इस आत्मीयता की कमी से बच्चों के बाद के जीवन में सामंजस्य सम्बन्धी गंभीर अपरिवर्तनीय (Irreversible) मानसिक स्वास्थ्य संबंधी परिणाम हो सकते हैं। मोनोग्राफ बाद में **'बच्चे की देखभाल एवं प्रेम का विकास' (Child care and the growth of love)** के नाम से आम जनता हेतु प्रकाशित किया गया। उस समय तक इस विषय पर प्रायोगिक सूचना की अनुपलब्धता ने हालाँकि बॉल्बी के आरंभिक सिद्धांत पर सवाल खड़े कर दिए परन्तु उनके कार्य ने मनोवैज्ञानिकों का ध्यान इस जटिल क्षेत्र, बचपन में संबंधनकी और खींचा और इसकी वजह से बच्चों के खेल संबंधी, शैक्षिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु माता पिता को भागीदारी बढ़ाने में योगदान दिया। बॉल्बी के कार्यों के फलस्वरूप समय के साथ अनाथालयों की बजाए पोषण गृह एवं पारिवारिक शैली के गृह विकसित देशों में अनाथ बच्चों के लिए अस्तित्व में आये। बॉल्बी ने संबंधन के अपने अध्ययनों को जरी रखा और नियमित रूप से अपने अनुसन्धान से मनोवैज्ञानिकों को अवगत करते रहे बॉल्बी के सिद्धान्त की औपचारिक नींव शोध पत्र **'बच्चे के उसकी माता के साथ जुड़ाव की प्रकृति' (The nature of the child's tie to his mother)** जो 1958 में प्रकाशित हुई, के साथ रखी गयी। बाद में संबंधनके सिद्धान्त के विकास के क्रम में बॉल्बी ने दो और शोध पत्र 1960 में प्रकाशित किये: **'वियोग दुश्चिंता' (Separation anxiety)** और **क्रोध एवं वियोग: दु:ख एवं अवसाद (Anger & Loss: sadness and Depression)** क्रमश: 1972 और 1980 में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने अपने संबंधन से सम्बंधित विचारों एवं प्रयोगोंसे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर संबंधन के सिद्धांत की व्याख्या की। आरंभिक दौर में बॉल्बी ने मनोविश्लेषणवादियों की विचारधारा पर काम करना शुरू किया था परन्तु बाद के अपने संबंधन के सिद्धांत के विकास के क्रम में उन्होंने मनोविज्ञान और आचारशास्त्र दोनों की सहायता ली।

6.4 बॉल्बी का आचारशास्त्रीय संबंधन का सिद्धान्त (Bowlby's Ethological Theory of Attachment)

संबंधनके सिद्धान्त में **बॉल्बी का आचारशास्त्रीय संबंधन**का सिद्धान्त सर्वाधिक लोकप्रिय एवं स्वीकार्य है। बॉल्वी ने अपने पालनकर्ता के साथ शिशु के भवनात्मक संबंधको बालक के जीवन से जुड़ी अनुक्रिया का प्रतिफल माना है। बॉल्वी के संबंधन का सिद्धान्त, की मान्यता है कि ' पालनकर्ता से शिशु के संबंधनकी गुणवत्ता का बाद में जीवन में उसकी सुरक्षा अनुभूति और संबंधों में विश्वास पर गहरा प्रभाव पड़ता है'।

बॉल्बी का संबंधन का सिद्धान्त एक मनोवैज्ञानिक, विकासात्मक आचारशास्त्रीय सिद्धान्त है जो मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों पर विचार करता है। संबंधन सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता है कि एक बच्चे को कम से कम एक पोषणकर्ता (Care giver) के साथ आत्मीय संबंध विकसित करने की आवश्यकता होती है ताकि उसका सामान्य सामाजिक एवं भावनात्मक विकास हो सके। एक बच्चे का संबंधन से जुड़ा प्राथमिक व्यवहार अपने उस **संबंधन व्यक्तित्व (Attachment Figure)** से नजदीकी का होता है जब वह तनाव महसूस करता हो। बच्चे उन व्यक्तियों से जल्दी संबंधित हो जाते हैं जो सामाजिक अंत: क्रियाओं में उनके प्रति संवेदनशील (Sensitive) एवं प्रतिक्रियाशील (Responsive) होते हैं और जो स्थायी रूप से उनका पालन छ: महीने से दो वर्ष की आयु तक करते हैं। बाद में बच्चे **संबंधन व्यक्तित्व (Attachment figure)** का प्रयोग अपने **वातावरणीय अन्वेषण (Environmental Exploration)** करने और फिर वापस जाने के सुरक्षित आधार के रूप में करने लगते हैं।

बच्चों की विभिन्न क्रियाओं के प्रति माता पिता की अनुक्रिया, उनमें एक **आतंरिक कार्यकारी संबंधन प्रतिमान (Internal Working Model)** में परिवर्तित हो जाता है और उसके व्यक्तित्व की संवेदनाओं, भावनाओं, अपेक्षाओं एवं उनके बाद के संबंधों को प्रभावित एवं निर्धारित करता है। अपने संबंधन व्यक्तित्व से अलग होने पर बच्चे **वियोग दुश्चिंता (Separation Anxiety)** महसूस करने लगते हैं। बॉल्बी ने बचपन के संबंधन की व्याख्या करने के लिये सर्वप्रथम मनोविश्लेषण बाद के दृष्टिकोण से विचार किया, परन्तु बाद में उन्होंने इस प्रयोजन के लिये संज्ञानात्मक मनोविज्ञान एवं आचारशास्त्र की सहायता भी ली। हालाँकि उनके इस सिद्धान्त की आरंभिक आलोचना मनोविश्लेषणवादियों ने की परन्तु बाद में यह बचपन के सामाजिक विकास एवं बालकों में आंतरिक संबधों के विकास के अध्ययन हेतु काफी लोकप्रिय हुआ।

बॉल्वी के अनुसार संबंधन का विकास चार चरणों में होता है तथा संबंधन का व्यवहार तंत्र मुख्यत: संबंधन व्यक्ति (Attachment Figure) से निकटता पर केन्द्रित होता है। शिशु के जीवन के प्रथम छ: माह पूर्व संबंधन के होते हैं जिससे बच्चे हंसना, किलकारियां भरना, रोना जैसे व्यवहार अपने पालनकर्ता का ध्यान आकृष्ट करने के लिये करते है। दूसरे फेज में (2-6 माह) बच्चे धीरे धीरे परिचितों एवं अपरिचितों में भेद करना सीख जाते हैं और अपने पालनकर्ता के प्रति ज्यादा क्रियाशील हो जाते हैं। बालकों में स्पष्ट संबंधन 6 माह से 2 वर्ष की आयु के तीसरे चरण में दिखायी देने लगता है। इस अवस्था में बच्चे का पालनकर्ता के प्रति व्यवहार ज्यादा व्यवस्थित और लक्ष्य केन्द्रित हो जाता है जो बच्चे में सुरक्षित होने/सुरक्षा का भाव उत्पन्न करता है। प्रथम वर्ष के अंत तक बच्चा अपने पालनकर्ता के साथ निकटता को बनाये रखने वाले व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है। इन व्यवहारों में पालनकर्ता से अलग किये जाने का विरोध, पालनकर्ता के वापस आने पर उसका अभिबादन आदि प्रमुख है।

बॉल्वी द्वारा दिए गये संबंधन की चारों अवस्थाओं का विस्तृत विवरण निम्नवत है:

1. **पूर्व संबंधन अवस्था (Pre Attachment Phase): (Birth to 6 Week)**
2. **संबंधनिर्माण की अवस्था (Attachment-in-the-making phase) – (6 week to 8 months)**
3. **स्पष्ट संबंधन की अवस्था (Clear cut attachment phase) (6-8 months to 18 months - 2 years)**
4. **पारस्परिक संबंधों का निर्माण (Formation of Reciprocal Relationship) (18 माह से दो वर्ष और उसके बाद)**

संबंधन की इन सभी अवस्थाओं का विवरण निम्नाकित है:

1. **पूर्व संबंधन अवस्था (Pre Attachment Phase): (Birth to 6 week):**

बच्चे में विद्यमान जन्मजात संकेत यथा पकड़ना, मुस्कराना, रोना, बडों से आंखें मिलाना आदि नवजात शिशुओं को बड़ों के सम्पर्क में आने से सहायता करते हैं। इस आयु के शिशु अपनी माँ की गंध और आवाज पहचानने लगते है, परन्तु इस आयु में उनका जुड़ाव/संबंधन नहीं हो पाता क्योंकि उनमें तब तक यह जानने की क्षमता विकसित नहीं हुयी होती है कि उन्हें एक अपरिचित के साथ छोड़ दिया गया है।

2. **संबंध निर्माण की अवस्था (Attachment making phase) – (6 week to 8 months)**- इस अवस्था में बच्चे अपनी माता/पालनकर्ता एवं अजनबी व्यक्तियों से अलग अलग व्यवहार करना सीख लेते हैं। जब बच्चा माँ के साथ होता है वह हंसता है मुस्कराता है और यदि रो रहा हो तो माँ के गोद में लेने के पश्चात जल्दी चुप हो जाता है। इस अवस्था तक शिशु यह सीख जाता है कि उसकी क्रियाऐं उसके आस पास के सभी व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करती है, अत: उनमें एक विश्वास का भाव उत्पन्न होता है कि यदि वह संकेत करेगा तो मां/पालनकर्ता उसके संकेतों को समझ कर उसके प्रति अनुक्रिया करेगी, परन्तु इस अवस्था तक वे इस स्थिति में नहीं होते हैं उन्हें माता या पालनकर्ता से अलग किया जाये तो वे उसका विरोध कर सकें।
3. **स्पष्ट संबंधन की अवस्था (Clear cut attachment phase) (6-8 months to 18 months to 2 years)** -

इस अवस्था में माता/परिचित व्यक्तियों के प्रति बालक का संबंधन स्पष्ट हो जाता है। इस अवस्था में बालक वियोजन चिंता (Separation Anxiety) का अनुभव करने लगता है। वियोजन चिंता का तात्पर्य है बालक का परिचितों/माता से अलग होने पर उदास हो जाना, हालांकि यह वियोजन चिंता बालक हमेंशा प्रदर्शित नहीं करता और यह बहुत कुछ बालक के स्वभाव और वर्तमान परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इस अवस्था में बच्चे माता पिता

से विलगाव का विरोध करने के अलावा माता पिता / पालनकर्ता के साथ रहने के लिए हर संभव प्रयास करना शुरू कर देते हैं।

4. पारस्परिक संबंधोंका निर्माण (Formation of Reciprocal Relationship) (18 माह से दो वर्ष और उसके बाद)

दो वर्ष के अंत तक बालक का भाषाई विकास उन्हें माता पिता के आने एवं जाने का समय एवं उनके आने का पूर्वानुमान करना सिखा देता है जिसके फलस्वरूप बच्चे के वियोजन चिंता में कमी आ जाती है । बच्चे माता के वियोजन की अप्रिय स्थिति को अन्य वस्तुओं/क्रियाओं के बदले स्वीकर करना सीख जाते हैं । उदाहरण के लिये लौटने पर खिलौने देने का आश्वासन /बच्चे को टॉफी आदि दे दिये जाने पर बच्चे माता पिता की गैरमौजूदगी स्वीकार करने लगते हैं।

बॉल्वी के अनुसार इन चार अवस्थाओं के अनुभवों से बच्चे एक स्थायी प्रेमपूर्ण संबंध सीख लेते हैं जो माता पिता की अनुपस्थिति में एक सुरक्षित आधार का कार्य करता है। यह बिम्व एक **आंतरिक कार्यकारी प्रतिरूप (Internal Working Model)** का कार्य करता है जो बाद में उनके व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग बन जाता है और उन्हें सभी घनिष्ठ संबंधोंमें निर्देश प्रदान करता है।

बॉल्वी के सिद्धान्त की उपादेयता:

- **आंतरिक कार्यकारी मॉडल:** सम्बन्धन के सिद्धांत का मुख्य फोकस इस संदर्भ में, माता पिता का आंतरिक कार्यकारी मॉडल, उनके आपसी संबंध एवं पालन पोषण के तरीके पर केन्द्रित था जिनमें परिवर्तन करके बच्चों के विभिन्न समस्यात्मक वयवहारों और विकृतियों को दूर किये जाने की वकालत की गयी।
- **संबंधन विकृति एवं अनुक्रियात्मक संबंधन विकृति** : बॉल्वी के संबंधन सिद्धान्त पर किये गये विभिन्न शोधों के परिणाम स्वरूप एवं विशेष संबंधनपैटर्न, के आधार पर प्रतिक्रियात्मक संबंधन विकृति (Reactive attachment Disorder) को एक मानसिक विकृति के रूप में ICD-10 एवं DSM IV TR में शामिल किया गया। जिसका प्रमुख लक्षण गंभीर रूप से अशांत एवं विकासात्मक दृष्टि से अनुर्पयुक्त सामाजिक जुड़ाव जो पांच वर्ष से की आयु से पूर्व शुरू हो जाता है, माना गया। यह आयु के उनुपयुक्त संबंधनव्यवहार को निरूपित करता है।

- **वयस्कों एवं पारिवारिक चिकित्सा में योगदान**

  संबंधनका सिद्धान्त व्यक्ति के संबंधनका एक वृहत दूरदर्शी दृष्टिकोण प्रदान करता है। बजाय एक विशेष इलाज निर्देशित करने के यह रोगी एवं थेरापिस्ट के आपसी संबंधोंको समझने में मददगार है। आजकल यह सिद्धांत युगल चिकित्सा (Couple Therapy) / परिवार चिकित्सा (Family Therapy)आदि में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने लगा है।

6.5 संबंधन प्रतिमान (Attachment pattern)

संबंधन प्रतिमान (Attachment pattern) -मैरी ऐंसवर्थ (Mary Airmwarth) ने अपने विचित्र परिस्थिति के प्रयोगों के आधार पर चार प्रकार के (एक सुरक्षित एवं तीन असुरक्षित) संबंधन प्रतिमान बताये जो निम्नांकित हैं:

1. **सुरक्षित संबंधन(Secure attachment)**
2. **परिहार संबंधन (Avoidant attachment)**
3. **प्रतिरोधी संबंधन(Resistant Attachment)**
4. **अव्यवस्थित संबंधन(Disorganized attachment)**

सुरक्षित संबंधन (Secure attachment) - इसमें बच्चा अपने माता पिता का उपयोग एक सुरक्षित आधार के रूप में करता है। माता पिता से अलग किये जाने पर बच्चे रो भी सकते हैं या नहीं भी परन्तु वे यदि रोते हैं तो इसका कारण सिर्फ इतना है कि माता पिता के साथ रहना, अनजान व्यक्ति के साथ रहने की बजाय उनकी प्राथमिकता है। माता पिता के वापस आते ही वे तुरन्त उनके पास चले जाते हैं आर उनका रोना तत्काल कम हो जाता है।

परिहार संबंधन(Avoidant attachment) - ऐसे बालक माता पिता की उपस्थिति में भी भाव शून्य दिखाई पड़ते हैं। माता पिता के जाने के बाद भी वे बहुत तनाव में नहीं आते और अपरिचितों के साथ भी समान व्यवहार करते हैं। माता पिता के वापसी के बाद भी वे उनके प्रति उदासीन से दिखाई पड़ते हैं।

प्रतिरोधी संबंधन(Resistant Attachment) -ऐसे बच्चे माता पिता के साथ होने पर उनके बहुत निकट होते हैं और उन्हें अलग होने नहीं देना चाहते। अलग होने की स्थिति में अत्यन्त तनाव में रहते हैं और उनके आने पर आक्रामक होकर माता पिता के उनकी गोद में चढ़ना, रोना, चिल्लाना और कई बार धक्का देना, मारपीट करना जैसे व्यवहार प्रदिर्शित करने लगते हैं।

अव्यवस्थित संबंधन (Disorganized attachment) - संबंधनके इस प्रतिमान में बच्चा उच्च स्तर की असुरक्षा, प्रदर्शित करता है। माता पिता के वापस आने के बाद भी ये प्रतिकूल व्यवहार

अनिश्चित व्यवहार प्रदर्शित करते है। जैसे माता पिता के द्वारा बुलाये जाने पर अनसुना का देना, इधर उधर देखना या अवसाद ग्रस्त दिखना बड़ी ही सुस्त प्रतिक्रिया देना आदि।

उपरोक्त चार संबंधन प्रतिमानों में तीन असुरक्षित संबंधन प्रतिमान है और एक सुरक्षित संबंधन प्रतिमान है |

माता पिता के आंतरिक कार्यकारी प्रतिमान और बच्चे के सम्बन्धन सुरक्षा में सम्बन्ध (Relationship between Parent's Internal Working Models to Infant Attachment Security): अनुसंधानों में यह पाया गया है कि माता पिता के अपने आतंरिक कार्यकारी प्रतिमान एवं उनके माता पिता के साथ उनके अनुभव जो वे बच्चों के साथ बांटते हैं का बच्चों के सम्बन्धन प्रतिमान पर गहरा प्रभाव पड़ता है जिसका विवरण निम्नांकित टेबल में दिया गया है:

आतंरिक कार्यकारी प्रतिमान	**माता पिता का व्यव्हार**	**सम्बन्धन का प्रकार**
स्वायत्त / सुरक्षित (Autonomous/Secure)	ऐसे माता पिता अपने बच्चों के साथ उनके माता पिता के बचपन के अनुभवों को बांटते हुए वस्तुनिष्ठता प्रदर्शित करते हैं चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक। न तो वे अपने माता पिता को आदर्शवादी बनाते है न बीते हुए समय के लिए क्रोध प्रदर्शित करते हैं। उनकी बातें विश्वसनीय एवं समन्वयपूर्ण होती है।	**सुरक्षित संबंधन (Secure attachment)**
अस्वीकृति (Dismissing)	ऐसे माता पिता अपने बच्चों के साथ उनके माता पिता के बचपन के अनुभवों को बांटते हुए अपने संबंधन के महत्व को कम करके आंकते है। वे किसी विशेष अनुभवों को याद किये बिना अपने माता पिता को महिमा मंडित करने लगते	**परिहार संबंधन (Avoidant attachment)**

	हैं । अपने अनुभवों की चर्चा करते समय भावनाओं की बजाये बुद्धि का प्रयोग करते हैं ।	
पूर्वाग्रह पूर्ण (Pre-Occupied)	ऐसे माता पिता आपने बच्चों के साथ उनके माता पिता के बचपन के अनुभवों को बांटते उन अनुभवों को उच्च भावनात्मकता के साथ प्रस्तुत करते हैं और कई बार अपने माता पिता के प्रति क्रोध प्रदर्शित करते हैं । इनके माता पिता के साथ अनुभव भ्रमित से प्रतीत होते हैं।	**प्रतिरोधी संबंधन (Resistant Attachment)**
अनिर्णीत (Unresolved)	ऐसे माता पिता उपरोक्त तीनों में से कोई भी व्यवहार प्रतिमान प्रदर्शित करने के अलावा किसी आत्मीय को खोने या शारीरिक या लैंगिक प्रताड़ना की चर्चा करते समय भ्रामक एवं अव्यवस्थित तर्क प्रस्तुत करने लगते हैं।	**अव्यवस्थित संबंधन (Disorganized attachment)**

6.6 संबंधनकी स्थिरता को प्रभावित करने वाले कारक

संबंधनकी स्थिरता को प्रभावित करने वाले कारक

a. संस्कृति
b. सामाजिक स्थिति
c. गरीबी
d. बच्चे के साथ दुर्व्यवहार
e. पालन पोषण की गुणवत्ता
f. पालनकर्ता का स्थायित्व

g. पालन पोषण की गुणवत्ता
h. शिशु का स्वभाव
i. पारिवारिक वातावरण
j. माता पिता के कार्यकारी मॉडल
k. माता पिता का मानसिक स्वास्थ्य

6.7 बच्चों के पालन पोषण के तरीके (Child Rearing Practices)

पालन पोषण के तरीके का तात्पर्य माता पिता द्वारा बच्चे के प्रति किये जा रहे उन सभी व्यवहारों का समन्वय है जो विभिन्न परिस्थियों में प्रदर्शित होती हैं और बच्चे के विकसित होने वाले माहौल का निर्माण करती है एवं उसे प्रभावित करती हैं । बच्चों की विभिन्न क्रियाओं पर माता पिता की अनुक्रिया के आधार पर बच्चों के पालन पोषण के तरीकों को निम्नाकित चार भागों में बाँटा जा सकता है:

a. **अधिकार पूर्ण शैली (Authoritative Style)**
b. **तानाशाही शैली (Authoritarian Style)**
c. **अनुमोदक शैली (Permissive Style)**
d. **असंबद्ध शैली (Uninvolved Style)**

प्रत्येक शैली का विस्तृत विवरण निम्नाकित है:

a. **अधिकार पूर्ण शैली (Authoritative Style)**: यह बच्चों के पालन पोषण का सबसे प्रभावी तरीका है जिसमें बच्चे की **उच्च स्वीकार्यता (High Acceptance), अनुकूलनीय नियंत्रण तकनीक (Adaptive Behavioral Control) और बच्चे को मिलने वाली उपयुक्त स्वायतता (Appropriate Autonomy)** शामिल है | ऐसे माता पिता बच्चे की जरूरतों के प्रति संवेदनशील होते हैं, उसका ध्यान रखनेवाले होते हैं, वे बच्चे के साथ एक प्रसन्नता पूर्ण, भावनात्मक सम्बन्ध विकसित करते हैं जिस से बच्चा उनसे काफी नजदीकी और प्रगाढ़ता से जुड़ा होता है । अधिकार पूर्ण शैली का प्रयोग करने वाले माता पिता दृढ एवं तार्किक होते हैं और साथ ही बच्चे पर व्यवहारिक नियंत्रण भी रखते हैं । वे बच्चे में आयु के अनुसार उपयुक्त परिपक्वता पर भी जोर देते हैं और उनकी अपेक्षाओं के प्रति तर्क भी प्रस्तुत करते हैं । वे दैनिक अनुभवों का बच्चे के शिक्षण हेतु प्रयोग कर के उसे स्व अनुशासित बनाते हैं । इसके अतिरिक्त अधिकार पूर्ण शैली का प्रयोग करने वाले माता पिता बच्चे को उपयुक्त स्वायतता भी प्रदान करते हैं ताकि बच्चा विभिन्न परिस्थतियों में निर्णय लेने में खुद सक्षम हो सके। विशेष कर उन परिस्थितियों में जहाँ बच्चे को कई विकल्पों में से किस एक का चयन करना हो । ये बच्चों से उपयुक्त संप्रेषण करते है और बच्चे को अपने विचार व्यक्त करने हेतु प्रोत्साहित करते हैं । जब भी बच्चे और माता

पिता के बीच कोई असहमति होती है तब वे बच्चे के साथ बैठ कर उसका समाधान ढूढने की कोशिश करते हैं। ऐसे माता पिता की, बच्चों का दृष्टीकोण जानने की यह प्रवृति, बच्चे में बाद के जीवन में विभिन्न मुद्दों पर माता पिता का दृष्टिकोण जानने की आदत का विकास करता है।

b. **तानाशाही शैली (Authoritarian Style):** तानाशाही शैली अल्प स्वीकार्यता एवं सहभागिता होती है। ऐसे माता पिता बच्चे को बहुत कम स्वायत्तता देते हैं और प्रायः बच्चे के व्यावहार में परिवर्तन के लिए बलपूर्ण व्यवहारिक नियंत्रण का प्रयोग करते हैं। बच्चे पर नियंत्रण के लिए ऐसे माता पिता चिल्लाना, धमकी देना, डांटना और कभी कभी शारीरिक प्रताडना आदि का प्रयोग करते हैं। तानाशाही शैली के माता पिता प्रायः 'मैंने कहा है इस लिए तुम करो' की मनोवृति के होते हैं। बच्चे के लिए कोई भी निर्णय वे स्वयं लेते हैं और बच्चे से उम्मीद रखते हैं कि बच्चा बिना किसी न नुकर या प्रति प्रश्न के उनकी बातें मानेगा। बच्चे द्वारा ऐसा न करने की स्थिति में उसे प्रताड़ित करते हैं। बच्चे से वे बहुह ज्यादा उम्मीदें रखते हैं जो कि कई बार बच्चे की क्षमता से बाहर होती है।

   तानाशाही शैली के माता पिता के बच्चे प्रायः दुखी एवं चिंतित दिखाई देते हैं तथा उनमें आत्मविश्वास एवं आत्म सम्मान की भी कमी पाई जाती है। कुंठा के क्षणों में वे कई बार अपने माता पिता के सामान ही शत्रुतापूर्ण व्यव्हार करने लगते हैं। ऐसे बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि कम होती है। वस्तुतः ऐसे बच्चों के स्व अभिव्यक्ति एवं स्वतंत्रता को माता पिता के द्वरा कुचल दिया जाता है ऐसे माता पिता कई बार मनोवैज्ञानिक नियंत्रण का प्रयोग भी बच्चे पर करते हैं और उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का बेजा फायदा उठाने के लिए उनके शाब्दिक अभिव्यक्तियों, भावनाओं को प्रभावित करते हैं। ऐसे माता पिता बच्चे के लिए सबकुछ अपने अनुसार निर्धारित करते हैं और इस क्रम में बच्चे के विचारों, निर्णयों एवं कई बार उसके मित्रों की अवहेलना कर देते हैं। बच्चे से असंतुष्ट होने की स्थिति में ऐसे माता पिता बच्चे के प्रति प्यार, स्नेह आदि कम कर देते हैं जिसका दुष्परिणाम बच्चे के व्यक्तित्व में समायोजन सम्बन्धी कठिनाई अवसाद , चिंता, आक्रामकता आदि के रूप में प्रदर्शित होती है।

c. **अनुमोदक शैली (Permissive Style):** अनुमोदक शैली (Permissive Style) के माता पिता में बच्चों के प्रति स्नेह एवं स्वीकार्यता तो होती है परन्तु उसमें उनकी सहभागिता नहीं होती। ऐसे मातापिता या तो कई बार बच्चे के साथ अत्यधिक सहभागिता दिखाते हैं या उस से बिलकुल निर्लिप्त रहते हैं और ऐसे में व्यवहारिक नियंत्रण पर प्रयोग बहुत कम करते हैं। बच्चे की समझ और आयु के अनुसार धीरे धीरे उसे स्वायतता देने की बजाय वे बच्चे के बहुत सारे निर्णयों को उसपर छोड़ देते हैं जबकि वह उन निर्णयों को लेने के लिए उतना परिपक्व नहीं हुआ होता है। बच्चे की दिनचर्या पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता बच्चा चाहे जब जगे , चाहे जब सोने जाये , चाहे जब और जितना टी .वी देखे, चाहे कोई

भी अच्छा व्यव्हार न सीखे, सब बच्चे पर निर्भर होता है, इसमें माता पिता की दखलंदाजी नहीं होती। ऐसे माता पिता के बच्चे प्रायः आवेगी, दिए गए निर्देशों की अवज्ञा करनेवाले, एवं विद्रोही स्वभाव के हो जाते हैं। ऐसे बच्चों में हठी, किसी भी कार्य पर स्थिर न रहनेवाले, कई बार असामाजिक व्यवहार करने वाले हो जाते हैं। ऐसे माता पिता के बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि भी खराब पाई गयी है।

d. **असंबद्ध शैली (Uninvolved Style):** असंबद्ध शैली (Uninvolved Style) माता पिता बच्चे से भावनात्मक रूप से जुड़े नहीं होते, न ही बच्चे की स्वीकार्यता होती है साथ ही बच्चों पर व्यवहारिक नियंत्रण भी कम होता है। ऐसे माता पिता अपने जीवन की गतिविधियों में ही इतना उलझे होते हैं कि प्रायः अवसाद ग्रस्त रहते हैं। उनके पास अपने बच्चे के लिए न तो समय होता है न ही उर्जा। ऐसे माता पिता बच्चे की तात्कालिक मांग तो पूरी कर देते हों पर बच्चे के हित में कोई भी दूरगामी निर्णय एवं तदनुसार व्यवहार बच्चे को नहीं सिखा पाते हैं और न ही उसे समय पर कोई निर्देशन प्रदान करते हैं।

यदि देखा जाये तो असम्बद्ध शैली एक प्रकर का बच्चे के ऊपर अत्याचार है जिसे **उपेक्षा** कह सकते हैं। इस परिस्थिति में बच्चे में बहुत सारी व्यवहारिक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं, उनकी शैक्षिक उपलब्धि खराब हो जाती है, बच्चे के व्यक्तित्व में समायोजन सम्बन्धी कठिनाई आक्रामकता, अवसाद , चिंता, आक्रामकता आदि के रूप में प्रदर्शित होती है। ऐसे बच्चे कई बार आसामाजिक कार्यों में भी सहभागी पाए जाते हैं।

पालन पोषण की शैलियाँ और उनकी विशेषताएं(Features of Child Rearing Practices):

पालन पोषण की शैली	**स्वीकार्यता एवं सहभागिता**	**नियंत्रण**	**स्वायत्तता**
अधिकार पूर्ण (Authoritative)	प्रगाढ़ता,प्रतिक्रया शील,ध्यान रखनेवाला, धैर्यपूर्ण एवं बच्चे की जरूरतों के प्रति संवेदनशील	अनुकूली व्यवहार नियंत्रण, आयु के अनुसार परिपक्व व्यवहार की अपेक्षा	बच्चे को उसकी इच्छाओं एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता,असहमति की स्थिति में साथ बैठ कर बातचीत कर के समस्या का हल निकालना

तानाशाही (Authoritarian)	प्रगाढ़ता का अभाव, बच्चे की स्वीकार्यता नहीं	बल पूर्ण व्यवहारिक नियंत्रण प्रायः दंड का प्रयोग करते हुए, मनोवैज्ञानिक नियंत्रण का प्रयोग उनके माता पिता के प्रति सम्बन्धन का दुरुपयोग करते हुए	बच्चे की कभी भी न सुनना, हमेशा बच्चे के लिए निर्णय स्वयं लेना
अनुमोदक (Permissive)	प्रगाढ़ता परन्तु बच्चे की क्रियाओं में या अत्यधिक सहभागिता या बिलकुल ध्यान न देने वाले	व्यवहारिक नियंत्रण का अभाव, अल्प या नगण्य परपक्व व्यवहार की मांग	बच्चे को बहुत सरे निर्णय लेने की छूट यद्यपि बच्चा उसके लिए मानसिक रूप से परिपक्व नहीं है
असंबद्ध शैली (Uninvolved)	बच्चे से भावनात्मक रूप से विमुख	व्यवहारिक नियंत्रण का अभाव, अल्प या नगण्य परपक्व व्यवहार की मांग	बच्चे के या बच्चे संबंदी निर्णयों से निस्पृह

6.8 सारांश

संबंधन (Attachment) - संबंधन /स्नेह हमारे जीवन में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के साथ एक दृढ़, प्रेमपूर्ण संबंधहै, जो हमें प्रसन्नता प्रदान करता है, जब हम उनसे अंत:क्रिया करते हैं या जब तनाव के क्षणों में उनका साथ प्राप्त होता है। संबंधनके सिद्धान्त में बॉल्बी का आचारशास्त्रीय संबंधन का सिद्धान्त सर्वाधिक लोकप्रिय एवं स्वीकार्य है । बॉल्वी ने अपने पालनकर्ता के साथ शिशु के भावनात्मक संबंधको बालक के जीवन से जुड़ी अनुक्रिया का प्रतिफल माना है। बॉल्बी के सिद्धान्त की औपचारिक नींव शोध पत्र 'बच्चे के उसकी माता के साथ जुड़ाव की प्रकृति' (The nature of the child's tie to his mother) जो 1958 में प्रकाशित हुई, के साथ रखी गयी। बाद में संबंधन के सिद्धान्त के विकास के क्रम में बॉल्बी ने दो और शोध पत्र 1960 में प्रकाशित किये: 'वियोग दुश्चिंता' (Separation anxiety) और क्रोध एवं वियोग: दुःख एवं अवसाद (Anger & Loss: sadness and Depression) क्रमश: 1972 और 1980 में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने अपने संबंधन से सम्बंधित विचारों एवं प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर संबंधन के सिद्धांत की व्याख्या की। बॉल्वी ने संबंधन की चार अवस्थाएं बताई: शिशु के जीवन के प्रथम छ: माह पूर्व संबंधन के होते हैं जिससे बच्चे हंसना, किलकारियां भरना, रोना जैसे व्यवहार अपने पालनकर्ता का

ध्यान आकृष्ट करने के लिये करते है । दूसरे फेज में (2-6 माह) बच्चे धीरे धीरे परिचितों एवं अपरिचितों में भेद करना सीख जाते हैं और अपने पालनकर्ता के प्रति ज्यादा क्रियाशील हो जाते हैं। बालकों में स्पष्ट संबंधन 6 माह से 2 वर्ष की आयु के तीसरे चरण में दिखायी देने लगता है । इस अवस्था में बच्चे का पालनकर्ता के प्रति व्यवहार ज्यादा व्यवस्थित और लक्ष्य केन्द्रित हो जाता है जो बच्चे में सुरक्षित होने/सुरक्षा का भाव उत्पन्न करता है । प्रथम वर्ष के अंत तक बच्चा अपने पालनकर्ता के साथ निकटता को बनाये रखने वाले व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है । इन व्यवहारों में पालनकर्ता से अलग किये जाने का विरोध, पालनकर्ता के वापस आने पर उसका अभिबादन आदि प्रमुख है । मैरी ऐंसवर्थ (Mary Ainswarth) ने अपने विचित्र परिस्थिति के प्रयोगों के आधार पर चार प्रकार के (एक सुरक्षित एवं तीन असुरक्षित) संबंधन प्रतिमान बताये सुरक्षित संबंधन (Secure attachment), परिहार संबंधन(Avoidant attachment),उदासीनता, प्रतिरोधी संबंधन (Resistant Attachment),अव्यवस्थित संबंधन (Disorganized attachment) संबंधन की स्थिरता को प्रभावित करने वाले कारकों में प्रमुख है संस्कृति,सामाजिक स्थिति, गरीबी,बच्चे के साथ दुर्वयवहार, पालन पोषण की गुणवत्ता, पालनकर्ता का स्थायित्व, शिशु का स्वभाव, पारिवारिक वातावरण,माता पिता के कार्यकारी मॉडल,माता पिता का मानसिक स्वास्थ्य आदि । पालन पोषण के तरीके का तात्पर्य माता पिता द्वारा बच्चे के प्रति किये जा रहे उन सभी व्यवहारों का समन्वय है जो विभिन्न परिस्थियों में प्रदर्शित होती हैं और बच्चे के विकसित होने वाले माहौल का निर्माण करती है एवं उसे प्रभावित करती हैं। बच्चों की विभिन्न क्रियाओं पर माता पिता की अनुक्रिया के आधार पर बच्चों के पालन पोषण के तरीकों को निम्नाकित चार भागों में बाँटा जा सकता है:अधिकार पूर्ण शैली (Authoritative Style), तानाशाही शैली (Authoritarian Style), अनुमोदक शैली (Permissive Style), असंबद्ध शैली (Uninvolved Style) ।विभिन्न शोधों में यह पाया गया है कि इन सभी शैलियों में अधिकार पूर्ण शैली (Authoritative Style) बच्चे में एक स्वस्थ एवं संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

6.9 महत्वपूर्ण शब्द एवं पद

- **संबंधन(Attachment) -** संबंधन/स्नेह हमारे जीवन में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के साथ एक दृढ़, प्रेमपूर्ण संबंधहै , जो हमें प्रसन्नता प्रदान करता है ,जब हम उनसे अंत:क्रिया करते हैं या जब तनाव के क्षणों में उनका साथ प्राप्त होता है ।
- **वियोग दुश्चिंता (Separation Anxiety)**- अपने संबंधन व्यक्तित्व से अलग होने पर बच्चों को महसूस होने वाली चिंता।
- **संबंधन व्यक्तित्व (Attachment Figure)**- बच्चे का प्राथमिक पालनकर्ता जिससे बच्चे का संबंधन होता है।

- **आंतरिक कार्यकारी प्रतिरूप (Internal Working Model)-** बच्चे में विक्सित संबंधन व्यक्तित्व का एक विम्बजो बाद में उनके व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग बन जाता है और उन्हें सभी घनिष्ठ संबंधों में निर्देश प्रदान करता है।
- **संबंधन प्रतिमान (Attachment pattern)-** बच्चे की क्रियाओं के प्रति उसके प्राथमिक पालनकर्ता की अनुक्रिया के अनुभव के परिणामस्वरूप बच्चे में विकसित संबंधन का प्रतिमान।

6.10 अभ्यास प्रश्न

1. सम्बन्धन के सिद्धांत के ऐतिहासिक विकास की चर्चा कीजिये।
2. सम्बन्धन के बॉल्बी के सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।
3. सम्बन्धन के मैरी ऐंसवर्थ द्वारा दिए गए प्रतिमानों की विस्तृत व्याख्या कीजिये।
4. माता पिता के आतंरिक कार्यकारी प्रतिमान का बच्चों के सम्बन्धन प्रतिमान पर क्या प्रभाव पड़ता है?
5. बच्चों के पालन पोषण के तरीकों एवं उसका बच्चों के जीवन पर प्रभाव की विस्तृत चर्चा कीजिये।

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ / अन्य अध्ययन

- Ainsworth, M. D. S. (1967), Infancy in Uganda: Infant care and the growth of love, Baltimore: Johns Hopkins University Press.
- Bowlby, J. (1951). Maternal care and mental health. World Health Organization Monograph.
- Bowlby, J. (1958), The nature of the child's tie to his mother. International Journal of Psycho- Analysis, XXXIX, 1-23.
- Bowlby, J. (1969), Attachment and loss, Vol. 1: Attachment. New York: Basic Books.
- Berk,L. (2013) Child Development: A Life Span Approach, PHI Learning, New Delhi, India.

इकाई-7

विकासात्मक विकार, अधिगम विकार एवं वाणी विकारों की स्क्रीनिंग एवं उनका परीक्षण (Screening and assessment for developmental disorders, learning disorder and speech disorder)

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 विकासात्मक विकृतियों का वर्गीकरण

7.4 बौद्धिक अक्षमता (Intellectual Disabilities)

7.5 बौद्धिक अक्षमता (Intellectual Disabilities) की स्क्रीनिंग एवं परीक्षण

7.6 अधिगम विकृतियाँ (Learning Disorders)

7.7 अधिगम विकृतियों (Learning Disorders) की स्क्रीनिंग एवं परीक्षण

7.5 सम्प्रेषण विकृतियाँ (Communication Disorders) की स्क्रीनिंग एवं परीक्षण

7.6 अन्य सम्बंधित विकृतियाँ: ऑटिज्म (Autistic Spectrum Disorders)

7.7 अवधान न्यूनता / अतिसक्रियता विकार (Attention Deficit & Hyperactivity Disorders)

7.10 इकाई सारांश

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ / अन्य अध्ययन

7.12 अभ्यास प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- विकासात्मक विकृतियों को परिभाषित कर सकेंगे।
- विकासात्मक विकृतियों के विभिन्न प्रकारों को बता सकेंगे।
- बौद्धिक अक्षमता के नैदानिक मानदंडों को बता सकेंगे।

- विशिष्ट अधिगम विकृतियों के नैदानिक मानदंडों की व्याख्या कर सकेंगे।
- सम्प्रेषण विकृतियों के नैदानिक मानदंडों की चर्चा कर सकेंगे।
- ऑटिस्टिक स्पेक्ट्रम विकृतियों के नैदानिक मानदंडों की व्याख्या कर सकेंगे।
- अवधान न्यूनता / अतिसक्रियता विकार के नैदानिक मानदंडों को बता सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना (Introduction)

विकासात्मक विकृतियों (Developmental Disorders) का सामान्य अर्थ है वे विकृतियाँ जो विकासात्मक अवस्था के दौरान परिलक्षित हो जाती हैं। इस प्रकार कि विकृतियाँ प्रायः आरंभिक आयु में ही प्रकट हो जाती है। अक्सर बच्चेके विद्यालय जाने से पहले ही सामने आ जाती है। इन विकृतियों की विशेषताओं में मुख्यतः विकासात्मक न्यूनता (Developmental Deficits) है जो कि व्यक्तिगत , सामाजिक, शैक्षिक या व्यावसायिक क्षति उत्पन्न करती हैं। इन कमियां अत्यंत सीमित अधिगम न्यूनता एवं कार्यात्मकता में सीमित कमी से लेकर सामाजिक कौशलों एवं बुद्धिमता की व्यापक क्षति तक हो सकती हैं। प्रायः स्नायविक विकासात्मक विकृतियाँ एक दूसरे के साथ जुडी हुई पाई जाती हैं: जैसे ऑटिस्टिक स्पेक्ट्रम विकृति (Autistic Spectrum Disorders or ASD) के साथ साथ कई बार बौद्धिक अक्षमता (Intellectual Disorder/Disability) भी पाई जा सकती है , अवधान न्यूनता / अतिसक्रियता विकार (Attention Deficit/Hyperactivity Disorder or AD/HD) के साथ विशिष्ट अधिगम विकृति (Specific Learning Disorder) जुडी हो सकती है। **डी एस एम IV में विकासात्मक विकृतियों को व्यापक विकासात्मक विकृतियों (Pervasive Developmental Disorders) के नाम से जाना जाता था**। जैसा कि आपको विदित है कि डी एस एम की आवधिक रूप से समीक्षा की जाती है और प्रायोगिक अनुभवों के आधार पर उपयुक्त परिवर्तन किया जाता है। **डी एस एम का नवीनतम संस्करण है डी एस एम V, जो वर्ष 2013 में प्रकाशित हुआ है। इसमें विकासात्मक विकृतियों Developmental Disorders) को स्नायविक विकासात्मक विकृतियों (Neurodevelopmental Disorders) का नाम दिया गया है और इस श्रेणी में निम्नलिखित विकृतियों को शामिल किया गया है:**

1. बौद्धिक अक्षमता (Intellectual Disabilities)
2. सम्प्रेषण विकृति (Communication Disorders)
3. ऑटिस्टिक स्पेक्ट्रम विकृतियाँ (Autistic Spectrum Disorders)
4. अवधान न्यूनता / अतिसक्रियता विकार (Attention Deficit & Hyperactivity Disorders)
5. विशिष्ट अधिगम विकृतियाँ (Specific Learning Disorders)
6. गामक विकृतियाँ (Motor Disorders)

हमारे वर्तमान इकाई का मुख्य केंद्र निम्नलिखित तीन विकार हैं:

1. **बौद्धिक विकासात्मक विकृति** (Intellectual and Developmental Disorder) या बौद्धिक अक्षमता (Intellectual Disabilities)
2. सम्प्रेषण विकृति (Communication Disorders)
3. विशिष्ट अधिगम विकृतियाँ (Specific Learning Disorders)

7.3 बौद्धिक अक्षमता (Intellectual Disabilities)

बौद्धिक अक्षमता का तात्पर्य व्यक्ति में सामान्य मानसिक योग्यताओं की कमी यथा तर्क क्षमता, समस्या समाधान, योजना निर्माण , मूर्त चिंतन, शैक्षिक अधिगम या आनुभविक अधिगम की न्यूनता से है। यह न्यूनता अनुकूलनीय कार्यात्मकता में क्षति के रूप में परिलक्षित होती है जिसके कारण व्यक्ति अपने दैनिक कार्यों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता Personal Independence) एवं सामाजिक जिम्मेवारिओं (Social Responsibilities) में एक या अधिक क्षेत्रों यथा सम्प्रेषण (Communication), सामाजिक सहभागिता (Social Participation), शैक्षिक एवं व्यावसायिक कार्यात्मकता (Academic and Occupational Functioning) एवं घर में या समुदाय में स्वावलंबन के मानकों को प्राप्त करने में असफल रह जाता है। व्यापक विकासात्मक न्यूनता (Global Developmental Delay) के कारण व्यक्ति / बच्चा बौद्धिक क्षमता के विभिन्न क्षेत्रों में विकासात्मक मानकों की अपेक्षा को पूर्ण नहीं कर पाता है। यह नैदानिक मानदंड उन व्यक्तिओं के लिए प्रयोग किया जाता है जो एक व्यवस्थित बुद्धि परीक्षण से नहीं गुजर सकते। जिसमे वे छोटे बच्चे भी शामिल है जो छोटी उम्रके कारण मानक परीक्षण में शामिल नहीं हो सकते।
DSM V, 2013 के अनुसार बौद्धिक अक्षमता को भी निम्नांकित उपवर्गों में बाँट दिया गया है:

a. बौद्धक अक्षमता
    i. सौम्य
    ii. मध्यवर्ती
    iii. गंभीर
    iv. अति गंभीर
b. वैश्विक विकासात्मक विलम्ब
c. आनिर्दिष्ट बौद्धिक अक्षमता

a. **बौद्धिक अक्षमता (बौद्धिक विकासात्मक विकृति):** DSM V के अनुसार ***बौद्धिक विकासात्मक विकृति*** *एक ऐसी विकृति है जो विकासात्मक अवस्था के दौरान सामने आती है, जिसमे सामाजिक, संकल्पनिक एवं प्रायोगिक क्षेत्रों में बौद्धिक एवं अनुकूलनीय कार्यात्मकता में कमी पाई जाती है।* DSM V, 2013 के अनुसार बौद्धिक अक्षमता के निर्णय के लिए निम्नांकित तीन शर्ते अवश्य पूरी होनी चाहिये:

1. **बौद्धिक क्षमता में कमी** यथा तर्क क्षमता, समस्या समाधान, योजना निर्माण, अमूर्त चिंतन, निर्णय क्षमता, शैक्षिक अधिगम, आनुभविक अधिगम में कमी जिसे व्यक्तिगत, मानक बुद्धि परीक्षण एवं विभिन्न चिकत्सकीय परीक्षणों द्वारा सुनिश्चित किया जा सके।
2. **अनुकूलनीय कार्यात्मकता में कमी** का परिणाम व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं सामाजिक जिम्मेवारियों के लिए आवश्यक विकासात्मक एवम सामाजिक सांस्कृतिक मानदंडों को पूरा करने में असफलता के रूप में परिलक्षित होता है। अनुकूलनीय कार्यत्मकता में कमी के कारण दैनिक जीवन के एक या अधिक कार्यों यथा सम्प्रेषण, सामाजिक भागीदारी, स्वावलंबन आदि में विभिन्न वातावरणों(विद्यालय, घर एवं समुदाय) में सापेक्ष कमी पाई जाती है।
3. बौद्धिक एवं अनुकूलनीय कौशलों में कमी विकासात्मक अवस्था में प्रकट हो जाती है।

b. **वैश्विक विकासात्मक विलम्ब (Global Developmental Delay):** DSM V के अनुसार बौद्धिक अक्षमता का यह भाग 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए निर्धारित किया गया है, जिसमे आरंभिक बचपन में बौद्धिक अक्षमता की गंभीरता का विश्वसनीय परीक्षण नहीं किया जा सकता । इस नैदानिक मानदंड में 5 साल से कम के उन बच्चों को रखा जाता है जो आयु के अनुसार बौद्धिक प्रकार्यात्मक विकास के विभीन क्षेत्रों में अपेक्षित विकासात्मक मानदंडों (मील के पत्थरों) को प्राप्त नहीं कर पाते। यह उन सभी बच्चों पर लागू होता है जो एक व्यवस्थित बुद्धि परीक्षण से नहीं गुजरे हैं और जो बच्चे इतने छोटे हैं कि वे किसी मानक बुद्धि परिक्षण में शामिल नहीं किये जा सकते इस संभाग के व्यक्तियों को एक निश्चित अवधि के बाद पुनर्परीक्षण की आवश्यकता होती है।

c. **आनिर्दिष्ट बौद्धिक अक्षमता (Unspecified Intellectual Disorder):** इस वर्ग में उन व्यक्तियों के रखा गया है जो पांच वर्ष से ज्यादा आयु के हैं परन्तु उनकी बौद्धिक अक्षमता की गंभीरता संवेदी या शारीरिक अक्षमता यथा अंधत्व, श्रवण बाधिता या गंभीर समस्यात्मक व्यवहार या बौद्धिक अक्षमता के साथ साथ कोई अन्य मानसिक विकृति आदि के कारण स्थानीय स्तर पर उपलब्ध परीक्षणों द्वारा नहीं ज्ञात किया जा सकता है।

7.4 बौद्धिक अक्षमता (Intellectual Disabilities) की स्क्रीनिंग एवं परीक्षण

बौद्धिक अक्षमता की स्क्रीनिंग एवं परीक्षण के लिए बहुत सारे टूल उपलब्ध हैंबौद्धिक अक्षमता एक जटिल संकल्पना है और तदनुसार उसका परीक्षण भी एक जटिल प्रक्रिया है जिसमे परीक्षणकर्ता को कई बातें ध्यान में रखनी होती हैं। मुख्यतः दो प्रकार के परीक्षण उपकरण बौद्धिक अक्षमता को सुनिश्चित करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं:

1. **बुद्धि परीक्षण (Assessment of Intelligence):** बुद्धि परीक्षण के लिए प्रायः निम्नांकित मानकीकृत परीक्षण उपकरण प्रयोग किये जाते हैं:

- WAIS: Weschler's Adult Intelligence Scale
- WISC: Weschler's Intelligence Scale for Children
- Alfred Binet Test
- Bhatia Battery Test

2. **अनुकूलनीय व्यवहार का परीक्षण (Assessment of Adaptive Behaviours)**
   अनुकूलनीय व्यवहार के परीक्षण के लिए प्रायः निम्नांकित मानकीकृत परीक्षण उपकरण प्रयोग किये जाते हैं:
   - ABS: Adaptive Behaviour Scale
   - VSMS: Vineland Social Maturity Scale
3. **शिक्षण एवं पुनर्वास हेतु विकासात्मक एवं क्रियात्मक परीक्षण (Developmental and Functional Assessment)**

मद्रास डेवलपमेंट प्रोग्रामिंग सिस्टम मद्रास डेवलपमेंट प्रोग्रामिंग सिस्टम, प्रो. पी. जयचंद्रन एवं वी. बिमला द्वारा 1968 में विकसित किया गया एक बहुतायत से प्रयोग किया जाने वाला परीक्षण एवं कार्यक्रम विकास का टूल है। मद्रास डेवलपमेंट प्रोग्रामिंग सिस्टम में कुल 360 आइटम हैं जो बच्चें के विकास के आरोही क्रम में रखे गए हैं। यह परीक्षण 18 क्षेत्रों में बांटा गया है और प्रत्येक क्षेत्र में 20 आइटम रखे गए हैं प्रत्येक क्षेत्रों में सभी आइटमों को सरल से कठिन क्रियाओं की ओर सजाया गया है। मद्रास डेवलपमेंट प्रोग्रामिंग सिस्टम के अट्ठारह क्षेत्र निम्नलिखित है:

- स्थूल गामक कौशल
- सूक्ष्म गामक कौशल
- भोजन संबंधित क्रियायें
- कपड़े पहनना
- सजना संवरना
- शौच क्रिया
- ग्रहणषील भाषा
- अभिव्यक्ति की भाषा
- सामाजिक कौश ल
- कार्यात्मक पठन
- कार्यात्मक लेखन
- संख्या संबंधित कौश ल
- पैसा संबद्ध कौशल
- समय संबद्ध कौशल

- घरेलू व्यवहार
- समुदायिक संपर्क
- मनोरंजनात्मक कौशल
- व्यावसायिक कौशल

मद्रास डेवलपमेंट प्रोग्रामिंग सिस्टम की विशेषताएं

1. यह निरीक्षणीय एवं मापनीय शब्दों में लिखित है।
2. अलग निर्मित 18 क्षेत्र जो बच्चे का वर्तमान स्तर निर्धारित करने में वस्तुनिष्ठता प्रदान करते हैं।
3. सभी आइटम सकारात्मक आकलन करने के लिए सकारात्मक भाषा में लिखे गये हैं अर्थात् सभी आइटम में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि बच्चा क्या और किस कठिनाई स्तर तक करता है। बच्चा क्या नहीं कर सकता इसकी चर्चा नहीं की गयी है।
4. प्रत्येक क्षेत्र में समान संख्या में आइटम रखे गये हैं।
5. सभी आइटम सरलता से कठिन के क्रम में सजाये गये हैं।
6. वैज्ञानिक पद्धति से निर्मित अंकन प्रणाली जो बच्चे के क्रमिक विकास का सरल वर्णन करता है।

मद्रास डेवलपमेंट प्रोग्रामिंग सिस्टम की सीमायें

1. यह टूल काफी पुराना हो चुका है, परंतु इसमें समानुकूल परिवर्तन नहीं आये हैं।
2. टूल की अंकन पद्धति सिमित है जो हाँ या ना पर आधारित है।
3. टूल का प्रयोग करने में।

इस प्रकार के अन्य टूल में FACP (Functional Assessment Checklist for Programming), BASIC MR (Behavioural Assessment Scale for Indian Children with Mental Retardation) आदि भी हैं।

7.5 विशिष्ट अधिगम विकार (Specific Learning Disorders)

विशिष्ट अधिगम विकार (Specific Learning Disorders): अधिगम विकार एक व्यापक पद है जिसके अंतर्गत वे सभी विकार शामिल हैं जिनके कारण बच्चे की बुद्धि लब्धि और उसके शैक्षिक निष्पादन में गंभीर अंतर देखने को मिलता है और यदि कोई अन्य विकार इसका कारण न हो। अधिगम विकृतियों में भी अलग अलग प्रकार की विकृतियाँ यथा बच्चे को पढ़ने में कठिनाई, बच्चे को लिखने में कठनाई, बच्चे को गणितीय गणनाओं में कठिनाई आदि हो सकती है।

DSM V के अनुसार अधिगम अक्षमता का नैदानिक मानदंड निम्नांकित है:

A. अधिगम में कठिनाई और शैक्षिक कौशलों के प्रयोग में कठिनाई जो कम से कम पिछले छह महीनों से निम्नलिखित लक्षणों में में कम से कम एक अवश्य दिखाई देता हो:

1. **अशुद्ध, धीमा एवं प्रयास पूर्ण शब्दों को पढ़ना** (जैसे शब्दों को तेज आवाज में पढ़ना, पढ़ने में गलती, धीमी गति से पढ़ना, हिचकिचाते हुए पढ़ना शब्दों को बोलने में कठिनाई आदि,
2. **पढ़े गए शब्दों / वाक्यों का अर्थ समझने में कठिनाई** (जैसे शब्दों एवं वाक्यों को शुद्धता से पढ़ना परन्तु उनका क्रम, सम्बन्ध, अर्थ और उनका भाव समझने में कठिनाई,
3. **उच्चारण सम्बन्धी समस्या:** (जैसे कोई शब्द जोड़ देना अथवा कोई शब्द छोड़ देना अथवा पढते वक्त स्वर को व्यंजन एवं व्यंजन को स्वर वर्णों से प्रतिस्थापित कर देना आदि),
4. **लिखित अभिव्यक्ति में कठिनाई** जैसे अत्यधिक व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ, विभिन्न भाव चिन्ह सम्बन्धी अशुद्धियाँ, बेतरतीब पाराग्राफ, लिखे गए पाराग्राफ में विचारों की स्पष्टता का अभाव
5. **अंको के प्रयोग में कठिनाई, उन्हें समझने में, आंकिक गणना में कठिनाई** (जैसे अंकों की अल्प समझ, उनका परमं, उनके आपसी सम्बन्ध, आदि की अल्प समझ, अंकों की गणना करने मेंअपने सहपाठियों के विपरीत स्मृति की बजाये बार बार उँगलियों का प्रयोग करना, गणितीय गणनाओं को बीच में भूल जाना और प्रक्रिया परिवर्तित कर देना आदि)
6. **गणितीय तार्किक क्षमता में कठिनाई** गणितीय समस्याओं को हल करने के लिए गणितीय संकल्पनाओं, तथ्यों एवं प्रक्रियाओं के प्रयोग में गंभीर कठिनाई,

B. प्रभावित शैक्षिक कौशल उस आयु के बालकों से अपेक्षित स्तर से सार्थक रूप से कम होता है एवं बालक के शैक्षिक निष्पादन, व्यावसायिक निष्पादन, दैनिक कार्य कलाप को गंभीर रूप से प्रभावित करता है जिसे व्यक्तिगत रूप से प्रशासित विभिन्न मानक परीक्षणों द्वारा निर्धारित किया जा सकता है १७ वर्ष और उससे के व्यक्तियों के लिए मानक उपकरण को उनके इतिहास से प्रतिस्थापित किया जा सकता है

C. अधिगम कठिनाईओं का आरम्भ विद्यालय जाने की आयु में तो हो जाता है परन्तु उसके पूरी तरह परिलक्षित होने में समय लगता है जब तक कि शैक्षिक कौशलों के अपेक्षा उसके सीमित क्षमताओं से ज्यादा न हो जाये जैसे सीमित समय परीक्षणों में, सीमित समय में लंबे जटिल रिपोर्ट लिखने और पढ़ने में एवं कठिन शैक्षिक कार्यों में)

D. इस अधिगम अक्षमता को ज्यादा स्पष्ट रूप से बौद्धिक अक्षमता के रूप में, किसी प्रकार कि दृष्टी अक्षमता के रूप में, श्रवण क्षमता ह्रास के रूप में या किसी अन्य मानसिक अथवा स्नायविक विकार के रूप में,मनोसामाजिक ह्रास के रूप में, अनुदेशानाशानात्मक भाषा की कमी के रूप में, या अनुपयुक्त शिक्षा के रूप में परिभाषित किया जाना संभव न हो

7.6 विशिष्ट अधिगम अक्षमता की स्क्रीनिंग एवं परीक्षण

आरंभिक चरण में अधिगम अक्षमता की पहचान करना अत्यंत कठिन है क्योंकि इसके लिए वास्तविक व्यवहार एवं अपेक्षित व्यवहार में महत्वपूर्ण अंतर होना आवश्यक है | अधिगम अक्षमता की पहचान जितनी देर से होगी उसका निदान उतना ही कठिन होता जाता है तथा किशोरवस्था में

गलत प्रवृत्तियों का शिकार होने की उनकी सम्भावना बढ़ जाती है | इसकी पचान प्रारंभिक स्तर पर बालकों के व्यवहार के द्वारा की जाती है | लगभग पूरा दिन छात्रों के साथ व्यतीत कर के उसका निरीक्षण करने के कारण शिक्षक अधिगम अक्षमता की पहचान के लिए ज्यादा उपयुक्त होता है | पूर्व चिन्हित अक्षमताओं के आधार पर शिक्षक छात्र की सम्भाव्य अधिगम अक्षमता की जानकारी प्राप्त कर पाता है |

अधिगम अक्षम बालक द्वारा प्रदर्शित लक्षण:

अधिगम अक्षमता एक प्रकार विकलांगता है , जिसमे कई श्रेणी, तीव्रता तथा क्षेत्र वाली कठिनाइयाँ सम्मिलित होती हैं। ये कठिनाइयाँ स्वतंत्र रूप से या समूह में किसी अधिगम अक्षम बालक में प्रकट हो सकती हैं। अधिगम अक्षम बालक में निम्नलिखित व्यवहारगत लक्षण पाए जाते हैं, जिन्हें समझ कर इस प्रकार के बालकों की शीघ्र पहचान की जा सकती है :

- **बुद्धि** – सामान्यत: अधिगम अक्षम छात्र सामान्य या सामान्य से अधिक बौद्धिक स्तर के हो सकते हैं तथा कुछ विशेष प्रतिभा के भी होते हैं।
- **प्रत्यक्षीकरण एवं गमक क्षमता** – हम जानते हैं कि प्रत्यक्षीकरण का संबंध अर्थपूर्ण संवेदना से है। प्राय: अधिगम अक्षम बालकों को प्रत्यक्षीकरण में समस्या उत्पन्न होती है। फलस्वरूप वे विभिन्न ध्वनियों एवं दृश्यों में विभेदीकरण और उद्दीपकों को उसके नियत स्थान पर रख कर प्रत्यक्षीकरण में कठिनाई महसूस करते हैं । ऐसे बालक भिन्न-भिन्न उद्दीपकों पर भी समान प्रतिक्रिया दे सकते हैं। ऐसे बालकों में दीर्घकाल एवं अकाल्पनिक स्मृति सम्बन्धी समस्याएं होती हैं , जो धारणा एवं प्रत्यास्मरण आधारित होती है। अन्य बालकों की अपेक्षा समायोजन, वर्गीकरण एवं व्यवस्थित करने का कौशल भी उनमे कम होता है। अधिगम अक्षमता के कारण इनकी गामक क्षमताएं प्रभावित होती है |
- **पराबौद्धिक (Metacognition) कौशल -** पराबौद्धिक कौशल कार्य के सफल कार्यान्वन को सुनिश्चित करता है । पराबौद्धिक कौशल के अंतर्गत किसी भी कार्य को प्रभावकारी ढंग से करने के लिए प्रयुक्त होने वाले कौशल, कार्य योजना तथा अवश्य संसाधन का ज्ञान आवश्यक है। इसमें स्व-नियंत्रित तंत्रों की आवश्यकता होती है। इनमें व्यवसायिक गतिविधियां, कार्यरत योजना के प्रभाव का मूल्यांकन, प्रयत्नों के परिणाम का परीक्षण तथा समस्याओं का निराकरण सम्मिलित है।
- **व्यवहारगत एवं भवनात्मक गुण-** अधिगम अक्षम बालक या तो अतिक्रियाशील होते हैं या कम क्रियाशील होते हैं। ऐसे बालकों के व्यवहार में प्राय: शीघ्र विचलन, अल्प ध्यान केन्द्रीयकरण, स्मृतिदोष, अतिसंवेग, अतितीव्र एवं असामान्य भावपूर्ण प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है। ऐसे बालकों को सामाजिक समायोजन में अधिक कठिनाई होती है,

क्योंकि प्राय: संवेगों के प्रभाव में वे सामाजिक मूल्यों एवं सीमाओं का उल्लंघन कर जाते हैं । ऐसे बालक स्वयं के व्यवहार के प्रभाव का आंकलन नहीं कर पाते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनमें समुचित समझ एवं अन्य भावनात्मक बोध का अभाव होता है । परिणामस्वरूप उन्हें दूसरों सदैव नकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त होती है और समाज में वे अवांछित हो जाते है | दूसरों से प्रभावपूर्ण अंत:क्रिया में अक्षमता के कारण उनमे आत्मसम्मान का अभाव हो सकता है । ऐसे बालकों के दुर्व्यवहार का कारण उनका अवसाद व हताशा है , जो अधिगम अक्षमजन्य होती है । अधिकांश शोध आंकड़े ये प्रदर्शित करते हैं कि ऐसे बालकों के भी उदाहरण मिलते हैं, जो अपने वर्ग, विद्यालय और समूह में लोकप्रिय हुए हैं|

- **पाठ्य अधिगम क्षमता -** अधिगम अक्षम बालक प्राय: अपने वर्ग के अन्य छात्रों से पठन-पाठन, अर्थ-बोध, भाषाप्रवाह, एवं उच्चारण आदि क्षेत्रों में अपेक्षाकृत पीछे छूट जाते हैं । सामान्यत: ऐसे छात्र को ध्वनियों, वर्णों एवं संख्याओं के विपरीत अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। यह समस्याएं बाद में श्रवण एवं वाचन संबंधी समस्याओं को और गंभीर बना देती है
- **संप्रेषणीय क्षमता -** अधिगम अक्षम बालकों को ध्वनियों को उच्चारित करने में कठिनाई का समान अकारण पड़ता है । ऐसे बालक ध्वनियों की पुनरावृत्ति एवं हकलाहट से ग्रसित होते हैं । इन्हें भाषा के वास्तविक स्वरुप को सामाजिक प्रयोग हेतु रूपांतरित करने में समस्या होती है । यह समस्या अधिगम सम्प्रेषण हेतु उचित शब्दों के चयन के रूप में प्रदर्शित होती है।
- **स्मृति एवं विचारगत क्षमता** – प्राय: ऐसे छात्रों को शब्दों एवं ध्वनियों को, जो शब्दों का निर्माण कराती हैंयाद करने में कठिनाई हो सकती है । इन्हें अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्तर पर शब्दों का अर्थ प्रत्यास्मरण में समस्या होती है । इनकी यह अक्षमता या तो उनके स्मृति दोष के कारण होती है अथवा इनकी दीर्घकालिनक स्मृति सम्बन्धित सूचनाओं के प्रत्यास्मरण संबंधीसमस्याओं का परिणाम हो सकती है।

विशिष्ट शैक्षिक उपलब्धि संबंधित विशेषताएं - ऐसे बालक अलग अलग विशिष्ट शैक्षिक क्षेत्रों में उपलब्धि संबंधीकमी प्रदर्शित करते हैं। इन विद्यालय संबंधीविशिष्ट उपलब्धियों में अवरोध निम्न रूपों में दिखाई देते है।

लेखन पाठन संबंधी

- पठन संबंधीअक्षमताओं के कारण पठन कार्य में आत्म विश्वास की कमी प्रदर्शित करते है।
- पठन संबंधीकार्यो के दौरान शारीरिक असहजता प्रदर्शित करते है।
- कुछ शब्दों को स्वयं ही छोड़ते और जोड़ते चले जाते हैं।

- वैकल्पिक शब्दों का प्रयोग करते हैं।
- विपरीतार्थक शब्दों का प्रयरोग करते हैं।
- बोध एवं प्रवाह संबंधीसमस्याएं प्रदर्शित होती है।

गणितीय अधिगम संबंधी

- गामक अक्षमता, संख्याओंसे लेखन संबंधीकमी प्रदर्शित होती है।
- बहुचरणीय गणितीय प्रश्नों के हल करने मे समस्या होती है।
- भाषा में प्रयुक्त बहुअर्थी शब्दों के प्रासंगिक अर्थबोध में समस्या आती है।
- शब्दों एवं चिन्हों से संबंधितअमूर्त तार्किक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

वर्टस कलाटा एवं टॉपकिन्स (2007) ने अधिगम अक्षम बालकों के पहचान हेतु दो विधियों का वर्णन किया है, जो निम्न है -

विभेद विधि - अधिगम अक्षम बालकों की पहचान के लिए उनकी अभिवृत्तियों में अपेक्षित अन्तर को सुनिश्चित करने की विधि अपनाई जाती है। सामान्यत: यह विधि अमेरिका में अपनाई जाती है, जिनके अन्तर्गत संघीय एवं प्रान्तीय विधायिका संभावित अधिगम अक्षम बालकों की पहचान एवं मूल्यांकन हेतु बल देती है। इसके अन्तर्गत विद्यालय मे वर्ग शिक्षक, मनोवैज्ञानिक एवं चिकित्सक आदि लोगों का एक मूल्यांकन दल होना चाहिए। यह दल बालकों की बौद्धिक योग्यता एवं उम्र के अनुरूप उनकी शैक्षिक उपलब्धियों का मूल्यांकन करता है। यदि बालकों में लेखन, श्रेवण, मौखिक अभिव्यक्ति, भाषायी प्रक्रिया, प्रारंभिक पठन कौशल, पठन बोध, गणितीय तर्क व गणना आदि में बौद्धिक योग्यता और उपलब्धि संबंधी अन्तर पाया जाता है। किन्तु यदि बालक में पर्यावरण, संस्कृति, आर्थिक परिस्थिति अथवा किसी अन्य विकलांगता के कारण अन्तर पाया जाता है, तो ऐसे बालकों को अधिगम अक्षम नहहीं माना जाता है। विविध क्षेत्रों में पता लगाने के लिए विविध जांच पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। जब बालक शैक्षिक और व्यवहारिक अपेक्षाओं के अनुरूप परिणाम नहीं देते तब ऐसे बालक, शिक्षके के ध्यान के केन्द्र में आ जाता है। जिन्हें उनके अभिभावकों की स्वीकृति के उपरान्त एक जांच प्रक्रिया में डाल दिया जाता है। शिक्षकों द्वारा निर्मित जांच प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम आधारित विधि द्वारा उनके शैक्षिक उपलब्धि की सीमा का निर्धारण किया जाता है। मानक बौद्धिक जांच द्वारा किसी बालक की बौद्धिक योग्यता का पता लगाया जाता है। जबकि विशेष क्षेत्र में उनके प्रदर्शन के परीक्षण हेतु प्राप्त निष्कष का संदर्भित में प्रयोग किया जाता है।

व्यवधान प्रतिक्रिया विधि - विभेद द्वारा अधिगम अक्षम बालकों की पहचान में कभी कभी समस्या हो सकती है। इसलिए उनके पहचान के लिए व्यवधान प्रतिक्रिया विधि का प्रयोग किया

जाता है। प्रारंभिक चरण में अच्छे निदेशन के अभाव में बालक को ही हो रही कठिनाइ का पता लगाना होता है। इसके अंतर्गत शिक्षक वैज्ञानिक रूप में निदानात्मक विधियों का प्रयोग कर बालको को पढ़ाते है। यदि प्रारंभिक प्रयासों के उपरांत बालक अपेक्षित व्यवहार का प्रदर्शन नहीं कर पाते हैं तो उन्हें सम्पूर्ण मूल्यांकन के लिए भेज दिया जाता है।

इससे पूर्व में एकत्रित सूचनाओं का प्रयोग किया जाता है। इस जांच प्रक्रिया के चार प्रमुख घटक है -

- शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में बालकों की व्याख्या
- शैक्षिक समसयाओं एवं क्षमताओं का यथासंभव सही एवं विशिष्ट वर्णन
- त्रुटिपूर्ण शेक्षिक उपलब्धियों में अनुदेशन एवं वातावरण के प्रभाव को जानने के लिए मानक विधियों का प्रयोग
- अभिलेखन

अधिगम अक्षमता की पहचान में समास्याएं

यद्यपि उपरोक्त तथा अन्य विधियों के अलावा निरीक्षण, शिक्षक प्रतिपुष्टि , अभिभावक प्रतिपुष्टि, गृहकार्य की जाँच आदि भी अधिगम अक्षमता की जाँच में प्रभावी होते हैं परन्तु द्वारा अधिगम अक्षम बालकों की पहचान एक दुष्कर कार्य है जिसमे निम्न लिखित समस्याएं आ सकती हैं:

- अधिगम अक्षमता की परिभाषा में भ्रम एवं एकरूपता की कमी
- योग्यता एवं उपलब्धि में अन्तर को सुनिश्चित करने वाले मानकों में एकरूपता का अभाव
- शिक्षण के प्रारंभिक चरण में अनुप्रयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग
- अधिगम अक्षम बालकों एवं मन्द गति से सीखने वाले बालकों के मध्य भ्रम की स्थिति
- जांच विधियों के गलत अनुप्रयोग से प्राप्त अवैध परिणाम

अतः परीक्षण कर्ता से अपेक्षित है कि अधिगम अक्षमता का आकलन करने से पूर्व सभी पहलुओं पर विचार करें।

सम्प्रेषण विकृतियाँ (Communication Disorders): सम्प्रेषण विकृतियाँ व्यक्ति की सम्प्रेषण क्षमता में कमी को दर्शाती हैं DSM V के अनुसार सम्प्रेषण विकृतियों के निम्नांकित प्रकार रखे गये हैं:

1. भाषाई विकृतियाँ (Language Disorders)
2. वाणी स्वर विकृतियाँ (Speech Sound Disorders)
3. बचपन में परिलक्षित भाषा प्रवाह विकृतियाँ (Childhood Onset Communication Disorders)

4. सामाजिक सम्प्रेषण विकार (Social Pragmatic Communication Disorders)
5. आनिर्दिष्ट सम्प्रेषण विकार (Unspecified Communication Disorders)

7.7 सम्प्रेषण विकृतियाँ (Communication Disorders) उनकी स्क्रीनिंग एवं परीक्षण

संप्रेषण विकार का अर्थ भाषा, वाणी एवं संप्रेषणकी न्यूनता /कमी से है । वाणी, आवाज़ की अभिव्यक्ति पूर्ण उत्पत्ति है जिसमें व्यक्ति का अनुमान (Articulation) प्रवाह, स्वर एवं अनुक्रिया की गुणवत्ता समाहित है । भाषा में स्वरुप, कार्य और पारंपरिक संकेतों का अनुप्रयोग शामिल हैं । यथा बोले गए शब्द, संकेत भाषा, लिखित शब्द, तस्वीर आदि जो कि नियमबद्ध तरीके से संप्रेषण हेतु प्रयोग किया जाता है । संप्रेषण का तात्पर्य प्रत्येक शाब्दिक अथवा अशाब्दिक उस व्यवहार से है जो चाहे ऐच्छिक या अनेछिक (intentional or unintentional) जो किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार, विचारों अथवा अभिवृत्तियों को वाणी, भाषा और संप्रेषण का परीक्षण करते समय व्यक्ति का सांस्कृतिक एवं भाषिक संदर्भ, विशेषकर उन व्यक्तियों के संदर्भ में जो द्विभाषिक वातावरण में पले बढे हैं) का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए।

सम्प्रेषण विकृतियों में भाषाई विकृतियाँ (Language Disorders), वाणी स्वर विकृतियाँ (Speech Sound Disorders), सामाजिक सम्प्रेषण विकृतियाँ (Social (Pragmatic) Communication Disorder) एवं बाल्यावस्था में परलक्षित वाणी प्रवाह विकृतियाँ (हकलाना) (Childhood onset Fluency Disorder, Suturing) शामिल हैं जिनमें प्रथम तीन के लक्षण क्रमशः भाषाके विकास एवं प्रयोग में न्यूनता, वाणी न्यूनता एवं सामाजिक सम्प्रेषण में न्यूनता है । बाल्यावस्था में परिलक्षित वाणी प्रवाह विकृतियों के लक्षणों में वाणी के सामान्य प्रवाह में व्यवधान, वाणी की गमक उत्पत्ति में व्यवधान, मात्राओं एवं स्वर की पुनरावृत्ति, स्वर या व्यंजन को लंबा खींचना, टूटे फूटे शब्द बोलना, बोलने में व्यवधान अथवा शारीरिक तनाव के साथ बातचीत करना शामिल है । अन्य स्नायविक विकासात्मक विकृतियों की तरह ही सम्प्रेषण विकृतियाँ विकासात्मक अवधि के आरम्भ में ही शुरू हो जाती हैं और जीवन पर्यंत व्यक्ति को कार्यात्मक क्षति के रूप में प्रभावित कर सकती हैं ।

संप्रेषण विकृतियों के नैदानिक वर्ग में निम्नलिखित संप्रेषण विकृतियाँ शामिल हैं :

i. भाषा विकृति
ii. स्वर एवं वाणी विकृति
iii. बाल्यावस्था में उत्पन्न प्रवाह (हकलाना)विकृति
iv. सामाजिक संप्रेषण विकार
v. अनिर्धारित भाषा/ संप्रेषण विकृति

भाषा विकृति: भाषा सीखने एवं उसके विभिन्न माध्यमों में उसके प्रयोग में स्थायी कठिनाई बोलने, लिखने (सांकेतिक भाषा/अन्य) जो कि समझने या भाषा उत्पन्न करने की क्षमता में कमी के कारण होती है , जिसमें निम्नांकित शामिल हैं:-

i. सीमित शब्दावली (शब्द ज्ञान एवं प्रयोग)
ii. सीमित वाक्य संरचना (व्याकरण एवं मोर्फोलोजी के नियमानुसार शब्दों को उपयुक्त क्रम में रखने की क्षमता)
iii. Discourse की क्षति (शब्द क्षमता का प्रयोग एवं बातचीत के दौरान वाक्यों को एक दूसरे से जोड़कर किसी विषय सामाजिक सहमति, शैक्षिक उपलब्धि या व्यावसायिक निष्पादन या घटना की व्याख्या करना।

भाषा विकार का प्रमुख लक्षण है समझने में या शब्द उत्पन्न करने में, वाक्य संरचना में, बातचीत में कमी के कारण भाषा सीखने और उसके प्रयोग में कठिनाई। भाषायी क्षति/क्षति विकार बोल का संप्रेषण या सांकेतिक भाषा में कमी के रूप में प्रकट होते हैं। भाषा का अधिगम एवं प्रयोग भाषा के ग्रहणशील एवं अभिव्यक्ति पूर्ण कौशलों पर निर्भर करते हैं। भाषा विकार मुख्यत: शब्दावली और व्याकरण को प्रभावित करते हैं। भाषायी विकृतियों के नेदान्तिक लक्षणों हेतु व्यक्ति का इतिहास, प्रत्यक्ष क्लिनिकल प्रेक्षण एवं निम्न अन्य सन्दर्भों से प्राप्त सूचनाओं (घर, विद्यालय, कार्यस्थल) के समन्वित अध्ययन का प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि उसकी गम्भीरता का पता चल सकें।

स्वर एवं वाणी विकार (Speech and Sound Disorder):

DSM V के अनुसार

- वाणी आवाज उत्पन्न करने में लगातार समस्या जो व्यक्ति के द्वारा कही गयी बातों को समझना कठिन बनाता है अथवा उसे सन्देश के शाब्दिक सम्प्रेषण से रोकता है।
- इस व्यवधान के कारण प्रभावी सम्प्रेषण सीमित हो जाता है और व्यक्ति की सामाजिक भागीदारी, शैक्षिक उपलब्धि, एवं व्यक्तिगत अथवा सामूहिक व्यावसायिक निष्पादन को प्रभावित करता है।
- इसके लक्षण आरंभिक विक्सत्मक अवधी में प्रकट हो जाते हैं।
- इन लक्षणों का कारण कोई जन्म जात विकार यथा प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात, कटे होंठ, बधिरता, मस्तिष्कीय आघात या कोई अन्य स्नायविक समस्या न हो।

बाल्यावस्था में परलक्षित वाणी प्रवाह विकृतियाँ (हकलाना) (Childhood onset Fluency Disorder, Suturing): DSM V के अनुसार,

वाणी के सामान्य प्रवाह में व्यवधान और वाणी का अनुपयुक्त समय पैटर्न जो व्यक्ति की आयु, एवं भाषा कौशल के अनुपयुक्त हो एवं अपेक्षाकृत स्थिर हो एवं जो निम्नांकित में से किसी एक या अधिक के द्वारा परिलक्षित होता है:

- वाणी की पुनरावृति
- स्वर या व्यंजन वर्णों को लंबा खींचना
- टूटे शब्द
- बोलने में श्रव्य या अश्रव्य व्यवधान
- कठिन शब्दों का आसान शब्दों से प्रतिस्थापन
- बोलते वक्त अत्यधिक शारीरिक अकडन
- एक-अक्षर शब्दों की लंबी पुनरावृति

स्वर एवं वाणी विकार (Speech and Sound Disorder) की स्क्रीनिंग एवं परीक्षण:

- प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा
- माता पिता एवं सहपाठियों का फीड बैक
- परिवार साक्षात्कार
- श्रवण, दृश्य एवं संज्ञानात्मक अवस्था का आकलन
- केस हिस्ट्री एवं पारिवारिक हिस्ट्री

7.8 अन्य सम्बंधित विकार : ऑटिज्म अथवा ऑटिस्टिक स्पेक्ट्रम विकृतियाँ

DSM V के अनुसार ऑटिस्टिक स्पेक्ट्रम विकृतियों के लक्षण निम्नांकित हैं:

1. विभिन्न सन्दर्भों में सामाजिक संप्रेषण एवं सामाजिक अंत:क्रिया में स्थायी कमी जो निम्नांकित क्रियाओं के द्वारा प्रदर्शित होती है :

    - सामाजिक भावनात्मक वैचारिक संप्रेषण में कठिनाई।
    - अशाब्दिक संप्रेषण में कठिनाई तथा शाब्दिक एवं अशाब्दिक संप्रेषण में एकीकरण का अभाव, मुख मुद्रा द्वारा अभिव्यक्ति का सर्वथा अभाव।

- विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों को विकसित करने, उन्हें बनाए रखने और समझने में कठिनाई यथा विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन की समस्या , मैत्रीपूर्ण व्यवहार विकसित करने में कठिनाई।

2**. सीमित, पुनरावृत व्यवहारिक, पैटर्न,रूचियाँ एवं क्रियाएँ जो निम्नांकित क्रियाओं के द्वारा प्रदर्शित होती है:**

- पुनरावृत गमक क्रियाए, शब्दों पुनरावृत्ति, या विभिन्न वस्तुओं की पुनरावृत्ति (जैसे खिलोनों को बार-बार एक क्रम विशेष में रखना, शब्द विशेष को बार-बार दोहराना आदि।
- समान व्यवहार का हठ यथा एक निश्चित दिनचर्या का कठोरता से पालन, दृढ वैचारिक पैटर्न, एक ही वस्तु या एक ही क्रिया पर बार-बार जोर देना।
- अत्यंत सीमित एवं स्थिर रूचि जिसकी तीव्रता असामान्य हो, असामान्य वस्तुओं के साथ दृढ जुड़ाव।
- अत्यधिक/अवयव/सक्रियता/अनुक्रिया संवेदनाओं के प्रति।

3. इसके लक्षण आंशिक विकासात्मक अवस्था (जन्म से 3से तीन वर्ष) की में प्रकट होने लगते हैं।

4. परिलक्षित लक्षणों के कारण चिकित्सीय दृष्टि से महत्वपूर्ण सामाजिक व्यवसायिक क्रियाओं में कमी।

5. इन समस्याओं असमानताओं का कारण बौद्धिक अक्षमता न हो कई बार व्यक्ति में बौद्धिक अक्षमता एवं ऑटिस्टिक स्पेक्ट्रम विकृति आदि को साथ पाए जा सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में उनका उल्लेख भी आवश्यक है।

7.9 अन्य सम्बंधित विकार : ध्यान केन्द्रण एवं अति सक्रियता विकार (Attention Deficit and Hyperactivity Disorder)

ध्यान केन्द्रण एवं अति सक्रियता विकार (Attention Deficit and Hyperactivity Disorder)

ध्यान केन्द्रण एवं अति सक्रियता विकार एक विकासात्मक विकार है जो व्यक्ति के विकास एवं उसकी प्रकार्यक्षमता को प्रभावित करता है। इसकी विशेषताओं में तीन मुख्य हैं-

1. ध्यान केन्द्रण की कमी

2. आवेगी व्यवहार
3. अति सक्रियता

यह विकार सिर्फ ध्यान केन्द्रण विकार भी हो सकता है या ध्यान केन्द्रण विकार के साथ अति सक्रियता भी हो सकती है।

DSM V के अनुसार निम्नांकित 1 और/या 2 में विभिन्न लक्षणों में से कम से कम छ: परिलक्षित होने चाहिए :

1) ध्यान अकेन्द्रण

a) किसी विषय पर गहरा ध्यान केंद्रित न कर पाना , कार्यों के दौरान छोटी-छोटी गलतियां करना।
b) किसी कार्य पर ध्यान केंद्रित कर पाने में कठिनाई।
c) प्रत्यक्ष बोले गए निर्देशों को न सुनकर (ऐसा प्रतीत होना जैसे व्यक्ति मानसिक रूप से कहीं और हो)।
d) विभिन्न क्रियाओं को क्रमिक संगठन में कठिनाई।
e) दिए गए निर्देशों का पालन न करना, क्रमबद्ध कार्यों के प्रबंधन में कठिनाई, समय पर काम पूरा न करना, समय प्रबंधन का अभाव।
f) गहरा ध्यान चाहने वाले कार्यों की उपेक्षा करना/नापसंद करना।
g) विभिन्न कार्यों के लिए आवश्यक सामग्रियों का संकलन भूल जाना/यत्र तत्र रखकर भूल जाना।
h) आसानी से किसी बाह्य उद्दीपक द्वारा चेतना कार्य से ध्यान भंग।
i) विभिन्न दैनिक क्रियाओं में भूलने की आदत।

2) अति सक्रियता एवं आवेगी व्यवहार:

a) हाथ पैर हिलाते रहना, उंगलियां मरोडते रहना, पूरा शरीर हिलाना।
b) जब जब अपनी सीट पर बैठना यह अपेक्षित हो , वहाँ पर अपनी सीट से भाग जाना।
c) आराम हीनता।
d) शांतिपूर्वक नियमों के अनुसर किसी खेल में भाग न लेना।
e) हमेशा कहीं जाने की जल्दी प्रतीत होना।
f) बातूनी
g) कई बार प्रश्न पूरा होने से पहले ही बीच में बोल पडना (उत्तर दे देना)।
h) बातचीत के दौरान अपनी बात का इंतजार न करना, सामूहिक कार्यों के दौरान हस्तक्षेप ।
i) बहुत से ध्यान अकेंद्रण सम्बन्धी व्यवहार।

7.10 सारांश

विकासात्मक विकृतियों (Developmental Disorders) का सामान्य अर्थ है वे विकृतियाँ जो विकासात्मक अवस्था के दौरान परिलक्षित हो जाती हैं। इस प्रकार कि विकृतियाँ प्रायः आरंभिक आयु में ही प्रकट हो जाती है। अक्सर बच्चेके विद्यालय जाने से पहले ही सामने आ जाती है। इन विकृतियों की विशेषताओं में मुख्यतः विकासात्मक न्यूनता (Developmental Deficits) है जो कि व्यक्तिगत , सामाजिक, शैक्षिक या व्यावसायिक क्षति उत्पन्न करती हैं। इन कमियां अत्यंत सीमित अधिगम न्यूनता एवं कार्यात्मकता में सीमित कमी से लेकर सामाजिक कौशलों एवं बुद्धिमता की व्यापक क्षति तक हो सकती हैं। **डी एस एम IV में विकासात्मक विकृतियों को व्यापक विकासात्मक विकृतियों (Pervasive Developmental Disorders) के नाम से जाना जाता था**। जैसा कि आपको विदित है कि डी एस एम की आवधिक रूप से समीक्षा की जाती है और प्रायोगिक अनुभवों के आधार पर उपयुक्त परिवर्तन किया जाता है। **डी एस एम का नवीनतम संस्करण है डी एस एम V, जो वर्ष 2013 में प्रकाशित हुआ है। इसमें विकासात्मक विकृतियों Developmental Disorders) को स्नायविक विकासात्मक विकृतियों (Neurodevelopmental Disorders) का नाम दिया गया है और इस श्रेणी में निम्नलिखित विकृतियों को शामिल किया गया है:**बौद्धिक अक्षमता (Intellectual Disabilities), सम्प्रेषण विकृति (Communication Disorders), ऑटिस्टिक स्पेक्ट्रम विकृतियाँ (Autistic Spectrum Disorders), अवधान न्यूनता / अतिसक्रियता विकार (Attention Deficit & Hyperactivity Disorders), विशिष्ट अधिगम विकृतियाँ (Specific Learning Disorders) एवं गामक विकृतियाँ (Motor Disorders)

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ / अन्य अध्ययन

- हेवार्ड डब्ल्यू.जे., (2006), विषिष्ट बालक, काउंसिल आफ एक्सेप्सनल चिल्ड्रेन (CEC) से प्रकाशित।
- ल्यूकेसान एवं अन्य, (1992), मेंटल रिटार्डेशन, क्लासिफिकेषन एंड सिस्टम आफ सपोर्ट (10वीं मैनुअल) AAIDD से प्रकाशित।
- श्लेलाक एवं अन्य, (2002), मेंटल रिटार्डेशन, क्लासिफिकेशन एंड सिस्टम आफ सपोर्ट (11वीं मैनुअल) AAIDD से प्रकाशित।
- डिसेविलिटी स्टेटस आफ इंडिया (2012) भारतीय पुनर्वास परिषद् से प्रकाशित।
- यूनेस्को, (2001), अंडरस्टैडिंग एंड रेस्पाडिंग टू चाइल्ड नीड्स इन इनक्लूसिव क्लासरूम, यूनेस्को से प्रकाशित।
- मंगल एस.के., (2007), विशिष्ट बालक, प्रेंटिस हाल आफ इंडिया से प्रकाशित।

- हालाहन डी.पी. एंड काफ मैन जे.एम., (2006), एक्सेप्सनल चिल्ड्रेन इंट्रोडक्शन टू स्पेशल एजुकेशन, पार्सन एजुकेशन से प्रकाशित।
- **Berk,L. (2013) Child Development: A Life Span Approach, PHI Learning, New Delhi, India**
- Diagnostic and Statistical Mannual, APA, IV TR and Vth

7.12 अभ्यास प्रश्न

- बौद्धिक विकासात्मक विकृति के स्क्रीनिंग एवं परीक्षण का वर्णन करें।
- विशिष्ट अधिगम विकृतियों के स्क्रीनिंग एवं परीक्षण का वर्णन करें।
- सम्प्रेषण विकारों के स्क्रीनिंग एवं परीक्षण का वर्णन करें।
- विभिन्न विकासात्मक विकृतियों का वर्णन करें।

इकाई – 8

किशोरावस्था की विशेषताएँ, शारीरिक विकास एवं किशोरावस्था में समायोजन

Charecteristics of Adolescence, Physical Development and Adjustment in Adolescence

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 किशोरावस्था का अर्थ एवं परिभाषा

8.4 किशोरावस्था की आयु

8.5 किशोरावस्था की विशेषताएँ

8.5.1 संवेगिक अस्थिरता

8.5.2 समस्याओं का बाहुल्यता

8.5.3 किशोरावस्था संक्रामण की अवस्था

8.5.4 किशोरावस्था काम जागरण की अवस्था

8.5.5 किशोरावस्था प्रतिबल एवं तूफान की अवस्था

8.5.6 किशोरावस्था परिवर्तन की अवस्था

8.5.7 किशोरावस्था शैशवावस्था की पुनरावृति

8.5.8 किशोरावस्था में कल्पना की बाहुल्यता

8.5.9 किशोरावस्था विकसित सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था

8.5.10 किशोरावस्था बौद्धिक विकास की अवस्था

8.6 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

8.7 समायोजन अर्थ एवं परिभाषा

8.8 समायोजन की प्रक्रिया

8.9 समायोजन के क्षेत्र

8.9.1 पारिवारिक या गृह समायोजन

8.9.2 शैक्षिक समायोजन

8.9.3 स्वास्थ्य समायोजन

8.9.4 संवेगात्मक समायोजन

8.9.5 सामाजिक समायोजन

8.9.6 धार्मिक समायोजन

8.10 समायोजन के प्रकार

8.10.1 सृजनात्मक समायोजन

8.10.2 स्थानापन्न समायोजन

8.10.3 बौद्धिक समायोजन

8.10.4 सुरक्षा युक्ति समायोजन

8.11 सारांश

8.12 शब्दावली

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.1 प्रस्तावना

मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्यावस्था समाप्त होते ही किशोरावस्था शुरू हो जाती है। यह अवस्था युवावस्था अथवा परिपक्वावस्था तक रहती है| यह सतत प्रक्रिया है। इसे बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का संधिकाल कहते हैं इस अवस्था की विडम्बना होती है कि बालक स्वयं को बड़ा समझता है एवं बड़े उन्हें छोटा समझते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि किशोर ही वर्तमान की शक्ति और भावी आशा को प्रस्तुत करता है। किशोरावस्था के महत्व के विषय में हैडो कमिटी रिपोर्ट में कहा गया है ग्यारह या बारह वर्ष कि आयु में बालक की नसों में ज्वार उठाना प्रारम्भ हो जाता है, इसे किशोरावस्था के नाम से जाना जाता है, यदि इस ज्वार को समय रहते उपयोग कर लिया जाये और उसकी शक्ति तथा धारा के साथ-साथ नई यात्रा आरंभ कर दी जाये तो सफलता प्राप्त की जा सकती है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- किशोरावस्था के अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे|
- किशोरावस्था के विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे |
- किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का वर्णन कर सकेंगे |
- समायोजन का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे|

- समायोजन के क्षेत्रो का वर्णन कर सकेंगे |
- समायोजन के प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे |

8.3 किशोरावस्था का अर्थ एवं परिभाषा

किशोरावस्था शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द Adolssecere से हुई है जिसका तात्पर्य परिपक्वता की ओर बढ़ने (To grow to maturity) से होता है। परिपक्वता केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक भी होती है। किशोरावस्था बालक के विकास क्रम में आने वाली वह अवस्था है जिसमें प्रविष्ट करने पर बालक न तो बालक रह जाता है और न ही प्रौढ़। इस अवस्था में प्राय: बाल्यावस्था के सभी शारीरिक तथा मानसिक विशेषताओं का लोप हो जाता है। किशोरावस्था किशोर बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों यथा – शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक में ऐसे क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं जिसके कारण हम को एक नया जन्म की संज्ञा देते हैं। **स्टेनली हाल** के शब्दों में, "किशोरावस्था एक नया जन्म है, क्योकि इसी में उच्चतर एवं श्रेष्ठतर मानवीय विशेषताओं के दर्शन होते हैं |" किशोरावस्था में केवल शारीरिक परिपक्वता ही नहीं बल्कि समस्त प्रकार की परिपक्वता पायी जाती है। किशोरावस्था को संक्रमण की अवस्था माना जाता है। जीसमें व्यक्ति की गणना न तो बालक के रूप में होती है और न तो प्रौढ़ के रूप में। किशोरावस्था में कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों आदि का अनुभव होने लगता है, तथा माता-पिता तथा साथियों के प्रति उनकी अवहिवृतियों में परिवर्तन पाया जाता है। किशोरावास्था महत्वपूर्ण परिवर्तनों की अवस्था होती है, जिसमें पहुँचकर बालक तीव्र गति से विकास की पूर्णता की ओर अग्रसर होने लगता है।

जरशील्ड के अनुसार, "किशोरावस्था का तात्पर्य उस अवस्था से है जिसमें एक विकासशील व्यक्ति बाल्यावस्था की ओर संक्रामण करता या बढ़ता है।"

ब्लेयर, जोन्स एवं **सिम्पसन** के अनुसार, "किशोरावस्था किसी व्यक्ति के जीवन में वह काल है जो बाल्यावस्था में प्रारम्भ होती है और प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भ में समाप्त होती है।" कुछ विद्वानों ने किशोरावस्था के क्रांतिकारी, शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक परिवर्तनों के कारण किशोरावस्था को "जीवन का कठिन काल" माना है। इसलिए स्टेनले हाल महोदय ने इस अवस्था को **महान, तनाव एवं तूफान एवं विरोध की अवस्था**माना है।

किशोरावस्था प्राय: 13 साल से 20-21 वर्ष के बीच की अवस्था को माना जाता है। क्योकि इस अवस्था में बालक न केवल शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से ही परिपक्व होने लगता है बल्कि इसे इसी अवस्था में वैधानिक परिपक्वता भी प्राप्त होती है। केवल बालक का 13 वर्ष का हो जाना ही किशोरावस्था के लिए पर्याप्त नहीं है बल्कि उसके भीतर उत्पन्न होने वाली शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं पर यह आधारित होती है। किशोर तथा किशोरियों के भीतर यौन संबंधित विशेषताएँ और उनसे संबन्धित मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक परिवर्तन इस अवस्था के मुख्य लक्षण माने जाते हैं। वास्तव में यह अवस्था व्यक्ति निर्माण की अवस्था होती है। जैसा कि आसुवेल का कथन है कि हमारी संस्कृति में किशोरावस्था को व्यक्ति की जैव सामाजिक स्थिति का एक संक्रामण काल कहा जा सकता है। इस अवस्था में कर्तव्यों, उत्तरदायित्व, विशेषाधिकारों और अन्य लोगों के साथ सम्बन्धों में बहुत परिवर्तन हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में अपने माता-पिता, मित्रों और दूसरों के प्रति मनोवृतियों का परिवर्त्तित हो जाना अनिवार्य हो जाता है।

बालक का संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है। उनके हृदय स्फूर्ति एवं उमंग से पूर्ण हो जाते है और दुनिया के प्रत्येक वस्तुओं में उन्हे एक नया अर्थ दिखाई देने लगता है। किशोर बालक एवं बालिकाओं की इन अदभुद उमंगों के पीछे उनकी यौन परिपक्वता कार्य करती है। काम की इच्छा जागृत हो जाने के कारण किशोरों को यह अवस्था अत्यंत प्रिय व आनंदमयी लगाने लगती है। इसलिए कोई किशोरावस्था को जीवन की सुनहरी अवस्था, तो कोई इसे जीवन के वसंत के नाम से पुकारता हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कार्लयूंग ने किशोरावस्था को जीवन की दोपहर की संज्ञा दी है और किशोर की तुलना तपते हुए सूरज से की है।

8.4 किशोरावस्था की आयु (Age of adolescence)

किशोरावस्था की आयु वैधानिक दृष्टि से 13 से 21 मानी जाती है। कुछ समय पूर्व तक किशोरावस्था का प्रारम्भ व्यक्ति के लैंगिक रूप से परिपक्व होने पर और अंत 21 वर्ष की आयु में जो आधुनिक संस्कृति में कानून की दृष्टि से प्रौढ़ होने की आयु माना जाता है। अध्ययनों से पता चला है कि बालक में ये परिवर्तन न केवल किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में शुरू होते हैं बल्कि बाद के वर्षों में तीव्र गति से होते हैं और प्रारम्भ के वर्षों का व्यवहार एवं अभिवृतियों में बहुत ही भिन्नता होती है। इसी के परिणामस्वरूप किशोरावस्था को पूर्व एवं उत्तर किशोरावस्था की दो अवधियों में विभक्त किया गया है। पूर्व किशोरावस्था बालक में तब उत्पन्न होती है जब बालक लैंगिक दृष्टि से परिपक्व हो जाता है। इसमें स्त्री-पुरुष व स्त्री-स्त्री एवं पुरुष-पुरुष में सर्वाधिक भिन्नता पायी जाती है। आज लड़की की पूर्व किशोरावस्था की औसत आयु 13 वर्ष एवं लड़कों की 14 वर्ष होती है पूर्व एवं उत्तर किशोरावस्था की विभाजक रेखा 17 वर्ष के आस पास मानी जाती है। लड़कों में परिपक्वता लड़कियों के बाद आती है इसलिए उनकी पूर्व किशोरावस्था कुछ छोटी होती है।

अभ्यास प्रश्न

1. किशोरावस्था को परिभाषित कीजिये।
2. किशोरावस्था की आयु सीमा क्या है?

8.5 किशोरावस्था की विशेषताएँ (Charecteristics of Adolescence)

किशोरावस्था मुख्य रूप से बहुमुखी परिवर्तन की अवस्था है। इस संदर्भ में विंग्स एवं हंट ने लिखा है कि, किशोरावस्था कि विशेषताओं को सर्वोत्तम ढंग से व्यक्त करने वाला एक ही शब्द "परिवर्तन" है। यह परिवर्तन शारीरिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक होता है। उपरोक्त कथन के संदर्भ में किशोरावस्था की विशेषताओं का वर्णन निम्न रूपों में किया जा रहा है –

8.5.1 संवेगिक अस्थिरता (Emotional Instability)

किशोरावस्था में बालकों के व्यवहार में पायी जाने वाली अस्थिरता अपनी चरम पर होती है। किशोर बालक भाव प्रधान होता है। अत: उसके संवेगों में भी अस्थिरता पायी जाती है। यह अस्थिरता उसके व्यवहार, महत्वाकांक्षा व सामाजिक सम्बन्धों इत्यादि में पायी जाती है। **जे० एस० रास** के अनुसार – "किशोर अत्यंत संवेगात्मक जीवन व्यतीत करता है जहां उसके अत्यधिक उत्साह एवं गम्भीर निराशा के निरंतर विकल्प में हम व्यवहार के धनात्मक एवं ऋणात्मक पक्षों के

लिए एक बार पुन: देख सकते हैं।" किशोर के व्यवहार में कभी कभी स्वार्थपरता दिखाई पड़ती है। उत्साहपूर्ण व्यवहार करने के बाद उदासीन हो जाना, आशावादी व्यवहार करने के बाद निराशापूर्ण बातें करना आदि प्रकार की अस्थिरता किशोर के व्यवहार में परिलक्षित होती है। कुछ क्षणों के लिए कल्पना व दिवास्वप्नों के मनोराज में भले ही विचरण कर लेता है किन्तु अंत में उसे जीवन की कठोरताओं, निराशाओं एवं जटिलताओं का सामना करना ही पड़ता है। ऐसी अप्रिय वास्तविकता के संपर्क में आते ही उनकी महत्वाकांक्षाओं का विनाश हो जाता है। अत: किशोर के जीवन में संवेगात्मक अनुभूतियों की होती है संवेगों के वशीभूत होकर वह कोई भी कार्य कर डालता है किन्तु यदि कोई बालक बहुत अधिक भाव-सरिता में प्रवाहित हो जाता है। तो वह भवसागर की कठिनाइयों से बचने के लिए उसी का सहारा लेता है, तो वह पलायनवादी हो जाता है।

यह अस्थिरता अधिकांशत: असुरक्षा के भावना के प्रतिफल है। घर और विद्यालय में उससे जो अधिक की माँग की जाती है उससे उसकी असुरक्षा की भावनाएं तीव्र हो जाती है और बालक में अस्थिरता बढ़ जाती है। बालक की महत्वाकांक्षाओं और उपलब्धियों के बीच बनी दीवार के कारण भी अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है।

8.5.2 समस्याओं का बाहुल्यता (Multiplicity of Problems)

वैसे तो समस्याएँ सभी अवस्थाओं में पायी जाती है किन्तु पूर्व किशोरावस्था में अनगिनत समस्या होती है। किशोर की समस्याएँ अपेक्षाकृत अधिक कठिन एवं गंभीर व जटिल होती है। किशोर बालक-बालिकाओं की अधिकांश समस्याएँ उसके स्वयं से संबन्धित होती है , जिसका संबंध किसी न किसी रूप में उनके प्रेम एवं कामेंच्छा से संबन्धित होती है| किशोर के सम्मुख आने वाली समस्याओं का संबंध जीवन के ऐसे क्षेत्र से होता है जिसका उसे पहले से अनुभव नहीं होता है। पी० एच० लैंडिश के अनुसार "हमारे जमाने में किशोर समाज आत्म निर्भर है, और किशोर किशोरियों स्वतन्त्रतापूर्वक जोड़े बनाते हैं। उन्हें 20 वर्ष के आयु के पूर्व ही इतने निर्णय कर लेने होते हैं जीतने की तीन चार पीढ़ी के पूर्वजों को अपने सम्पूर्ण काल में नहीं करने पड़ते हैं।

नव किशोरों की समस्याएँ उनकी आकृति, स्वास्थ्य, सामाजिक संबंध, विद्यालय कार्य विपरीत लिगियों से सामाजिक संबंध, शिक्षा व्यवस्था, जीवन साथी आदि से संबन्धित होती है। किशोरावस्था ऐसी अवस्था होती है जब किशोर बालक की इच्छाओं और समाज के अपेक्षाओं में घोर-अंतर्द्वंद चलता है। तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि किशोर या किशोरी न तो अपने माता- पिता के कहने में होते हैं और न अपने शिक्षको के बात मानते हैं। वह केवल अपने कल्पनाओं में वशीभूत रहता है। बालक के शारीरिक एवं मानसिक रूप से परिपक्व होने के कारण उतरदायित्व की अपेक्षा करते हैं, और उसके प्रत्येक आचरण एवं भावना को प्रौढ़ मानकों के अनुसार आँकते हैं। परिणामस्वरूप बालक कभी कभी खिन्न एवं उदास हो जाता है और कभी कभी उत्तेजना में आकार सामाजिक नियमों एवं मानकों व नियंत्रणों का उल्लंघन करना चाहताहै। यदि उसके भावना को बहुत ठेस लगती है तो वह समाज विरोधी व्यवहार करने को बाध्य हो जाता है।

किशोरावस्था में समस्या बहुलता के कारण ही इस अवस्था को समस्यजनक अवस्था कहा जाता है। किशोरों की समस्याओं की गंभीरता तब घटती है जब वे अपने माता-पिता व शिक्षकों से चर्चा करने में आजादी का अनुभव करते हैं। **हालमैन** के अनुसार "किशोर में सहायता लेने की इच्छा उसकी समस्या के प्रकार और उसकी गाम्भीर्यता पर निर्भर करती है।समस्या जितनी अधिक गंभीर होगी, उतना ही वह उसे हल करने में दूसरों की सहायता का इच्छुक होगा।"

8.5.3 किशोरावस्था संक्रमण की अवस्था है (Adolescence is the stage of transition)

इस काल को संक्रमण काल इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अवधि दो मुख्य विकासात्मक बाल्यावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के मध्य होती है । इसलिए बालक अपने बाल्यावस्था के बलोचित व्यवहार को त्याग कर इस अवस्था के उपयुक्त व्यवहार को स्वीकार करते हैं , तथा उसका व्यवहार प्रौढ़ व्यक्तियों जैसा होता है । उसका शरीर प्रौढ़ जैसे लगता है । पूर्ण परिपक्वता प्रदर्शित होती है।बालक दो अवस्थाओं के मध्य होने के कारण अपनी भूमिका निर्वाह में असमंजस की स्थिति में पाता है, इस अवधि में किशोर के ऊपर उत्तरदायित्व एवं ज़िम्मेदारी का भार अधिक होता है । जिसका बालक के स्वतन्त्रता पर बुरा प्रभाव पड़ता है (सोरेनसन, 1962)। बालक के व्यवहार में बचकाना प्रदर्शित होता है । जब उसका व्यवहार समाज द्वारा मान्य नियमों के अनुसार नहीं होता है तो उसको सुधारने के लिए निर्देश दिया जाता है । इरिक्सन (1968) ने कहा कि, इस अवधि में किशोर बालक को अपनी भूमिका के लिए तथा अपने अहं तादात्म्य के लिए सतर्क रहना पड़ता है । अहं तादात्म्य की समस्या इस अवस्था की मुख्य समस्या होती है । किशोरावस्था का बालक परिपक्वता की दहलीज पर आसीन होता है जहां पर उसे इसी अवस्था के अनुरूप निर्णय लेना पड़ता है तथा समायोजन करता है, जिसका महत्वपूर्ण प्रभाव बालक के भावी जीवन पर पड़ता है । इस अवधि में नये और पुराने व्यवहारों व अभिवृतियों में भी परिवर्तन होता है अत: किशोर का व्यवहार असंगत होता है ।

8.5.4 किशोरावस्था काम जागरण की अवस्था होती है (Adolescence as a stage of sex awaking)

स्टेनले हाल ने अपने ग्रंथ एडोलसेन्स में लिखा है कि किशोरावस्था के बालक में विशेष रूप से दो प्रकार के भावनाओं का जन्म होता है । प्रथम समाज सबंधी और द्वितीय काम संबधी । कामशक्ति का उदय इस अवस्था का मुख्य लक्षण है । **डॉ जोन्स** के अनुसार, "किशोर के भीतर इस अवस्था में शैशव के कामुकता का ही जागरण होता है । किन्तु इस अवस्था में काम भावना इतनी प्रबल होती है कि इसे दबाया नहीं जा सकता है । ***फ्रॉयड*** के अनुसार किशोर बालक की विजातीय कामुकता में उसके शैशववस्था की कामुकता स्पष्ट पायी जाती है । किशोर बालक अपनी प्रेमिका में अपने माँ का स्नेह ढूँढता और किशोरी अपने प्रेमी में अपने पिता का प्यार देखना चाहती है । कभी-कभी किशोर बालक अपने से अधिक आयु वाली स्त्री के साथ प्यार करता हुआ पाया जाता है । यह सम्पूर्ण प्रवृतियाँ शैशवकाल की ईडीपस एवं इलेक्ट्रा ग्रंथियों का ही प्रकाशन होता है, क्योकि बड़ी आयु वाली स्त्री को बालक अपने अचेतन मन में अपनी माता स्वीकार कर लेता है । स्पष्ट है कि कामुकता किशोरावस्था की मूलभूत समस्याओं में से एक है ।

8.5.5 किशोरावस्था प्रतिबल एवं तूफान की अवस्था है (Adolescence as a stage of storm and stress)

किशोरावस्था को प्रतिबल एवं तूफान की अवस्था इसलिए माना जा सकता है क्योंकि इस अवस्था में किशोर एवं किशोरियों में स्फूर्ति एवं जोश का अनूठा संगम होताहै । जिसके परिणामस्वरूप वे कठिन से कठिनतर कार्य करना चाहते हैं । यदि इस कार्य में वे सफल नहीं होते हैं तो उनमें निराशा व कुंठा का जन्म हो जाता है । इस अवस्था में अनगिनत समस्याओं जन्म होता है जिसके समाधान में किशोर अपने माता-पिता तथा शिक्षकों का सहारा लेना उचित नहीं मानता हैं । वे स्वतंत्र रूप से

समस्याओं का समाधान चाहते है। वे अपने भविष्य के प्रति लक्ष्य निर्धारण नहीं कर पाते हैं। अधिकतर समस्याएँ समाज में उनकी अनिर्णीत स्थिति और स्थिति से असंतुष्ट होने के कारण देखी जाती है। विपरीत लिंगों के प्रति आकर्षित होने एवं उनके साथ समायोजन न होने पर किशोर मन दुखी होता है। अत: यह अवस्था तनाव एवं तूफान की अवस्था कहा जाता है।

8.5.6 किशोरावस्था परिवर्तन की अवस्था है (Adolescence as a stage of change)

इस अवस्था में किशोर एवं किशोरियों में अनेक प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं। पूर्व किशोरावस्था में जिस गति से शारीरिक परिवर्तन होते हैं। उसी गति से किशोर के व्यवहार एवं अभिवृतियों में भी परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देते हैं। टैनर (1971) के अनुसार वृद्धि एवं विकास के साथ-साथ इस अवधि में परिवर्तन का स्वरूप बदल जाता है। टैनर ने इसे घटनाओं का अवधि माना है। इस अवधि में तीव्र संवेगात्मकता का प्रभाव होता है। पुराने एवं नए मूल्यों के बीच द्वन्द की स्थिति उत्पन्न होती है और यही द्वंद संवेगात्मक अस्थिरता को जन्म देता है। इस अवधि में लैंगिक परिपक्वता अपने चरम पर होती है। जिसके कारण किशोर एवं किशोरियाँ अस्थिरता का अनुभव करती है। विपरीत लिंगों के प्रति समायोजन तथा आकर्षण का समायोजन मिलता है। समाज में नयी भूमिकाओं के निर्वाह की प्रत्याशाएँ किशोरों के लिए समस्या पैदा करती है।

8.5.7 किशोरावस्था शैशवावस्था की पुनरावृति है (Adolescence is recapitulation of Infancy)

बालक के विकास क्रम की विभिन्न अवस्थाओं का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि इस अवस्था के अनेक लक्षण शैशवावस्था के लक्षणों से मिलते हैं। अर्थात किशोरावस्था में बालक का व्यवहार बाल्यावस्था के व्यवहार की भांति शांत व स्थिर नहीं होता बल्कि चंचलता पायी जाती है। इसलिए इसे शैशवावस्था की पुनरावृति कहा जाता है।

8.5.8 किशोरावस्था में कल्पना की बाहुल्यता (Exuberant imagination in adolescence)

किशोरावस्था की मुख्य विशेषता उमंग पूर्ण कल्पनाओं की प्रचुरता की होती है। यद्यपि बालक बाह्य जगत के साथ व्यापक संबंध स्थापित कर लेता है फिर भी वह कुछ व्यक्तिगत समस्याओं के कारण अंतमुखी प्रवृति का भी प्रदर्शन करता है। विशेष रूप से वह प्रेमात्मक समस्याओं को लेकर कभी-कभी एकांतप्रियता व एकाकीपन के डगर पर भी चल पड़ता है। वास्तविक जीवन की कठोरता एवं निराशाओं व कुंठा से पीड़ित होकर किशोर बालक अपने हृदय की इच्छाओं के अनुरूप एक कल्पना का सृजन कर लेता है। इसी अन्तमुखी से प्रेरणा पाकर वह कविता और कहानियों की रचनाओं का प्रारम्भ करता है। कभी-कभी वह चित्र कला के माध्यम से भी अपनी दमित भावनाओं को व्यक्त करता है।

8.5.9 किशोरावस्था विकसित सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था है (Adolescence is an age of developed social relationship)

इस अवस्था में सामाजिक सम्बन्धों का विकास तीव्र गति से होता है। किशोर के सामाजिक संपर्क का क्षेत्र काफी बड़ा होता है जिसमें किशोर एवं किशोरियों को नयी भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए नए सामाजिक सम्बन्धों को स्थापित करना होता है। वे मित्रों का चयन पूर्वाग्रह के आधार पर नहीं करते हैं, बल्कि परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए अपना संपर्क बनाते है। सामाजिक कार्यों, उत्सवों, जुलूसों में बढ़ चढ़ कर भाग लेते हैं। नेतृत्व शैली भी इस अवस्था में प्रदर्शित होती है। समाज की

रीतियों प्रथाओं और परम्पराओं के प्रति एक प्रकार की निष्ठा की भावना किशोर के अंदर विकसित होने लगती है।

8.5.10 किशोरावस्था बौद्धिक विकास की अवस्था है (Adolescence as a stage of Intellectual Development)

किशोरावस्था मूलत: बौद्धिक प्रसार की अवस्था है। इस अवस्था में किशोर तथा किशोरियों को अनेक प्रकार से बौद्धिक तथ्यों व शैक्षणिक परिस्थितियों से समायोजन करना पड़ता है। इसी अवधि में बालकों को ज्ञानार्जन होता है। किशोर का व्यवहार बुद्धिमता से निर्धारित व नियंत्रित होता है। किशोर अपने परिवेश में उपस्थित उद्दीपकों तथा परिस्थितियों की व्याख्या एवं विश्लेषण करता है। जिसके परिणाम स्वरूप उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस अवस्था में किशोर की संज्ञानात्मक योग्यता काफी विकसित हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न

1. किशोरावस्था को शैशवावस्था की पुनरावृति मानी जाती है। क्यों ?
2. किशोरावस्था को बौद्धिक विकास अवस्था कहा जाता है। क्यों ?

8.6 किशोरावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in adolescence)

जब बालक पूर्व किशोरावस्था में पदार्पण करता है तब उसकी शारीरिक बृद्धि व यौवनारम्भ की लक्षणिक घटनाएँ तीव्र गति से प्रदर्शित होती है। इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन तीव्र गति से प्रदर्शित होते हैं। पूर्व किशोरावस्था में घटित होने वाला यह परिवर्तन वाह्य न होकर आंतरिक होता है। शारीरिक परिपक्वता लड़कियों में 14 वर्ष एवं लड़कों में 16 वर्ष की अवस्था में पायी जाती है। इस अवस्था में आंतरिक परिवर्तन कई प्रकार के होते हैं। जैसे पाचन तंत्र के आकार में परिवर्तन, आमाशय के लंबाई एवं गोलाई में वृद्धि, आमाशय और आंतों की मांसपेशियों का अधिक शक्तिशाली हो जाना, यकृत के भार में वृद्धि, हृदय के आकार व रुधिर वाहिकाओं के लंबाई एवं मोटाई में वृद्धि आदि का अब किशोर स्वयं अनुभूति करता है।

अर्थात किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं का तीव्र गति से विकास होता है। बालकों में तीव्रतम वृद्धि 14-15 वर्ष एवं बालिकाओं में 11-13 वर्ष की आयु में होती है। किशोरावस्था में शारीरिक विकास व परिवर्तन निम्न ढंग से होते हैं-

8.6.1 भार (Weight)

प्रारम्भ में किशोरावस्था की बालिकाओं का भार बालकों से अधिक होता है और अन्त में बालकों का भार लगभग 25 पौण्ड बालिकाओं से बढ़ जाता है। प्रौढ़ बालक 152 पौण्ड व सामान्य बालक का 16 वर्ष में भार 142 पौण्ड होता है।

8.6.2 लम्बाई (Length)

प्राय: लड़कियां 14 वर्ष में व लड़के 16 वर्ष की आयु में शारीरिक दृष्टि से परिपक्व हो जाते हैं। बालिकाओं में अधिक शक्ति 17 वर्ष की आयु में परिलक्षित होती है। 15 वर्ष की आयु में लड़कों एवं लड़कियों की लम्बाई बराबर होती है। जब दोनों 18 वर्ष में पहुँचते है तो लड़कियों की अपेक्षा लड़को की लम्बाई 21/2 से तीन इंच तक बढ़ जाती है। **साइमंड्स** के अनुसार, 15 से 20 वर्ष के

बीच लड़के और 14 से 18 वर्ष के बीच की लड़कियां अपनी पूर्ण ऊँचाई को प्राप्त कर लेती है। यद्यपि पुरुष की औसत लम्बाई 66 इंच व स्त्री की 60 इंच मानी जाती है।

8.6.3 हड्डियों (अस्थि) का विकास (skelton development)

किशोरावस्था में किशोर और किशोरियों दोनों की हड्डियों में पूर्ण मजबूती आ जाती है। 14 वर्ष में हड्डियों की संख्या 350 तक पहुँच जाती है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की पूर्णता का दृष्टिकोण दो वर्ष पूर्व ही हो जाता है। 13-14 वर्ष की अवस्था में प्राय: 28 दांत निकाल आते हैं।

8.6.4 सिर एवं मस्तिष्क का विकास (Head and brain development)

सिर एवं मस्तिष्क की अधिकतम वृद्धि बाल्यावस्था में ही होती है किन्तु किशोरावस्था में यह निरंतर जारी रहती है। 15-16 वर्ष की आयु में लगभग पूर्ण विकास हो जाता है। इस आयु में मस्तिष्क का भार 1200 और 1400 ग्राम के बीच होता है।

8.6.5 मांसपेशीय विकास (Muscles Development)

किशोरावस्था में मांसपेशियों का तीव्र गति से विकास होता है। मांसपेशियाँ दृढ़ एवं मोटी हो जाती है और इनके द्वारा शरीर के सभी अंग पूर्णरूपेण नियंत्रित होने लगता है। अर्थात तीनों प्रकार की (धारीदार, रेखित एवं चिकनी) मांसपेशियाँपूर्णता परिपक्व हो जाती है।

8.6.6 ज्ञानेन्द्रिय विकास (Sense organs development)

किशोरावस्था में आँख, नाक, कान, त्वचा तथा स्वादेन्द्रियों का पूर्णतम विकास हो जाता है। जिसके फलस्वरूप बालक पूर्णतया सभी प्रकार के संवेदनाओं की अनुभूति करने में सक्षम होता है।

8.6.7 आंगिक वृद्धि में लैंगिक भेद (Sexual differences in growth of different part)

आंतरिक अंगों में अमाशय लंबा हो जाता है तथा कम नालिकादार हो जाता है। आंत की लम्बाई और परिधि में वृद्धि होती है। लीवर का वजन बढ़ता है। कंकाल की वृद्धि लगभग 18 वर्ष में रुक जाती है। हड्डियों की अपेक्षा ऊतकों का विकास हड्डियों में परिपक्वता आने के बाद भी जारी रहती है। किशोरावस्था तक आंतरिक ग्रंथि प्रणाली में सन्तुलन आ जाता है। लैंगिक ग्रंथियां तीव्र गति से बढ़ती है। लड़को के अण्डकोष और लड़कियों के डिंबकोषो में क्रमश: वीर्य कण (sperm) और रजकण बन कर तैयार होने लगते हैं, जिससे संतानोत्पति की क्षमता आ जाती है। इसी अवस्था में बालकों में वीर्यपतन (noeturnal emission) तथा लड़कियों में राजस्वजला (मासिक धर्म) की घटनाएँ घटित होने लगती है। जिसे बालक या बालिका की यौन परिपक्वता का लक्षण माना जाता है।

8.6.8 यौन संबंधी बाह्य परिवर्तन (External Change of sex)

यौन संबंधी बाह्य परिवर्तनों में किशोर के दाढ़ी, मूछ, हाथ, पैर तथा गुप्तांगों पर बाल दिखाई पड़ने लगते हैं। कंधे चौड़े हो जाते है और चेहरे में परिवर्तन आ जाता है , लड़कियों के वक्षस्थल एवं कूल्हे बढ़ जाते है और वाणी में मधुरता एवं कोमलता आती है। किशोर की वाणी में भारीपन दिखाई देने लगता है। ये सभी परिवर्तन थायरायड ग्रंथि के अधिक क्रियाशील होने का परिमाण होती है। इसी के कारण लड़कियों में मासिक धर्म व लड़कों में स्वप्न दोष की घटनाएँ होती है।

8.6.9 गत्यात्मक विकास (Motor Development)

किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं का गत्यात्मक (क्रियात्मक) विकास पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। इस संदर्भ में स्टेनली हाल (Stainely Hall) ने कहा है कि, "इस अवस्था में न केवल गति

क्रियाएँ तीव्रता से बढ़ती है बल्कि गतिशक्ति भी बहुत जल्दी बढ़ जाती है। गति एवं क्रियाशीलता का प्रदर्शन किशोर खेलने-कूदने, दौड़ने, व्यायाम एवं परिश्रम के रूप में करते हैं। इन कार्यों को सम्पन्न करने में किशोरों के विद्युत के सदृश्य शक्ति प्रवाहित लगने लगती है।" गति विकास में पिछड़ापन बालक के सामाजिक समायोजनों एवं अहं संप्रत्ययों पर बुरा प्रभाव डालता हैं। खेलकूद बालकों में प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है। अत: इसमें जो श्रेष्ठ होता है वह अधिक लोकप्रिय होता है।

8.6.10 ग्रंथियों का शारीरिक विकास पर प्रभाव

किशोरावस्था के अधिकांश शारीरिक परिवर्तनों का आधार अन्त:स्रावी ग्रंथियां होती है। इनमें मुख से गलग्रंथि(thyriod) उपगल ग्रंथि (parathyriod) एवं उपवृक्क ग्रंथि (adernal) और गोनैड मुख्य है। यौन परिपक्वता में पीयूष ग्रंथि का महत्वपूर्ण हाथ होता है इससे उत्पन्न स्राव गोनाडोटोफिन हार्मोन्स गोनैड ग्रंथि की क्रियाशीलता को बढ़ा देती है और गोनैड ग्रंथि के द्वारा उत्पन्न किया गया हार्मोन्स जननेन्द्रियों को ही नहीं अपितु यौन संबंधी गौण परिवर्तनों को भी विकसित होने में सहायता करता है।

किशोरावस्था में उत्पन्न होने वाले उपरोक्त शारीरिक लक्षण व परिवर्तन किशोर व किशोरियों के मानसिक जीवन व व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अन्य बातों की चेतना के साथ- साथ उन्हें अपने शारीरिक अंगों की पूर्णता की चेतना भी आने लगती है। ये समस्त चेतनायेँ उनके मन में एक प्रबल स्वचेतना को जागृत कर देती है। किशोर बालक के भीतर इस बात की प्रबल इच्छा पाई जाती है कि वह अपने धार्मिक विचारों, राजनैतिक निष्ठाओं, मित्रों का चयन, वस्त्रों का चयन व अन्य गतिविधियों में पूर्णत स्वतंत्र रहे।

इस अवस्था में बालक के भीतर किसी प्रकार की यदि आंगिक हीनता होती है तो वह हीनता के भावना से पीड़ित होता रहता है। परिणामत: उसकी अधिकांश उमंगें और कल्पनाएं अन्तमुखी हो जाती है। यदि किसी किशोर और किशोरी में इस अवस्था के अपेक्षित गुणों व परिवर्तनों का क्रम विलम्ब से हुआ है तो उसके लिए यह चिंता का विषय बन जाता है। जिन बालकों का शारीरिक विकास जल्द हो जाता है। उनके भीतर यौन परिपक्वता भी शीघ्र उदभूत हो जाती है। और वे अवांछित आचरणों का प्रदर्शन करने लगते हैं। इसी प्रकार जो बालक विलम्ब से परिपक्व होते हैं वे आवश्यकता से अधिक लंबे हो जाते हैं जिसका परिणाम यह हो जाता है कि वे अपने समूह के बालकों के सामने लज्जालु व संकोची बने रहते हैं। ऐसे बालक प्राय: अन्तमुखी, असाहसिक, मंद और एकांतवासी हो जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. किशोरावस्था में कौन- कौन से आंतरिक परिवर्तन होता है ?
2. किशोरावस्था में विभिन्न ग्रंथियों का शारीरिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?

8.7 समायोजन अर्थ एवं परिभाषा

संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने एवं समाज के स्वरूप को सुखमय देखना चाहता है। अपनी प्रगति की संतुष्टि के परिणाम स्वरूप वह निरंतर विकासोन्मुखी मार्ग पर अग्रसर होना चाहता है, किन्तु अनेक

ऐसे कारण हैं जो उनकी लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर देते है। इन अवरोधों या बाधाओं के कारण व्यक्ति में तनाव या प्रतिबल की उत्पत्ति हो जाती है , और व्यक्ति दुखी एवं उदास हो जाता है। इसलिए वह परिस्थितियों सफल समाधान नहीं कर पाता है। व्यक्ति से जिस कार्य की जाती है उसके बारे में परस्पर विरोधी धारणाओं के होने से व्यक्ति के अंदर अनिश्चित, भ्रम, आकुलता, बैचेनी एवं निष्फलता के भाव उत्पन्न होते हैं। जो व्यक्ति को उपयुक्त ढंग से समायोजन करने में बाधक होते हैं। व्यक्ति की कुछ क्रिया ऐसी होती है जिनके लिए उसे प्रयास नहीं करना पड़ता, जबकि कुछ क्रिया ऐसी होती है जो बिना प्रयास के क्रियान्वित नहीं हो सकती है। व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है। उद्देश्य प्राप्ति के लिए किए जा रहे प्रयास में मानसिक तत्परता एवं तनाव पाया जाता है। उदेश्य प्राप्ति में अनेक प्रकार के अवरोधों का सामना व्यक्ति को करना पड़ता है। उद्देश्य के प्राप्ति पर व्यक्ति में सुख एवं विफलता पर निराशा की उत्पत्ति होती है। जिससे व्यक्ति में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। समायोजन का तात्पर्य "परिस्थितियों के अनुकूल चलना या परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना है।"

कोलमैन के अनुसार- "समायोजन में व्यक्ति अपने परिवेश में उपस्थिति प्रतिबल को कम करता है तथा अपनी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन दोनों कार्यों में सामंजस्य की दशा ही समायोजन कहलाती है।"

इंगलिश एवं इंगलिश के अनुसार- "प्राणी और उसके पर्यावरण में विद्यमान साम्य को समायोजन के नाम से जाने जाते हैं।"

गेट्स एवं अन्य के अनुसार- "समायोजन जीवन की निरंतर गतिमान एवं गतिशील प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने एवं पर्यावरण के बीच उपयुक्त संतुलन संबंध स्थापित करने के लिए अपने व्यवहारों में परिवर्तन करता है।"

प्रस्तुत परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि समायोजन एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक संप्रत्यय है। क्योंकि प्रत्येक जीवित प्राणी के सामने कुछ न कुछ समस्याएँ अवश्य होती है व्यक्ति का समायोजन कितना प्रभावशाली है यह उसकी समस्याओं से ज्ञात नहीं होता है बल्कि उसकी प्रभावशीलता इस बात से स्पष्ट होती है कि व्यक्ति इन समस्याओं व जीवन कि चुनौतियों को किस रूप में स्वीकार करता है। अत: उपयुक्त कथनों के प्रकाश से यह अवलोकित होता है कि समायोजन एक गतिशील प्रक्रिया है।

8.8 समायोजन की प्रक्रिया (Process of Adjustment)

आधुनिक संस्कृति एवं समाज में किशोर एवं बच्चोंसे जो अपेक्षाएँ की जाती है, वे बिलकुल ही स्पष्ट नहीं होती इन सामाजिक अपेक्षाओं को किशोर के विकसोन्मुखी कार्यों के रूप में स्पष्टीकरण किया जा सकता है। किशोर एक विकासशील प्राणी है जिसमें उसकी कुछ दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ ही बालक को सक्रियता प्रदान करती है। चूँकि आवश्यकताओं का स्वरूप एक प्रकार से भिन्न-भिन्न होता है। अत: बालक के व्यवहार में भी भिन्नता पूर्ण कार्यों की अभिव्यक्ति होती है। किशोर द्वारा उन्मुखता पूर्ण व्यवहार किया जाता है जो लक्ष्य की दिशा में ही होता है। लक्ष्य की प्राप्ति से किशोर में सफलता के भाव उत्पन्न होते हैं अर्थात बालक सुख की अनुभूति करता है, किन्तु लक्ष्य की विफलता बालक में कुंठा, अंतर्द्वंद एवं चिंता की उत्पत्ति में सहायक होती है। प्रथम

परिस्थिति से समायोजन की मात्र में वृद्धि होती है, और दूसरी परिस्थिति से समायोजन में अवरोध उत्पन्न होता है।

यदि किशोर सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप नहीं चल पाता है, तो वह उस पर्यावरण से उपयुक्त समायोजन स्थापित नहीं कर पाता है। जिसमें व्यवहार के मानक प्रौढ़ो द्वारा किए गए होते हैं। जैसा कि प्रत्येक आयु में होता है । समायोजन की असफलता बालक में अनुपयुक्तता की भावना पैदा करती है, जिससे किशोर में दुखमय प्रवृतियों का जन्म होता है, उच्चस्तर की सामाजिक प्रत्याशा के साथ-साथ जब उच्चस्तर की प्राय: वास्तविकता से मेल न खाने वाली व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं भी होती है, तब कुंठा की प्रबलता इतनी तीव्र हो जाती है कि व्यक्ति का संतुलन बिगड़ जाये या वह जिस परिस्थिति में वह समायोजन करना चाहता है, उससे विवश होकर दूर होने का प्रयास करने लगे।

किशोर द्वारा लक्ष्य निर्धारण व लक्ष्य प्राप्ति प्राय: आवश्यकताओं के अनुरूप संभव नहीं होती है। या तो लक्ष्य के प्रति किशोर में प्रेरणा कि कमी होती है या तो आवश्यकताओं का स्वरूप इतना जटिल होता है कि सभी के पूर्ति में बाधा उत्पन्न होती है । अत: सफल लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में उत्पन्न समस्याओं के समाधान में अधिक समय लगता है। किशोर के विकास में अवस्था आगमन निरंतर चलता रहता है। जिसके कारण अवस्था विशेष में लक्ष्य के प्राप्ति के जिन प्रयासों को बालक किए रहता है, और उससे उसकी आवश्यकताओं की प्राप्ति हुई रहती है, अगली अवस्था में उसके समक्ष नवीन प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने के कारण उसे समायोजन व समस्या समाधान के लिए नए ढंग से सोचना पड़ता है। यहाँ केवल विगत अवस्था में अर्जित अनुभव ही कुछ अंश तक लक्ष्य प्राप्ति व आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होते है।

किशोर के सफल समायोजन को उसकी उपलब्धियों एवं संतोष की मात्रा से मूल्यांकित किया जा सकता है। जो बालक अपने जीवन में अच्छा समायोजन कर सकता है वह सामाजिक एवं आर्थिक व पारिवारिक दृष्टि से कुसमायोजित बालक की अपेक्षा सफल होता है। उसमें संतोष की जितनी मात्रा उपलब्ध होगी वह उसके समायोजन की सफलता पर निर्भर होगी। बालक किशोरावस्था की समस्याओं से जिस सफलता के साथ समायोजन करता है उसका उसके अहं संप्रत्यय पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पाया जाता है, जितनी ही अधिक सफलता के साथ बालक अपने लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में उपस्थित अवरोधों को दूर कर उन परिस्थितियों से समायोजन स्थापित करेगा उसका उसके अहं संप्रत्यय (Self Concept) पर उतना ही सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अत: बालक के अहं संप्रत्यय में आत्म विश्वास, दृढ़ता एवं समत्व का भाव प्रबल होता है। किन्तु उपयुक्त समायोजन की विफलता बालक में दुःख वेदना, अनुपयुक्तता एवं हीनता की भावनाओं के विकास में सहायक होती है । जिसके परिणाम स्वरूप किशोर में संवेगात्मक तनाव की अभिव्यक्ति प्राय: चिन्ता के रूप में होती है।

8.8 समायोजन के क्षेत्र (Area of Adjustment)

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार किशोर के जीवन के निम्नलिखित क्षेत्रों में समायोजन की आवश्यकता होती है-

8.8.1 पारिवारिक या गृह समायोजन (Family and Home Adjustment)- इसके अंतर्गत किशोरों का माता –पिता से संबंध, परिवार के सदस्यों के बीच

सौहाद्रपूर्ण सामंजस्य, लिंगोचित व्यवहार से समायोजन, दोस्तों के साथ समायोजन इत्यादि आते हैं।

8.8.2 शैक्षिक समायोजन (Educational Adjustment)- शैक्षिक समायोजन का तात्पर्य शैक्षिक उपलब्धियों के अर्जन में उपस्थित बाधाओं एवं अवरोधों को दूर करने तथा शैक्षिक परिस्थिति से संबन्धित समायोजन से है। इसके अंतर्गत मुख्य रूप से पठन- पाठन, विद्यालय, शिक्षक, विषय, पाठ्यक्रम, पाठ्येत्तर क्रियाएँ, सहपाठियों एवं विद्यालीय अनुशासन से संबन्धित समायोजन किशोरों को करना पड़ता है।

8.8.3 स्वास्थ्य समायोजन (Health Adjustment)- स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ्य मस्तिष्क का निवास होता है। अत: किशोरों को अपने स्वस्थ्य से समायोजन को प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए। विभिन्न प्रकार की दैहिक एवं मानसिक बीमारियाँ बालकों को रोगग्रस्त बना देता है। जो उनके समायोजन में बाधा उत्पन्न करती है अर्थात शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता के कारण बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं लक्ष्य प्राप्ति में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर पाता जिससे उसका समायोजन हीन भावना के कारण प्रभावित करता है।

8.8.4 संवेगात्मक समायोजन (Emotional Adjudtment)- समायोजन की सर्वाधिक आवश्यकता व्यक्ति को किशोरावस्था में होती है जिसे प्राप्त करने में व्यक्ति को संवेगात्मक तनाव उत्पन्न होता है। संवेगात्मक तनाव की यह अवस्था व्यक्ति के लिए दुःखदायी होती है। किन्तु सफल समाधान के परिणामस्वरूप संवेगात्मक तनाव से व्यक्ति दूर हो जाता है, जिससे उसमें संवेगात्मक स्थिरता एवं शांति की मात्रा बढ़ जाती है। संवेगात्मक समायोजन का तात्पर्य संवेगात्मक उद्दीपन्नों के प्रति किए गए व्यवहार से है।

8.8.5 सामाजिक समायोजन (Social Adjustment)- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसकी सम्पूर्ण गतिशीलता समाज में ही होती है जिसके लिए व्यक्ति से सामाजिक नियमों, मानकों परम्परा, प्रथाओं, या रीति रिवाजों के अनुरूप व्यवहार की प्रत्याशा की जाती है। यदि व्यक्ति उक्त अपेक्षित प्रत्याशाओं के अनुरूप व्यवहारित होता है तो समायोजन का लक्षण माना जाता है और यदि वह इनके विपरीत आचरण व व्यवहार करता है तो कुसमायोजन की प्रबलता में वृद्धि होती है। अत: सामाजिक समायोजन का तात्पर्य समाज द्वारा निर्धारित मानकों व रीति रिवाजों के अनुपालन से है।

8.8.6 धार्मिक समायोजन (Religious Adjustment)- धार्मिक समायोजन का तात्पर्य धार्मिक विश्वास एवं धार्मिक चेतना में आस्था से होता है। धार्मिक क्रिया कलापों में सक्रिय भाग लेने एवं धार्मिकता एवं प्रबल रुचि रखने एवं धर्म के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से सामाजिक समायोजन का उच्चस्तरीय सहसंबंध होता है। अत: यह सत्य है कि वास्तविक धर्म वही है, जो धर्म के मार्ग में अवरोध न उपस्थित करे। धार्मिक चेतना, पुजा-पाठ, कथा-प्रवचन, ईमानदारी – नैतिकता, एवं धार्मिक सहिष्णुता से धार्मिक समायोजन में सहायता मिलती है।

8.9 समायोजन के प्रकार (Types of Adjustment)

समायोजन एक सतत एवं गतिशील प्रक्रिया है| किसी भी बालक के समायोजन के प्रति की गयी प्रतिक्रिया की प्रभावशीलता उसके द्वारा समायोजन में प्रयोग किए गए कौशलों पर निर्भर करता है। जिसके संदर्भ में अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि समायोजन के लिए व्यक्ति को ही अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं करना पड़ता बल्कि वातावरण को भी परिवर्तित होना पड़ता है । समायोजन की प्रभावशीलता एवं उसके लिए उपस्थिति परिस्थिति में घटित घटनाओं या उद्देश्यों के प्राप्ति आधार पर मनोवैज्ञानिकों नें समायोजन के निम्न प्रकारों का वर्णन किया है-

.

8.9.1 सृजनात्मक समायोजन (Creative Adjustment)- प्राय: सभी प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति सरल नहीं होती उसमें अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित रहती है जो व्यक्ति को लक्ष्य से विरत कर देती है। ऐसी दशा में व्यक्ति कुछ सृजनात्मक क्रियाओं द्वारा उपस्थित परिस्थिति से समायोजित करने का प्रयास करता है। निर्माणकारी कार्यों के द्वारा अपने प्रयत्नों में वृद्धि करके लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास करता है। जिसे सृजनात्मक समायोजन की संज्ञा दी जाती है।

8.9.2 स्थानापन्न समायोजन (Substitute Adjustment)- स्थानापन्न समायोजन का तात्पर्य लक्ष्य प्राप्ति में जब बाधाओं की प्राप्ति न हो पाये तो समाधान की स्वरूप लक्ष्य के स्वरूप में परिवर्तन करने से है। अर्थात व्यक्ति जिस लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहता है उसके लिए उपयुक्त प्रयास भी करता है, किन्तु जब सफलता की प्राप्ति नहीं होती है तो व्यक्ति अपना लक्ष्य परिवर्तित कर लेता है। और उसकी प्राप्ति का प्रयास करने लगता है।

8.9.3 बौद्धिक समायोजन(Intellectual adjustment)- इस प्रकार के समायोजन में व्यक्ति लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं का सहारा लेता है। वह समायोजन के लिए काफी सोच-विचार एवं तर्क वितर्क के आधार पर लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास करता है। इसके अंतर्गत समायोजन के लिए गणितीय नियमों का प्रयोग आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक सिद्ध होता है।

8.9.4 सुरक्षा युक्ति समायोजन(Adjustment of Defence Mechanism)- इस प्रकार के समायोजन में प्राणी अपने अचेतन मानसिक क्रियाओं या सुरक्षा युक्तियों का उपयोग करता है जिसके आधार पर वह अपने तनाव एवं कुंठा की प्रबलता को कम करने का प्रयास करता है। सुरक्षा युक्तियों के प्रयोग से व्यक्ति का समायोजन सुखमय एवं तनाव मुक्त हो जाता है। मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड ने अपने व्यक्तित्व के मनोविश्लेषण सिद्धांत में कई प्रकार के सुरक्षा युक्तियों का वर्णन समायोजन में सहायक के रूप में लिया है जिन्हें निम्न नामों से जाना जाता है- प्रतिगमन, उन्नयन, युक्तिकरण, प्रतिकरण, रूपान्तरण, विस्थापन, आरोपण, तादात्मिकरण इत्यादि।

अभ्यास प्रश्न

1. समायोजन को परिभाषित कीजिये।
2. समायोजन के कितने प्रकार हैं ?
3. समायोजन के किन्हीं दो क्षेत्रों का वर्णन करें।

8.10 सारांश

मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्यावस्था समाप्त होते ही किशोरावस्था शुरू हो जाती है। यह अवस्था युवावस्था अथवा परिपक्वावस्था तक रहती है| यह सतत प्रक्रिया है । इसे बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का संधिकाल कहते हैं । किशोरावस्था की आयु वैधानिक दृष्टि से 13 से 21 मानी जाती है । कुछ समय पूर्व तक किशोरावस्था का प्रारम्भ व्यक्ति के लैंगिक रूप से परिपक्व होने पर और अंत 21 वर्ष की आयु में जो आधुनिक संस्कृति में कानून की दृष्टि से प्रौढ़ होने की आयु माना जाता है।

किशोरावस्था मुख्य रूप से बहुर्मुखी परिवर्तन की अवस्था है। इस संदर्भ में विंग्स एवं हंट लिखा है कि, किशोरावस्था कि विशेषताओं को सर्वोत्तम ढंग से व्यक्त करने वाला एक ही शब्द "परिवर्तन" है। यह परिवर्तन शारीरिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक होता है । उपरोक्त कथन के संदर्भ में किशोरावस्था की विशेषताओं का वर्णन निम्न रूपों में किया जा रहा है- संवेगिक अस्थिरता, समस्याओं का बाहुल्यता, किशोरावस्था संक्रमण की अवस्था है, किशोरावस्था काम जागरण की अवस्था होती है , किशोरावस्था प्रतिबल एवं काम की अवस्था होती है, किशोरावस्था परिवर्तन की अवस्था होती है, किशोरावस्था शैशववस्था की पुनरावृति होती है, किशोरावस्था में कल्पना की बाहुल्यता होती है, किशोरावस्था विकसित सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था होती है, किशोरावस्था विकसित सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था होती है।

जब बालक पूर्व किशोरावस्था में पदार्पण करता है तब उसकी शारीरिक बृद्धि व यौवनारम्भ की लक्षणिक घटनाएँ तीव्र गति से प्रदर्शित होती है। इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन तीव्र गति से प्रदर्शित होते हैं। किशोरावस्था में शारीरिक विकास व परिवर्तन इन क्षेत्रों में देखा जाता है- भार, लम्बाई, हड्डियों का विकास, सिर एवं मस्तिष्क का विकास, मांसपेशीय विकास, ज्ञानेन्द्रिय विकास, यौन संबन्धित बाह्य परिवर्तन, गत्यात्मक विकास इत्यादि।

समायोजन में व्यक्ति अपने परिवेश में उपस्थिति प्रतिबल को कम करता है तथा अपनी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन दोनों कार्यों में सामंजस्य की दशा ही समायोजन कहलाती है। समायोजन के क्षेत्र एवं प्रकार निम्न है- गृह समायोजन, शैक्षिक समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन, संवेगात्मक समायोजन, सामाजिक समायोजन, धार्मिक समायोजन, सृजनात्मक समायोजन, स्थानापन्न समायोजन, बौद्धिक समायोजन, सुरक्षयुक्ति समायोजन इत्यादि।

8.11 शब्दावली

- **किशोरावस्था** - बाल्यावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के बीच की अवस्था।
- **संधिकाल** - दो अवस्थाओं के मध्य का काल |
- **पलायनवादी** - किसी परिस्थिति से अपने आपको अलग करना।

- **अहं संप्रत्यय** - व्यक्ति को अपने बारे में जानकारी |
- **तादात्मिकरण** - एक प्रकार का समायोजन युक्ति |

8.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. किशोरावस्था के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं की व्याख्या कीजिये ।
2. किशोरावस्था में शारीरिक विकास एवं परिवर्तन की व्याख्या कीजिये।
3. किशोरावस्था 'तनाव एवं तूफान' की अवस्था है। कथन की अवधारणा को विस्तृत व्याख्या कीजिये।
4. समायोजन से आप क्या समझते है ? समायोजन की प्रक्रिया का वर्णन करें।
5. समायोजन क्या है ? समायोजन के प्रकार एवं क्षेत्रों का वर्णन करें।

8.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

- सिंह, अरुण कुमार, (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना।
- सिंह, अरुण कुमार, (2012) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- मंगल, एस० के०, (2012) शिक्षा मनोविज्ञान, पी० एच० आई०, नई दिल्ली।
- सिंह, राजेंद्र प्रसाद (2014) विकासात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डी० एन० एवं वर्मा, प्रीति (2012) बाल मनोविज्ञान : बाल विकास, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- हर्लोक, ए० बी०(2002) विकास मनोविज्ञान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- एन० सी० ई० आर० टी०(2007) मनोविज्ञान, नई दिल्ली।

इकाई - 9

किशोरावस्था में सामाजिक परिवर्तन, पहचान, आत्म संप्रत्यय एवं आत्म सम्मान

Social Change in adolescence, identity, Self Concept and Self Esteem

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 सामाजिक विकास का अर्थ

9.4 सामाजिक विकास की परिभाषा

9.5 किशोरावस्था में सामाजिक परिवर्तन

9.6 पहचान का अर्थ

9.7 पहचान संबंधी अवधारणा

9.8 पहचान विकास का मार्शिया उपागम

9.9 आत्म प्रत्यय का अर्थ

9.10 आत्म प्रत्यय की विशेषताएँ

9.11 आत्म-प्रत्यय के अवयव

9.12 आत्म प्रत्यय के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक विचारधारा

9.13 आत्म सम्मान

9.14 सारांश

9.15 शब्दावली

9.16 निबंधात्मक प्रश्न

9.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.1 प्रस्तावना

शिशु जन्म के समय सामाजिक प्राणी नहीं होता है । जैसे-जैसे उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है, वैसे ही वैसे उसका सामाजिक विकास भी होता है। अपने परिवार के सदस्यों, अपने समूह के साथियों, अपने समाज की संस्थाओं और परम्पराओं एवं अपनी स्वयं की रुचियों और

इच्छाओं से प्रभावित होकर वह अपने सामाजिक व्यवहार का निर्माण एवं अपना सामाजिक विकास करता है । सामाजिक व्यवहार में स्थिरता न होकर परिवर्तनशीलता होती है । अत: समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है और सामाजिक विकास एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ता जाता है। इस तरह सामाजिकरण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- सामाजिक विकास का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में सामाजिक परिवर्तन का वर्णन कर सकेंगे।
- पहचान का अर्थ बता सकेंगे।
- पहचान को परिभाषित कर सकेंगे।
- पहचान के मर्शिया उपागम का वर्णन कर सकेंगे।
- आत्म संप्रत्यय का अर्थ बता सकेंगे।
- आत्म संप्रत्यय की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- आत्म संप्रत्यय के अवयवों का वर्णन कर सकेंगे।
- आत्म सम्मान के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे |

9.3 सामाजिक विकास का अर्थ

मानव को अपनी एक अपूर्व विशेषता के कारण अन्य वर्ग से भिन्न माना जाता है। वह विशेषता यह है कि वह एक सामाजिक प्राणी है । समाज उसके लिए जल, वायु, तथा भोजन कि तरह ही एक आवश्यक वस्तु है । वह समाज में रहकर जीना चाहता है और सामाजिक बंधनों को बनाने तथा दूसरों के साथ समायोजन करने कि चेष्टा करता है। लेकिन इसका अर्थ ये नहीं है कि मानव शिशु में इस प्रकार के सामाजिक गुण और व्यवहारिक विशेषताएँ जन्मजात होती है । वृद्धि और विकास के अन्य पहलुओं की तरह सामाजिक गुण भी बच्चे में धीरे-धीरे पनपते हैं । इन गुणों के विकास की प्रक्रिया जो बच्चे के सामाजिक व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाने का कार्य सम्पन्न करती है, सामाजिक विकास अथवा समाजीकरण के नाम से जानी जाती है । सामाजिक विकास या समाजीकरण मानव वृद्धि और विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, यहाँ तक की हम किसी को व्यक्ति कहकर तभी पुकारते है जब वह सामाजिक विकास या समाजीकरण की प्रक्रिया से होकर गुजर चुका है। बालक सामाजिक विकास एवं सामाजिक अंतक्रिया के अभाव में अपने जीवन का अस्तित्व बनाए रखने में असमर्थ रहता है। सामाजिक अभिकरणों (परिवार, पास-पड़ोस, विद्यालय आदि) के द्वारा बालक सामाजिक गुणों का अर्जन करता है और विभिन्न सामाजिक व्यवहारों को सीखता है । समाज का सुयोग्य सदस्य बनने के लिए समाजीकरण की आवश्यकता होती है । "समाजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विकासशील बालक के व्यवहारों को परिवर्तित एवं परिमार्जित करके उसको समूह व समुदाय के सदस्यों की अपेक्षाओं के

अनुकूल बनाया जा सके।" इस प्रक्रिया का प्रारम्भ जन्म के बाद हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप बालक के व्यवहार में उत्पन्न परिवर्तनों को ही बालक का सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने समाज या समूह की अपेक्षाओं,आकांक्षाओं, परम्पराओं, प्रथाओं, मानकों व मूल्य आदि को अर्जित करने का प्रयास करता है,जिसके द्वारा बालक धीरे-धीरे अपने व्यवहार को परिमार्जित करता है। बालक में सामाजिक गुणों एवं व्यवहारों की उत्पत्ति उसके सामाजिक विकास का द्योतक होता है। जन्म से ही बालक अपने परिवेश के प्रति अंतक्रिया करना प्रारम्भ कर देता है जो मुख्य रूप से उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में होती है। बालक में इस तरह की समझ जागृत हो जाती है कि उसकी आवश्यकताओं कि पूर्ति उसके आस-पास रहने वाले व्यक्तियों से होती है। जन्म के बाद प्रथम अंत:क्रिया बालक की अपने माता-पिता से होती है। जन्म के प्रथम माह में होने वाली अंत:क्रिया सामाजिक न होकर जैविक होती है। दो वर्ष की अवस्था तक भाषा विकास के परिणाम स्वरूप शिशु बोलने की क्रिया करने लगता है जिसमें वह अवाचिक प्रयोग करना सीख लेता है। परिपक्वता प्राप्ति तक बालक न केवल सहचरी क्रियाओं में भाग लेने लगता है। इस प्रकार बालक का दिन- प्रतिदिन के समाज का विस्तार बढ़ने लगता है और उनके सामाजिक तत्व उससे विशेष ढंग का आचरण व व्यवहार प्रदर्शित करने की अपेक्षा करने लगता है।

बालक में सामाजिक विकास का महत्व व्यक्ति की दृष्टि से अधिक होता है किन्तु समाज की दृष्टि से कम। समाज व्यक्ति से परे कोई सत्ता नहीं बल्कि विभिन्न व्यक्तियों के परस्पर अन्त:क्रिया के परिणामस्वरूप उसका निर्माण होता है। सोरेसन के अनुसार, सामाजिक वृद्धि एवं विकास से हमारा आशय स्वयं एवं दूसरों के साथ विधिवत प्रकार से क्रिया की बढ़ती हुई योग्यता से है। जिसका प्रारम्भ जन्म से ही होता है। प्रथमत: शिशु माँ की पहचान करता है, तत्पश्चात पारिवारिक सदस्यों की पहचान से सामाजिक क्षेत्र का विस्तार विस्तृत होने लगता है।

अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक विकास क्या है ?

9.4 सामाजिक विकास की परिभाषा (Definition of Social Development)

व्यक्ति में निहित उन सभी समायोजनात्मक गुणों का विकास होना, जो उसके समाज में सामंजस्यपूर्ण जीवन यापन के लिए आवश्यक है, सामाजिक विकास कहलाता है। अनेक विद्वानों ने सामाजिक विकास को निम्न ढंग से परिभाषित किया है-

एजुकेशनल इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार- "एक जातीय व्यक्ति के लिए एक सांस्कृतिक परिवेश में सामान्य सामाजिक व्यवहार, भावनाएं, मनोवृतियाँ एवं मूल्य में जन्म से मृत्युपर्यन्त के प्रगतिशील परिवर्तनों की सम्पूर्ण श्रृखला, किसी व्यक्ति को समाज से उचित संबंध स्थापित करने का गुण ही सामाजिक विकास कहलाता है।"

फ्रांसिस पावर्स के अनुसार- "सामाजिक विकास को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्ति द्वारा किए गए कार्यों द्वारा उत्तरोत्तर विकास तथा उन परिस्थितियों के अनुरूप व्यवस्थित चरित्र का विकास ही सामाजिक विकास है।"

ए० वी० हरलाक के अनुसार- "सामाजिक सम्बन्धों की परिपक्वता ही सामाजिक विकास है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक विकास कि प्रक्रिया बालक के जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्यु तक चलती है, जिसमें बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया कर सामाजिक गुणों का अर्जन करता है । व्यक्ति का जन्म शिशु के रूप में, कुछ जैविकीय आवश्यकताओं के साथ इन भौतिक परिवेश में पदार्पण करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक विकास को परिभाषित कीजिये

9.5 किशोरावस्था में सामाजिक परिवर्तन (Social Changes in adolescence)

किशोरावस्था तीव्र परिवर्तन और समायोजन की अवस्था है। सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से इस अवस्था के बच्चे में बहुत कुछ परिवर्तन और विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। यद्यपि किशोर को अपने जीवन में जितने समायोजन करने पड़ते हैं उनमें से सबसे कठिन समायोजन का समय किशोरावस्था में होता है। किशोर को विपरीत लिंग वालों से ऐसे संबंध बनाने पड़ते हैं जो जीवन में इससे पूर्व कभी नहीं करना पड़ता था। तथा उसे घर और स्कूल के बाहर के प्रौढ़ो से भी संबंध बनाने पड़ते हैं। किशोरावस्था के कठिन समायोजनों का संबंध इन्हीं सम्बन्धों से होता है।

अत: किशोरावस्था विकसित सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था होती है । इस अवस्था में किशोर बालक अत्यधिक क्रियाशील रहता है, और उसकी अधिकांश क्रियाएँ सामाजिक पृष्ठभूमि में ही होती है । किन्तु सामाजिक व्यवहारों का जो स्वरूप पूर्व किशोरावस्था में दिखाई पड़ता है वह किशोरावस्था में पहुँच कर परिवर्तित हो जाता है । किशोरावस्था में पदार्पण करने पर बालक एवं बालिकाएँ दोनों के सामाजिक जीवन का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो जाता है । किशोरावस्था में बालक व बालिकाओं द्वारा समूह का निर्माण किया जाता है किन्तु इनके ये समूह बाल्यकाल के समूह से भिन्न होते हैं। किशोर के समूह निर्माण का उद्देश्य प्राय: मनोरंजन होता है, जैसे पिकनिक, भ्रमण, संगीत, नाटक, खेल, आदि का किशोर और किशोरियाँ अपना अलग- अलग समूह निर्मित करते हैं। किशोर या किशोरियाँ जिस समूह की सदस्य होती है उसके प्रति उसकी असीम श्रद्धा व भक्ति होती है। प्राय: किशोर समूह के सदस्यों का आचार- विचार, व्यवहार- प्रतिमान, वेषभूषा, रहन सहन के तरीके एक ही प्रकार के होते हैं। किशोरों का समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होती है। इस अवस्था में किशोर अपनी योग्यता तथा- शारीरिक स्वास्थय, खेलने में निपुणता, कला कौशल, शिक्षा, नेतृत्व व संगठन की योग्यता के आदि के आधार पर समूह में अपना विशिष्ट स्थान बनाने की चेष्टा करते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप किशोर में निम्नवत सामाजिक गुणों में परिवर्तन देखा जाता है –

9.5.1 मित्रता के भावना का विकास

नव किशोर शीघ्र ही यह सीख जाता है कि मित्रता केवल इसलिए नहीं की जाती कि लड़कियां व लड़के एक ही कक्षा में पढ़ते हैं। मित्र के रूप में वही अपनाया जाता है जो अपने समवयस्कों की पसंद के तौर तरीकों के अनुरूप होता है। सामाजिक आदर्शों के अनुरूप होना भी आवश्यक है और व्यक्ति के आदर्शों पर उस समूह के आदर्शों का बहुत प्रभाव पड़ता है व सीधा संबंध होता है।

"बाल्यावस्था में जो शलाध्य माना जाता था उसको किशोरावस्था में भी शलाध्य माना जाना आवश्यक नहीं है। आदर्शों के इस परिवर्तन के परिणाम स्वरूप किशोर के बाल्यावस्था के जो दोस्त थे उनका अब भी दोस्त बना रहना आवश्यक नहीं है।" (ट्रामन सी० एम०, 1939)।

इस अवस्था में किशोर- किशोर व किशोरी- किशोरी वर्ग में मित्रता विशेष रूप से पायी जाती है। किन्तु उत्तर किशोरावस्था में किशोर किशोरियों में परस्पर आकर्षण उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण वे अपने आपको अच्छा वेष-भूषा, कलात्मक एवं शैक्षिक योग्यता विकसित कर एक दूसरे के समक्ष सर्वोतम रूप में उपस्थित होने का प्रयास करते हैं। किन्तु सांस्कृतिक अवरोध, संकोच, लज्जा के कारण, व्यवहार में दोनों की मित्रता की प्रत्यक्ष अभिव्यति नहीं हो पाती।

9.5.2 सामाजिक चेतना में परिवर्तन

इस अवस्था में सामाजिक चेतना में परिवर्तन तीव्र गति से होता है। किशोर एवं किशोरियाँ यह अनुभव करने लगते हैं कि समाज उनके बारे में व उनके क्रम सूचक स्थान व स्थानिक स्थिति के बारे में क्या सोचता है ? इस प्रकार की अनुभूतियों के कारण वह समाज में समाज में अच्छा स्थान बनाने का प्रयास करने लगता है। इस अवस्था में उन्हे समाज के विभिन्न वर्गों के भेद तथा परस्पर सम्बन्धों का भी ज्ञान हो जाता है और इस बात के आधार पर वे भी अंतर व संबंध व्यक्त करने लगते हैं। इस प्रकार से किशोर में सामाजिक "स्व" का विकास हो जाता है।

9.5.3 सामाजिक परिपक्वता में परिवर्तन

किशोरावस्था में प्रत्येक किशोर व किशोरी अपने को वयस्क स्त्री पुरुषों की भांति प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। जिसके प्रतिफल में उन्हें सामाजिक सम्मान व प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो सके परिपक्वता के अनुभूति के कारण वे समाज में अपने अधिकारों तथा समाज के प्रति कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार की भावना से किशोर बालक और बालिकाओं में सामाजिक गुणों तीव्र गति से विकास होता है।

9.5.4 सामाजिक रुचियों में परिवर्तन

सामाजिक रुचियाँ वे है जिनका सामाजिक परिस्थिति और लोगों से संबंध होता है। जैसे पार्टी और वार्तालाप से रुचि का विकास वास्तव में धीरे- धीरे होता है। जिसकी गति बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर होती है कि किशोर को इस तरह के कार्यों से कितना संतोष मिलता है और उसको करने के लिए उसे कितना अवसर उपलब्ध होते हैं। इस अवस्था में मुख्य रूप से पढ़ाई, लिखाई, साहित्य, संगीत, कला, सामाजिक संपर्क व सामाजिक वृति तथा समाज सेवा संबन्धित होता है।

9.5.5 सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन

किशोरावस्था में किशोरों के सामाजिक मनोवृति एवं व्यवहारों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं। इस परिवर्तनों में माता-पिता के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है वह है विषमलिंगी सम्बन्धों में परिवर्तन। इस अवस्था के शुरुआत तक बालक एवं बालिकाएँ अपने- अपने लिंग के व्यक्तियों के प्रति अधिक आकर्षित रहते हैं। परंतु इस अवस्था के उत्तर काल में किशोरों के अभिरुचि एवं आकर्षण किशोरियों में तथा किशोरियों का किशोरों में अधिक बढ़ जाता हैं। अब वे दोनों एक दूसरे के साथ मिल जुल कर सामाजिक क्रियाओं में हाथ बटाना अधिक पसंद करते हैं।

फलस्वरूप इस अवस्था में व्यक्तियों में सामाजिक सूझ तथा सामाजिक सहभागिता अधिक उत्पन्न हो जाती है, जिससे किशोरों के समाजीकरण में तीव्रता आती है।

9.5.6 नेताओं के चयन में नया मूल्य

किशोरावस्था में कई तरह के सक्रिय समूह पाये जाते हैं कुछ समूह सामाजिक होते हैं, कुछ समूह बौद्धिक होते हैं, कुछ समूह धार्मिक तथा कुछ पुष्टकाय (athetic) होते हैं। प्रत्येक समूह के नेता के रूप में किशोर उसी व्यक्ति को चुनता है जिनका डील डौल आकर्षक हो, जिसे लोग प्रतिष्ठा देते हों, जो बहिमुखी हो तथा उयांके विचारों को सही -सही प्रतिनिधित्व करता हो।

किशोर बालक के सामाजिक विकास का दूसरा महत्व पूर्ण पक्ष यह है कि उसका विपरीत यौन के साथ संपर्क। किशोर बालक या बालिका अपने विपरीत यौन के सदस्यों के साथ अधिक से अधिक समय व्यतीत करना चाहते हैं। उत्तर बाल्यावस्था में बालक बालकों में एवं बालिका बालिकाओं में रुचि लेते हैं और विपरीत यौन के प्रति एक प्रकार कि खिन्नता रखती थी। वही मनोवृति इस अवस्था में सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाती हैं और बाल्यकालीन खिन्नता व विकर्षण व विराग प्रेम व आकर्षण में परिवर्तित हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. किशोरावस्था में किस तरह के सामाजिक परिवर्तन देखे जाते हैं ?
2. किशोरावस्था सामाजिक चेतना में परिवर्तन है। कैसे ?

9.6 पहचान का अर्थ (Meaning of Identity)

जीवन के प्रारम्भिक वर्षों की अपेक्षा बालक में बाद के वर्षों में अर्थात बाल्यावस्था के आगमन के पश्चात ज्ञान भंडार एवं प्रत्यक्षण में काफी परिवर्तन प्रारम्भ हो जाता है। बच्चे स्वयं को अपने व्यक्तित्व विशेषकों के आधार पर वर्णित करने लगते हैं,और साथ ही साथ अपने खेल समूह एवं साथी समूह से स्वयं कि विशेषताओं या विशिष्ट गुणों की तुलना करके अपनी एक अलग प्रकार के छवि बनाने का प्रयास करने लगता है। अन्त में मूल्यांकन स्वरूप अपनी शक्तियों, क्षमताओं एवं कमजोरियों के कारणों पर विचार करने लगता है। आत्म से संबन्धित इस प्रकार का चिंतन बच्चों को अपनी व्यक्तिगत पहचान निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता हैं। बाल्यावस्था में आत्म वर्णन का यही प्रमुख कारण होता है कि विद्यालय जाने वाले बच्चे अधिकांशत: सामाजिक रूप से तुलना करते हुए देखे जा सकते हैं। बच्चे स्वयं की बाह्य बनावट पर चिंतन करते हैं और दूसरे के तुलना में अपने व्यवहार तथा योग्यताओं व क्षमताओं का स्वयं अवलोकन करता है। 5-6 वर्ष कि उम्र का बालक अपने स्वयं के कार्य सम्पादन की तुलना अपने साथी समूह से करने लगता हैं। जबकि बड़ी उम्र के बच्चों कई लोगों से एक साथ अपनी तुलना करना सीख जाते है। बालक का संज्ञानात्मक ज्यों- ज्यों अपने विकसित अवधि में उत्तरोत्तर वृद्धि को धारण करता है, उसके आत्म की संरचना तदनुरूप महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित होकर परिवर्तित होने लगती है। अपितु यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि आत्म पहचान के सम्मुनत व संतुलित विकास के लिए संज्ञानात्मक विकास का एक सुनिश्चित स्तर का होना नितांत आवश्यक है। बिना उपयुक्त संज्ञानात्मक विकास के स्तर के संतुलित पहचान विकास संभव नहीं। क्योंकि पहचान विकास हेतु बुद्धि, विवेक, स्मृति, तर्क,

चिंतन, निर्णय, प्रत्यक्षन आदि कि आवश्यकता होती है, और ये सभी उक्त प्रक्रियाएं उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएं हैं, जो कि संज्ञान के ही अंग के रूप में काम करती हैं।

9.7 पहचान संबंधी अवधारणा

पहचान विकास संबंधी अवधारणा के अंतर्गत इरिक्सन (1968) द्वारा वैयक्तिक पहचान विकास सिद्धांत प्रस्तुत किया किया गया। वैयक्तिक पहचान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मनोवैज्ञानिक एल० ई० वर्क० ने लिखा है कि – "वैयक्तिक पहचान किशोरावस्था कि मुख्य व्यक्तित्व उपलब्धि है और यह उत्पादक व प्रसन्न प्रौढ़ बनाने की दिशा में एक निर्णायक कदम है। तुम कौन हो, तुम्हारा मूल्य क्या है, और जीवन के लक्ष्य के लिए किस दिशा का चयन किया है, आदि को समन्वित रूप से व्याख्या करना पहचान निर्माण एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। इरिक्सन द्वारा प्रतिपादित वैयक्तिक पहचान का यह सिद्धान्त स्वयं को व्यक्त करने का एक तर्कपूर्ण व न्याय संगत सिद्धान्त है, जो किशोर तार्किक रूप से कार्य करने तथा उस कार्य की जवाब देही स्वीकार करने की क्षमता रखते हैं। वे अपनी पहचान बनाने में शीघ्र ही सफल हो जाते हैं। इरिक्सन का मत है कि किशोरावस्था में अपनी पहचान बनाने के लिए किशोरों को अनेकों प्रकार की बाधाओं का वैयक्तिक पहचान के निर्माण में किशोरों को अनेक वरीयताओं का आधार लेना पड़ता है। जिसका विवरण निम्नवत है-

1. मुझे किस प्रकार की जीवन वृति चाहिए?
2. लैंगिक जीवन के रूप में मैं क्या कहूँ ?
3. मुझे कौन से सामाजिक एवं धार्मिक मूल्य अपनाने चाहिए ?
4. पुरुष अथवा नारी के रूप में मैं क्या हूँ ?
5. मुझे कौन से नैतिक एवं राजनैतिक मूल्य अपनाने चाहिए ?
6. समाज में मैं अपने आपको किस स्थिति में रख सकता हूँ ?

इरिक्सन ने स्पष्ट किया कि किशोरावस्था में वैयक्तिक पहचान की जो समस्याएँ किशोरों के समक्ष उपस्थित होती है, उन्हें मनोवैज्ञानिक द्वंद की संज्ञा दी जाती है, जिसे विस्तृत अर्थों में पहचान बनाम पहचान भ्रम कहा जाता है। जो बच्चे किशोरावस्था में विश्वास के कमजोर चेतना के साथ प्रवेश कराते हैं, उसको अपनी वैयक्तिक पहचान स्थापित करने में अधिक कठिनता की अनुभूति होती हैं।

वैयक्तिक पहचान करने कि प्रक्रिया किशोरावस्था के पूर्व ही प्रारम्भ हो जाती है। अर्थात 10-12 वर्ष की उम्र से ही बालक अपनी वैयक्तिक पहचान स्थापित करने का प्रयास करने लगता है। किशोरावस्था के बच्चों में पहचान-निर्माण-संकट की स्थिति उत्पन्न होती है। यह भ्रमित होने का एक प्रकार का अस्थायी काल है, क्योंकि बालक एवं बालिकाओं में अपने मूल्यों एवं लक्ष्यों को निर्धारित करने के लिए तरह तरह के प्रयोग करने होते हैं, जो किशोर समाचार की घटनाओं के द्वारा स्वयं के समान्य ज्ञान को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहते हैं तथा अन्य लोगों के साथ अपने विचारों का सम्प्रेषण करते हैं और अपने विचारों की वैचारिकता के प्रति जागरूक रहते हैं वे किशोर परिपक्व पहचान पहचान विकास के लिए आवश्यक मूल्य एवं विश्वास विकसित कर लेते हैं। इस आयु में निर्मित पहचान विकास का स्वरूप प्रौढ़ावस्था में निखार के साथ स्थिर बना रहता है।

किशोर में पहचान विकास के लिए अहं संप्रत्यय की परिपक्वता का महत्वपूर्ण योग होता है। किशोर के समवयस्कों के दल का उसके व्यक्तित्व पर काफी प्रभाव डाला जाता है, बल्कि किशोर का आत्म

संप्रत्यय उसके प्रति उसके समवयस्कों की जो धारणा होती है, उसका प्रतिविम्ब होता है। इरिक्सन द्वारा पहचान भ्रम को किशोरावस्था के ऋणात्मक पहलू के रूप में स्वीकार किया है। किशोरावस्था में पूर्व के मनोवैज्ञानिक अन्तद्वंदों तथा परिवार एवं समाज द्वारा इच्छाओं एवं क्षमताओं के अनुरूप कार्य न करने देने के कारण बालक एवं बालिकायें किशोरावस्था तथा प्रौढ़वस्था की मनोवैज्ञानिक चुनौतियों का सामना व समाधान करने के लिए तैयार नहीं रहते।

9.8 पहचान विकास का मार्शिया उपागम (Identity Development: Marcia Approach)

प्रसिद्ध समाज मनोवैज्ञानिक मार्शिया ने साक्षात्कार विधि द्वारा परिपक्व पहचान प्राप्त करने की प्रक्रिया के समग्र किशोरों को चार वर्गों में वर्गीकृत किया। प्रत्येक वर्ग से पहचान की स्थिति की जानकारी ली जाती है अर्थात वह पहचान को दर्शाता है। पहचान विकास के अंतर्गत पहचान की चार स्थितियाँ निर्धारित की गयी है जिन्हें निम्न रूपों में वर्णित किया गया है –

9.8.1 पहचान की उपलब्धि (Identity Achievement)- इसके अंतर्गत उन किशोरों को वर्गीकृत समूहों में रखा जाता है जो पहचान की समस्या से मुक्त या स्वतंत्र होकर परिपक्व पहचान की प्राप्ति कर लिए होते हैं। पहचान प्राप्त कर लेने वाले स्वयं द्वारा चयनित मूल्यों एवं लक्ष्यों का निर्माण करते हैं। वे मनोवैज्ञानिक ज्ञान की अनुभूति करते हैं और जीवन में अग्रसर होने वाले मार्ग के संबंध में स्पष्ट विचारधारा का अनुसरण करते हैं।

9.8.2 पहचान में विलंब (Moratorium)- मार्शिया द्वारा इस वर्ग में उन किशोर व किशोरियों को रखा जाता है जो स्वयं के पहचान के संकट से त्रस्त रहते है। वे अभी तक स्वयं की पहचान को पूर्ण रूप से स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं और पहचान बनाने के प्रक्रिया हेतु प्रयत्नशील होते हैं। ऐसे किशोर स्वयं की पहचान खोजने की प्रक्रिया में सूचनाएँ संकलित करते रहते हैं और अपने स्वकार्यों में व्यस्त रहते हैं। पहचान की अप्राप्ति के कारण इस वर्ग के किशोर एवं किशोरियों में मूल्यों एवं इच्छाओं को प्राप्त करने की तीव्र लालसा व जिज्ञासा बनी रहती है।

9.8.3 पहचान में अवरोध- इस वर्ग के अंतर्गत उन किशोर बालक एवं बालिकाओं को रखा जाता है जो स्वयं की पहचान बनाने तथा मूल्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु इसके लिए वे नए रास्ते को वे खोजना नहीं चाहते हैं। ऐसे लोग बनी बनाई पहचान की प्राप्ति ही चाहते हैं। अधिकांश: ऐसे कार्य में माता-पिता, परिवारी जन, शिक्षक एवं धार्मिक नेता आदि उनकी सहायता करते हैं।

9.8.4 पहचान की विस्तार- ऐसे किशोर बालक एवं बालिकाएँ जो स्वयं की पहचान बनाने के लिए किसी भी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं करते हैं, को इस वर्ग के अंतर्गत रखा जाता है। ऐसे किशोरों में लक्ष्य एवं मूल्यों को प्राप्त करने के लिए क्रियाशीलता ही नहीं पायी जाती है, और न ही इनमें किसी विकल्प को खोजने की प्रवृति देखी जा सकती है।

इस प्रकार उपयुक्त के आधार पर स्पष्ट है कि किशोरों में पहचान का विकास अनेक मार्गों का अनुगमन करते हुए होता है। अन्तर मात्र इतना होता है कि कुछ किशोर पहचान की एक ही स्थिति में रहते हैं जबकि कुछ किशोरों को अलग अलग परिस्थितियों के अनुभव पहचान विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. पहचान से आप क्या समझते है?
2. मर्शिया ने पहचान विकास को कितने भागों में बांटा है?

9.9 आत्म संप्रत्यय का अर्थ (Meaning of Self Concept)

आत्म संप्रत्यय वह सामान्य पद है, जिसका अर्थ है व्यक्ति के गुणों और व्यवहार आदि के संबंध में उसका मत। एक व्यक्ति अपने गुणों व्यवहार आदि के संबंधमें जो मत रखता है, वही उसका आत्म संप्रत्यय है। प्रत्येक व्यक्ति का आत्म संप्रत्यय उसके विचारों पर आधारित होता है तथा उस व्यक्ति के लिए आत्म संप्रत्यय बहुत महत्वपूर्ण होता है। आत्म संप्रत्यय व्यक्तित्व का केंद्र बिन्दु है। व्यक्तित्व की तुलना साइकिल के पहिये में लगा हुआ हब आत्म संप्रत्यय है तथा हब से जुड़ी हुई तिल्लियाँ व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षण या शील गुण है।

आइजेंक एवं साथी के अनुसार – "व्यक्ति के व्यवहार, योग्यताओं और गुणों के संबंध में उसकी अभिवृति, निर्णय और मूल्यों के योग को ही आत्म-प्रत्यय कहते हैं।"

हरलाक के अनुसार- आत्म या आत्म प्रत्यय वे प्रतिमाएँ हैं जिसे व्यक्ति स्वयं के सबंध में निर्मित करता है। इसमें व्यक्ति के वे विश्वास होते हैं जो एक व्यक्ति अपने शारीरिक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विशेषताओं में रखता है। आत्म के अंतर्गत व्यक्ति की आकांक्षा एवं उपलब्धि भी सम्मिलित होती है।"

उपयुक्त परिभाषाओं के विवेचन एवं विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि आत्म व्यक्ति के व्यक्तित्व का केंद्रीय भाग है। आत्म संप्रत्यय से तात्पर्य उन प्रत्यक्षणों एवं मनोवृतियों से है जो एक व्यक्ति स्वयं के संबंध में रखताहै। इसके अंतर्गत व्यक्ति द्वारा अर्जित कि गयी अंर्तसंबन्धित मनोवृतियाँ निहित होती है। जो स्वाभाविक परिस्थितियाँ एवं क्रियाओं में उसकी संलग्नता को रेखांकित एवं नियंत्रित करती है। आत्म व्यक्ति के सभी पहलुओं एवं अनुभूतियों से संबन्धित होता है, जिससे व्यक्ति अवगत होता है।

9.10 आत्म संप्रत्यय की विशेषताएँ

आत्म व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण निर्धारक है। आत्म का विकास हमें सदैव सामाजिक संदर्भ में होता है। आत्म व्यक्ति की वे प्रतिमाएँ निहित होती है जो उसकी दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से संबंध होती है। इस आधार पर आत्म की निम्न विशेषताएँ पायी जाती है-

- आत्म संगठित, संरचित एवं सतत प्रकृति का होताहै।
- इसमें स्वयं के बारे में संगठित प्रत्यक्षण निहित होता है।
- आत्म के द्वारा स्वयं की प्रत्याशाओं के बारे में ज्ञान होता है।
- इसमें स्वयं की मूल्यांकित करने की क्षमता निहित होती है।
- इसके अंतर्गत व्यक्ति का विश्वास, आत्म सम्मान एवं आदर्श समाहित होता है।
- यह धनात्मक एवं ऋणात्मक स्वरूप में विकसित होता है।
- आत्म व्यक्ति के व्यक्तित्व का सारभूत (केन्द्रीय) तल में होता है।
- आत्म के द्वारा ही व्यक्तित्व विशेषकों की उत्पत्ति होती है।
- आत्म में व्यक्ति के स्वयं की आकांक्षाएँ एवं उपलब्धि सन्निहित रहतीहै।

9.11 आत्म-संप्रत्यय के अवयव (Components of Self Concept)

आत्म संप्रत्यय के निम्न तीन प्रमुख अवयव हैं।

9.11.1 प्रत्यक्षपरक अवयव- इस अवयव के अंतर्गत उसके शरीर की प्रतिमा आती है तथा दूसरे पर क्या छाप छोड़ता है यह भी उसके प्रत्यक्षपरक अवयव के अंतर्गत आता है | दूसरे शब्दों में व्यक्ति शारीरिक रूप से कितना आकर्षक है। इस अवयव को शारीरिक आत्म-प्रत्यय भी कह सकते हैं।

9.11.2 प्रत्यात्मक अवयव- इसके अंतर्गत इसके ये विशेषताएँ आती है, जिनके कारण वह दूसरों से भिन्न होती है। इसके अंतर्गत योग्यता तथा अयोग्यता भी आती है। इसमें जीवन के समायोजन से संबन्धित विशेषताएँ भी आती है, जैसे ईमानदारी, आत्म-विश्वास, साहस इत्यादि। इस अवयव को मनोवैज्ञानिक आत्म-प्रत्यय भी कहते हैं।

9.11.3 अभिवृतिपरक अवयव- इसके अंतर्गत व्यक्ति के स्वयं के प्रति भाव आते हैं इसके अंतर्गत ये अभिवृतियाँ भी आती है जो इसके आत्म सम्मान, आत्म उपागम, गर्व आदि से संबन्धित होती है। इसके अंतर्गत उसके विश्वास धारणाएं, एवं विभिन्न प्रकार के मूल्य, आदर्श और आकांक्षाएँ भी आती है।

9.12 आत्म संप्रत्यय के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक विचारधारा

आत्म संप्रत्यय के संबंध में विभिन्न मनोंवैज्ञानिकों ने अपनी अपनी विचार दियेहैं। जो इस प्रकार है-

9.12.1 विलियम जेम्स की विचारधारा- विलियम जेम्स का आत्म संप्रत्यय के संबंध में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के विचार का समानार्थी है। इसके अनुसार आत्म संप्रत्यय का संबंध 'मुझे' या अनुभविक या अनुभूति मूलक आत्मन से था जिसमें तीन पहलू एक पदा नुक्रम में अवस्थित होते हैं। ये तीन पहलू संसारिक आत्मन, सामाजिक आत्मन एवं आध्यात्मिक आत्मन, के रूप में जाने जाते हैं। पदानुक्रम की निचली सतह पर सांसारिक आत्मन, मध्य में सामाजिक आत्मन और सबसे ऊपर आध्यात्मिक आत्मन अवस्थित होता है। सांसारिक आत्मन से जेम्स का तात्पर्य व्यक्ति के शरीर एवं वैयक्तिक धरोहर से होता है। सामाजिक आत्मन से तात्पर्य दूसरों द्वारा व्यक्ति की स्थापित पहचान से है और आध्यात्मिक आत्मन का तात्पर्य सभी प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों के संयुक्ति से है, जिसमें व्यक्ति की उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएँ अथवा संज्ञानात्मक क्षमताएं निहित होती है। अत: जेम्स विलियम्स का कथन है कि आत्म संप्रत्यय के द्वारा व्यक्ति अपने वातावरण के विभिन्न पहलुओं के बारे में सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति करता है, जिसमें सांसारिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान सम्मालित होते हैं।

9.12.2 फ्रॉयड की विचार धारा- फ्रॉयड ने आत्मन के लिए एक दूसरे शब्द अहम (Ego) का प्रतिपादन किया है। फ्रॉयड के अनुसार इदम (id) की शैशवकालीन प्रवृति के द्वारा अहम का विकास होता है जो व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवनकाल में वर्धित एवं विकसित होते रहता है। अहम मन का वह भाग है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है जो सोचता है, अनुभव करता है, और कोई निर्णय लेता है। यह वास्तविकता के नियमों द्वारा निर्धारित होता है, जिसमें व्यक्ति सामाजिक वास्तविकता को दृष्टिगत रखते हुए अपनी शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा शक्तियों का उपयोग करता है। चूँकि अहम की संबद्धता वास्तविकता से होता है, इसलिए इसे व्यक्तित्व का कार्यपालक या निर्णय लेकर उसे कार्य रूप देने वाला भाग कहा जाता है। अहम अंशत: चेतन, अर्धचेतन, अचेतन होने के कारण तीनों स्तरों पर निर्णय लेने का कार्य करता है। इसका प्रथम कार्य रक्षा प्रक्रमों के द्वारा धमकी पूर्ण आवेगों को चेतन में प्रवेश से रोकना है जिससे व्यक्ति की चिंता में कमी आती है। दूसरा

कार्य परा अहं (super ego) एवं बाह्य जगत के बीच उत्तम संपर्क बनाए रखना है। उपयुक्त विवेचन यह स्पष्ट करते हैं कि फ्रॉयड नें आत्मन को अहम के समान माना है। अहम के द्वारा ही व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को संगठित किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. आत्म संप्रत्यय क्या है ?
2. आत्म संप्रत्यय के किन्हीं चार विशेषताओं को लिखें।
3. आत्म संप्रत्यय के किन्हीं दो विचारधारा का नाम लिखें।

9.13 आत्म सम्मान (self- Esteem)

आत्म सम्मान हमारे आत्म का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। व्यक्ति के रूप में हम सदैव अपने मूल्य या मान या योग्यता के बारे में निर्णय या आकलन कराते रहते हैं। व्यक्ति का अपने बारे में यह मूल्य-निर्णय ही आत्म सम्मान (self- esteem) कहलाता है। कुछ लोगों में आत्म सम्मान उच्च स्तर का जबकि कुछ अन्य लोगों में आत्म सम्मान निम्न स्तर का पाया जाता है। किसी व्यक्ति के आत्म सम्मान का मूल्यांकन करने के लिए व्यक्ति के समक्ष विविध प्रकार के कथन प्रस्तुत किए जाते हैं और उस व्यक्ति से पूछा जाता है कि किस सीमा तक वे कथन उसके संदर्भ में सही है। उदाहरण के लिए किसी बालक/बालिका से पूछा जाता है कि "मैं गृह कार्य करने में अच्छा हूँ" अथवा "मुझे अक्सर विभिन्न खेलों में भाग लेनें के लिए चुना जाता है।" अथवा "मेरे सहपाठियों द्वारा मुझे बहुत पसंद किया जाता है।" जैसे कथन उसके संदर्भ में किस सीमा तक सही है। यदि बालक या बालिका बताता/बताती है कि ये कथन उसके संदर्भ में सही है तो उसका आत्म सम्मान उस दूसरे बालक/बालिका कि तुलना में अधिक होगा जो यह बताता/बताती है कि यह कथन उसके बारे में सही नहीं है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह जानकारी प्राप्त हुए है कि छ: से सात वर्ष तक के बच्चों में आत्म सम्मान चार क्षेत्रों में निर्मित हो जाता है – शैक्षिक क्षमता, सामाजिक क्षमता, शारीरिक क्षमता/ खेल कूद संबंधी क्षमता और शारीरिक रूप जो आयु के बढ़ने के साथ-साथ और अधिक परिष्कृत हो जाता है। अपनी स्थिर प्रवृतियों के रूप में अपने प्रति धारणा बनाने कि क्षमता हमें भिन्न-भिन्न आत्म मूल्यांकनों को जोड़कर अपने बारे में एक सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रतिमा निर्मित करने का अवसर प्रदान करती है। इसी को हम आत्म सम्मान कि समग्र भावना के रूप में जानते हैं।

आत्म सम्मान हमारे दैनिक जीवन के व्यवहारों से अपना घनिष्ठ संबंध प्रदर्शित करताहै। उदाहरण के लिए जिन किशोरों में उच्च शैक्षिक आत्म सम्मान होता है उनका निष्पादन विद्यालयों में निम्न आत्म सम्मान रखने वाले किशोरों की तुलना में सहपाठियों द्वारा अधिक पसंद किया जाता है। दूसरी तरफ, जिन किशोरों में सभी क्षेत्रों में निम्न आत्म सम्मान होता है उसमें दुष्चिन्ता, अवसाद और समाज विरोधी व्यवहार पाया जाता है। अध्ययनों द्वारा प्रदर्शित किया गया है कि जिन माता पिता द्वारा स्नेह के साथ सकारात्मक ढंग से बच्चों का पालन पोषण किया जाता है ऐसे किशोरों में उच्च आत्म सम्मान विकसित होता है। क्योंकि ऐसा होने पर बच्चे अपने आप को सक्षम एवं योग्य व्यक्ति के रूप में स्वीकार कराते हैं। जो माता- पिता किशोरों द्वारा सहायता न मांगने पर भी उनके निर्णय स्वयं लेते हैं तो ऐसे किशोरों में निम्न आत्म सम्मान पाया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. आत्म सम्मान क्या है?

9.14 सारांश

मानव को अपनी एक अपूर्व विशेषता के कारण अन्य वर्ग से भिन्न माना जाता है। वह विशेषता यह है कि वह एक सामाजिक प्राणी है। समाज उसके लिए जल, वायु, तथा भोजन की तरह ही एक आवश्यक वस्तु है। वह समाज में रहकर जीना चाहता है और सामाजिक बंधनों को बनाने तथा दूसरों के साथ समायोजन करने कि चेष्टा करता है। लेकिन इसका अर्थ ये नहीं है कि मानव शिशु में इस प्रकार के सामाजिक गुण और व्यवहारिक विशेषताएँ जन्मजात होती है। वृद्धि और विकास के अन्य पहलुओं की तरह सामाजिक गुण भी बच्चे में धीरे-धीरे पनपते हैं। इन गुणों के विकास की प्रक्रिया जो बच्चे के सामाजिक व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाने का कार्य सम्पन्न करती है, सामाजिक विकास अथवा समाजीकरण के नाम से जानी जाती है। किशोरावस्था तीव्र परिवर्तन और समायोजन की अवस्था है। सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से इस अवस्था के बच्चे में बहुत कुछ परिवर्तन और विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। यद्यपि किशोर को अपने जीवन में जीतने समायोजन करने पड़ते हैं उनमें से सबसे कठिन समायोजन का समय किशोरावस्था में होता है। प्राय: किशोर समूह के सदस्यों का आचार- विचार, व्यवहार- प्रतिमान, वेषभूषा, रहन सहन के तरीके एक ही प्रकार के होते हैं। किशोरों का समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होती है। इस अवस्था में किशोर अपनी योग्यता तथा- शारीरिक स्वास्थय, खेलने में निपुणता, कला कौशल, शिक्षा, नेतृत्व व संगठन की योग्यता के आदि के आधार पर समूह में अपना विशिष्ट स्थान बनाने की चेष्टा करते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप किशोर में निम्नवत सामाजिक गुणों में परिवर्तन देखा जाता है – मित्रता कि भावना में परिवर्तन, सामाजिक चेतना में परिवर्तन, सामाजिक परिपक्वता में परिवर्तन, सामाजिक रुचियों में परिवर्तन, सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन, नेताओं के चयन में नया मूल्य।

पहचान विकास संबंधी अवधारणा के अंतर्गत इरिक्सन (1968) द्वारा वैयक्तिक पहचान विकास सिद्धांत प्रस्तुत किया किया गया। वैयक्तिक पहचान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मनोवैज्ञानिक एल० ई० वर्क० ने लिखा है कि – "वैयक्तिक पहचान किशोरावस्था की मुख्य व्यक्तित्व उपलब्धि है और यह उत्पादक व प्रसन्न प्रौढ़ बनाने की दिशा में एक निर्णायक कदम है। प्रसिद्ध समाज मनोवैज्ञानिक मार्शिया ने साक्षात्कार विधि द्वारा परिपक्व पहचान प्राप्त करने की प्रक्रिया के समग्र किशोरों को चार वर्गों में वर्गीकृत किया। प्रत्येक वर्ग से पहचान की स्थिति की जानकारी ली जाती है अर्थात वह पहचान को दर्शाता है। पहचान विकास के अंतर्गत पहचान की चार स्थितियाँ निर्धारित की गयी है जिन्हें निम्न रूपों में वर्णित किया गया है- पहचान की उपलब्धि, पहचान में विलम्ब, पहचान में अवरोध, पहचान का विस्तार।

आत्म संप्रत्यय वह सामान्य पद है, जिसका अर्थ है व्यक्ति के गुणों और व्यवहार आदि के संबंध में उसका मत। एक व्यक्ति अपने गुणों व्यवहार आदि के संबंधमें जो मत रखता है, वही उसका आत्म संप्रत्यय है। प्रत्येक व्यक्ति का आत्म संप्रत्यय उसके विचारों पर आधारित होता है तथा उस व्यक्ति के लिए आत्म संप्रत्यय बहुत महत्वपूर्ण होता है।

आत्म सम्मान हमारे आत्म का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। व्यक्ति के रूप में हम सदैव अपने मूल्य या मान या योग्यता के बारे में निर्णय या आकलन कराते रहते हैं। व्यक्ति का अपने बारे में यह मूल्य-निर्णय ही आत्म सम्मान (self- esteem) कहलाता है।

9.15 शब्दावली

- **आत्म सम्मान** – व्यक्ति का अपने बारे में मूल्य निर्णय
- **विषमलिंगी** - विपरीत लिंग
- **आत्म-प्रत्यय** - व्यक्ति के व्यवहार, योग्यताओं और गुणों के संबंध में उसकी अभिवृति

9.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक विकास से आप क्या समझते हैं ? किशोरावस्था में सामाजिक विकास का वर्णन करें।
2. किशोर बालक के विकास में सामाजिक विकास के महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. आत्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।
4. पहचान विकास के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
5. आत्म प्रत्यय एवं पहचान विकास के संबंध को स्पष्ट कीजिये
6. बालकों के आत्म सम्मान पर एक लेख लिखें।

9.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

- सिंह, अरुण कुमार, (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना।
- सिंह, अरुण कुमार, (2012) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- मंगल, एस० के०, (2012) शिक्षा मनोविज्ञान, पी० एच० आई०, नई दिल्ली।
- सिंह, राजेंद्र प्रसाद (2014) विकासात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डी० एन० एवं वर्मा, प्रीति (2012) बाल मनोविज्ञान : बाल विकास, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- हर्लोक, ए० बी०(2002) विकास मनोविज्ञान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- एन० सी० ई० आर० टी०(2007) मनोविज्ञान, नई दिल्ली।

इकाई – 10

कामुकता (कामभाव) रुचि एवं व्यवहार, सम्बन्ध - परिवार एवं सहपाठी

Sex Interest and Behaviour, Relationships- Family and Peer group

इकाई का रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 कामुकता (कामभाव) (Sex) का अर्थ

10.4 बालक में कामुकता (कामभाव) को प्रभावित करने वाले अंत: स्रावी ग्रंथि

10.5 बालकों में कामुक (कामभाव) विकास के विभिन्न अवस्था

10.5.1 मौखिक अवस्था

10.5.2 गुदा अवस्था

10.5.3 लैंगिक अवस्था

10.5.4 सुषुप्तावस्था

10.5.5 जननिक अवस्था

10.6 किशोरावस्था में सहपाठियों के साथ संबंध

10.7 किशोरावस्था में बालकों का समाज एवं परिवार से सम्बन्ध

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.01 निबंधात्मक प्रश्न

10.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 प्रस्तावना

किशोरावस्था मनुष्य के जीवन का बसंतकाल माना गया है। यह काल बारह से उन्नीस वर्ष तक रहता है, परंतु किसी किसी व्यक्ति में यह बाईस वर्ष तक चला जाता है। यह काल भी सभी प्रकार की मानसिक शक्तियों के विकास का समय है। भावों के विकास के साथ साथ बालक की कल्पना का विकास होता है। उसमें सभी प्रकार के सौंदर्य की रुचि उत्पन्न होती है और बालक इसी समय नए नए और ऊँचे ऊँचे आदर्शों को अपनाता है। बालक भविष्य में जो कुछ होता है, उसकी पूरी रूपरेखा

उसकी किशोरावस्था में बन जाती है। जिस बालक ने धन कमाने का स्वप्न देखा, वह अपने जीवन में धन कमाने में लगता है। इसी प्रकार जिस बालक के मन में कविता और कला के प्रति लगन हो जाती है, वह इन्हीं में महानता प्राप्त करने की चेष्टा करता और इनमें सफलता प्राप्त करना ही वह जीवन की सफलता मानता है। जो बालक किशोरावस्था में समाज सुधारक और नेतागिरी के स्वप्न देखते हैं, वे आगे चलकर इन बातों में आगे बढ़ते है।

पश्चिम में किशोर अवस्था का विशेष अध्ययन कई मनोवैज्ञानिकों ने किया है। किशोर अवस्था काम भावना के विकास की अवस्था है। कामवासना के कारण ही बालक अपने में नवशक्ति का अनुभव करता है। वह सौंदर्य का उपासक तथा महानता का पुजारी बनता है। उसी से उसे बहादुरी के काम करने की प्रेरणा मिलती है।

कामुकता की अनुभूति बालक को 13 वर्ष से ही होने लगती है। इसका कारण उसके शरीर में स्थित ग्रंथियों का स्राव होता है । अतएव बहुत से किशोर बालक अनेक प्रकार की कामुक क्रियाएँ अनायास ही करने लगते हैं। जब पहले पहल बड़े लोगों को इसकी जानकारी होती है तो वे चौंक से जाते हैं । आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान ने बालक की किशोर अवस्था की कामचेष्टा को स्वाभाविक बताकर, अभिभावकों के अकारण भय का निराकरण किया है। ये चेष्टाएँ बालक के शारीरिक विकास के सहज परिणाम हैं। किशोरावस्था की स्वार्थपरता कभी कभी प्रौढ़ अवस्था तक बनी रह जाती है। किशोरावस्था का विकास होते समय किशोर को अपने ही समान लिंग के बालक से विशेष प्रेम होता है। यह जब अधिक प्रबल होता है, तो समलिंगी कामक्रियाएँ भी होने लगती हैं। बालक की समलिंगी कामक्रियाएँ सामाजिक भावना के प्रतिकूल होती हैं, इसलिए वह आत्मग्लानि का अनुभव करता है। अत: वह समाज के सामने निर्भीक होकर नहीं आता। समलिंगी प्रेम के दमन के कारण मानसिक ग्रंथि मनुष्य में पैरानोइया नामक पागलपन उत्पन्न करती है। इस पागलपन में मनुष्य एक ओर अपने आपको अत्यंत महान व्यक्ति मानने लगता है और दूसरी ओर अपने ही साथियों को शत्रु रूप में देखने लगता है। ऐसी ग्रंथियाँ हिटलर और उसके साथियों में थीं, जिसके कारण वे दूसरे राष्ट्रों की उन्नति नहीं देख सकते थे। इसी के परिणामस्वरूप द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा।

किशोर बालक उपर्युक्त मन:स्थितियों को पार करके, विषमलिंगी प्रेम अपने में विकसित करता है और फिर प्रौढ़ अवस्था आने पर एक विषमलिंगी व्यक्ति को अपना प्रेम केंद्र बना लेता है, जिसके साथ वह अपना जीवन व्यतीत करता है।

कामवासना के विकास के साथ साथ मनुष्य के भावों का विकास भी होता है। किशोर बालक के भावोद्वेग बहुत तीव्र होते हैं। वह अपने प्रेम अथवा श्रद्धा की वस्तु के लिए सभी कुछ त्याग करने को तैयार हो जाता है। इस काल में किशोर बालकों को कला और कविता में लगाना लाभप्रद होता है। ये काम बालक को समाजोपयोगी बनाते हैं।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बालकों में कामुकता (कामभाव) को प्रभावित करने वाले अंत: स्रावी ग्रंथि का नाम बता सकेंगे।
- बालक में कामुकता (कामभाव) के विकास का वर्णन कर सकेंगे।

- बालकों में कामुक (कामभाव) विकास के विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में सहपाठियों के साथ संबंधों का वर्णन कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में परिवार एवं समाज के साथ संबंधों का वर्णन कर सकेंगे।

10.3 कामुकता (कामभाव) (Sex) का अर्थ

फ्रॉयड के अनुसार कामभाव अथवा सैक्स का अर्थ अत्यधिक व्यापक विस्तृत है। उनके अनुसार व्यक्तियों के वे समस्त पारस्परिक सुखद व्यवहार, मधुर संपर्क व स्पर्श, विनोदपूर्ण सम्प्रेषण व रसिक संवाद आदि काम भाव या कामुकता का ही प्रतीक होते हैं, जिनसे व्यक्तियों की आनंदमयी व विलासमयी अंतरनोदों की पूर्ति व तृप्ति होती हैं। इसी प्रकार वे समस्त विषय वस्तुएं, क्रियाएँ व प्रतिक्रियाएँ भी काम भाव की ही प्रतीक व परिचायक होती है, जो की व्यक्तियों के सुख भोग व विषय सुख की साधन होती है। इस व्यापक अर्थ में एक वह स्थूल शारीरिक व आंगिक क्रिया भी काम व्हाव जन्य होती है, जिसके सम्पन्न करने से व्यक्ति को एक प्रकार की आंतरागी तनाव (visceral tension) की मुक्ति के साथ-साथ एक प्रकार की मानसिक तृप्ति भी होती है। फ्रॉयड के अनुसार भूख से पीड़ित नव शिशु जब अपनी माँ के वक्ष स्थल पर स्तनपान कराता हुआ होता है, उस व्यवहार में भी एक प्रकार के कामुक अंतरणोद की ही संतुष्टि होती है, कम से कम, यह तथ्य उस समय विशेषत: दृष्टिगोचर होता है, जबकि नव शिशु भूख के समाप्ति के पश्चात भी स्तनपान की आनंदमयी क्रिया में लीन रहता है। वास्तव में यहाँ माँ के उभरे हुए कोमल और उभरे हुए वक्षस्थल पर चिपके रहना शिशु के लिए साधारणत: अति विश्रामदायक तथा आनंद दायक रहता है। यहाँ मनोविश्लेषणवादी विचारधारा के अनुसार इस साधारण स्थिति में भी अचेतन रूप से कामुक संतुष्टि का भाव ही निहित रहता है। यहाँ यह अवश्य है कि साधारण व्यक्ति के लिए नव शिशु के ऐसे साधारण व सहज व्यवहार में कामुक तत्व प्रत्यक्षत: बोधगम्य नहीं होता है, क्योंकि उसके लिए काम भावना एक अति तुच्छ, घृणित व पाप जैसी प्रवृति की ही का परिचायक है, व उसके लिए व्यवहारिकत: काम- भाव व जनन-भाव एक ही होते हैं। इस प्रकार, सामान्य व्यक्तियों के लिए काम-भाव का एक बहुत ही सीमित व संकुचित अर्थ होता है। दूसरा यह भी है कि साधारण व्यक्ति नव शिशु के मन को निर्मल तथा पूर्णत: निष्कपट मानता है, तथा वह अपनी काम भावना के प्रति अर्जित, दूषित, पतित व हीन काम भावनाओं के परिपेक्ष्य में शिशु के प्रत्येक व्यवहार को पूर्णत: शुद्ध व काम रहित मानता है। उसमें सैक्स रहने पर वह उसकी अनदेखी ही कर जाता है। वह कभी यह मान ही नहीं सकता कि शिशु की स्तनपान, मल-मूत्र परित्याग व जनन इंद्रियों के स्पर्श जैसी क्रियाओं में काम भाव हो ही सकता है। परंतु मनोविश्लेषणवादी विचारधारा के अनुसार इन सब व्यवहारों में काम संतुष्टि के भाव अचेतन व विसरित रूप से अवश्य रहता है। वस्तुस्थिति यह है कि यदि शिशुओं के व्यवहार का तटस्थ व निकट से तथा नियमित रूप से अध्ययन किया जाये तब यह स्पष्ट यह ज्ञात होता है कि छोटी बालिका का समय समय पर अपनी इंद्रियों का स्पर्श करते रहना व ऐसे ही छोटे बालकों का अपने शीशन का बार-बार पकड़ते रहना व्यापक रूप से उन्हें व्याप्त काम-भाव व उसकी संतुष्टि के ही प्रतीक हैं। इसी प्रकार जब बालक सामुहिक रूप से मूत्र त्याग की क्रिया में लगे होते हैं तब प्राय: वे मूत्र त्याग की अपेक्षा लंबी क्रिया में एक दूसरे से अपने काम भाव के वीभव को अधिक सशक्त सिद्ध करने में अपना बड़ा गौरव अनुभव करते हैं। फ्रॉयड के अनुसार प्रौढ़

व्यक्तियों के व्यवहार में हास्य-रस व रसिक भाव में स्पष्टत: काम भाव निहित रहता है, व ऐसे ही लड़कियों व महिलाओं के विभिन्न श्रिंगारों व भेषभूषाओं में भी काम उद्दीपक आकर्षण रहता है।

अभ्यास प्रश्न

1. कामुकता (Sex) से आप क्या समझते हैं ?

10.4 बालक में कामुकता (कामभाव) को प्रभावित करने वाली अंत: स्रावी ग्रंथि

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि कभी- कभी हम लोग बहुत सक्रिय हो जाते हैं तथा कभी- कभी हम लोग बहुत ही निष्क्रिय हो जाते हैं और साथ-ही साथ मंदित हो जाते हैं। इसका कारण है कि हमारे शरीर में कुछ रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनका नियंत्रण कुछ ग्रंथियों द्वारा होतीहै। मानव शरीर में दो तरह की ग्रंथि होती है – बहिस्रावी ग्रंथि (exocline gland) एवं अंत: स्रावी ग्रंथि (endocrine gland)। अंत: स्रावी ग्रंथियों का महत्व बालक में कामभावना को निर्धारित करने में काफी अहम है। इससे निकालने वाले स्राव को हार्मोन्स कहते हैं। महिलाओं की यौन ग्रंथि को ओवरी (Ovary) तथा पुरुष के यौन ग्रंथि को टेस्टीकल (testicle) कहा जाता है। टेस्टीज से निकलने वाले हार्मोन को एंडरोजेन्स कहा जाता है। जिसके मुख्य दो प्रकार हैं- टेस्टोस्ट्रोन (testosterone) तथा एण्ड्रोस्ट्रोन (anderosterone)। इससे पुरुषों में प्राथमिक तथा गौण यौन गुण का विकास होता है। यौवनावस्था आने पर इस हार्मोन्स की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। ओवरी से निकलने वाले हार्मोन्स को एस्ट्रोजेंस (estrogens) एवं प्रोजेस्ट्रोन (Progestrone) कहा जाता है। एस्ट्रोजेंस की मात्रा खून में बढ़ने से लड़कियों में गौण यौन गुण जैसे आवाज का महीन हो जाना शरीर के खास-खास अंगों पर घने बाल उग आना, स्तन का बढ़ जाना आदि गुणों का विकास होता है। प्रोजेस्ट्रोन द्वारा गर्भाशय को ठीक ढंग से कार्य करने में मदद मिलता है। जिसके परिणाम स्वरूप भ्रूण का विकास ठीक ढंग से होता है। क्लार्क ने एक प्रयोग मादा बन्दर पर किया जिसमें यौवनावस्था प्रारंभ होने के पहले ही उनकी यौन ग्रंथि को औपरेशन के द्वारा निकाल दिया गया, परिणाम में देखा गया कि इन बन्दरों में सामान्य मादा बन्दर की अपेक्षा यौन क्रिया में काफी कमी आ गयी थी।

अभ्यास प्रश्न

1. पुरुषों में कामुकता (Sex) को कौन- कौन सी अंत: स्रावी ग्रंथि प्रभावित करती हैं ?
2. महिलाओं में कामुकता (Sex) को कौन- कौन सी अंत: स्रावी ग्रंथि प्रभावित करती हैं ?

10.5 बालकों में कामुक (कामभाव) विकास के विभिन्न अवस्था

व्यक्तित्व के मनोकामुक उत्पत्ति के सिद्धांत के अंतर्गत विकास की विभिन्न मुख्य अवस्थाएँ पाँच होती है। इनका विस्तार मुख्यत: जन्म से लेकर प्रौढ़ा अवस्था तक होता है। इन विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं के संबंध में उल्लेखनीय एक तथ्य यह है कि ये समस्त अवस्थाएँ विकास प्रक्रम के एक प्रकार से मुख्य बिन्दु ही हैं, और वे स्वयं अपने में अलग-अलग कठोर व स्वतंत्र स्थितियाँ नहीं हैं। वास्तव में इनके संबंध में वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्येक स्थिति का विकास क्रमबद्ध रूप से शनै-शनै अग्रसर होता रहता है, व दो स्थितियों के मध्य में कोई अंतराल नहीं होता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक विकासशील स्थिति का उदमन अपनी पूर्वगामी स्थिति पर आधारित होता है तथा

विकास का प्रक्रम द्वादात्मक तथा गत्यात्मक रहता है; अथवा एक पश्चगामी स्थिति का उदमन अपनी पूर्वगामी स्थिति पर आधारित होता है। विकास के इन विभिन्न अवस्थाओं के मुख्य रूप इस प्रकार हैं-

1. मौखिक अवस्था (Oral Stage)- जन्म से 1 वर्ष तक।
2. गुदा अवस्था (Anal Stage)- 2 वर्ष से 3 वर्ष तक।
3. लैंगिक अवस्था (Phallic Stage)- 4 से 5 वर्ष।
4. सुषुप्तावस्था (Latency Stage)- 6 से 12 वर्ष तक।
5. जननिक अवस्था (Genital Stage)- 12 से 20 वर्ष तक।

मौखिक अवस्था (Oral Stage)- इसकी अवधि जन्म के समय से लेकर लगभग आगामी एक वर्ष तक होती है। नवजात शिशु प्राय: अशान्त, व्याकुल व आश्रय रहित होता है। वास्तव में नवजात शिशु के लिए जन्म से पूर्व की गर्भाशय की स्थिति अति निष्क्रिय, पराश्रित सुखप्रद व एक प्रकार से सुसमायोजित थी। परंतु नवजात शिशु अब अपनी पूर्व समायोजित सुपरिचित स्थिति से निकल कर एक विचित्र एवं अपरिचित स्थिति में पहुँचता है जो कि उसके लिए अत्यंत कठोर व कष्टकर होता है।

इस अवस्था में शिशु के लिए सर्वाधिक मुख्य क्रिया स्तनपान अथवा स्तन चूसन की होती है, इसलिए इस अवस्था को मौखिक चूषण की अवस्था कहा जाता है। नव शिशु की इस अवस्था में बहुत ही सीमित आवश्यकताएँ होती है। इसके अंतर्गत उसकी अधिकांश आवश्यकताएँ दूध पिलाने व सर्दी व गर्मी से बचाने की होती है व समय- समय पर मल मूत्र के त्याग से संबन्धित होती है। इस अवस्था में नव शिशु को सबसे अधिक आनंद की प्राप्ति माँ के वक्षस्थल पर स्तनपान से ही होती है। स्तनपान की क्रिया में नव शिशु को इतनी अधिक संतुष्टि मिलती है कि वह भूख की तृप्ति हो जाने के पश्चात भी स्तनपान करना चाहता है। वास्तव में इस अवस्था में नव शिशु कि समस्त क्रियाएँ सूखेप्सावृति (pleasure principle) द्वारा निर्धारित होती है, व उसकी लिबिडनल संतुष्टि का स्थल शिशु का मुख, जिह्वा व होंठ ही होते है, क्योकि इस काल में शिशु की कामुक संतुष्टि का एकमात्र साधन उसका मुख, जिह्वा व होठ ही होते हैं। उसमें स्तनपान की क्रिया अधिकांशत: इस काल में निर्विघ्न चलती रहती है। अत: नव शिशु की इस काल में मानसिक स्थिति एकमन वाली होती है। इसके अतिरिक्त शिशु की मानसिक स्थिति इस काल में स्वयं में मग्न एवं व लीन होने की होती है, तथा स्तनपान में उसकी कामुक संतुष्टि भी स्वत: ही होती रहती है। माँ व अन्य निकट के व्यक्तियों के प्रेमभाव से प्रेरित सुखद स्पर्श भी उसे अधिकांशत: अपने आप ही मिलता रहता है। शिशु को अपनी लिबिडीनल संतुष्टि के लिए व्यवहारिकत: स्वयं कुछ नहीं करना पड़ता है तथा उसकी लिबिडीनल (कामुक) संतुष्टियों का स्वरूप अधिकांशत: पराश्रित व स्वकामुक ही रहता है।

गुदा अवस्था (Anal Stage)- मनोकामुक सिद्धांत के अनुसार शिशु के विकास की दूसरी मुख्य अवस्था गुदा अवस्था होती है। इसकी अवधि शिशु के आयु के 2 वर्ष से 3 वर्ष की आयु तक होती है। यहाँ विकास की स्थितियों के संबंध में यह तथ्य फिर से उल्लेखनीय है कि मौखिक चूषण की स्थितियों के पश्चात गुदा स्थिति का उद्गम स्वत: ही प्रकट नहीं हो जाता, बल्कि उसके उद्गमन का प्रक्रम एक विशेष द्वंदात्मक व गत्यात्मक रूप से निर्धारित होता है। गुदा अवस्था की पूर्वगामी

तात्कालिक स्थिति मौखिक दशन की स्थिति होती है। इस स्थिति के संबंध में यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि इस स्थिति में स्तनपान से पृथक्करण के कारण शिशु अति कुंठित हो जाता है व इस कारण अब उसे अपनी कामुक संतुष्टि के लिए अन्य मार्ग व साधन खोजने के लिए विवश होना पड़ता है। अत: शिशु इस काल में अपनी मल विसर्जन की स्वाभाविक व नैसर्गिक प्रक्रिया में कामुक रुचि लेना प्रारम्भ कर देता है। मल-मूत्र परित्याग की प्रक्रिया में शिशु को न केवल शारीरिक तनावों से ही मुक्ति मिलती है बल्कि इसको सम्पन्न करने में उसे एक प्रकार की कामुक तृप्ति की प्रबल अनुभूति होती है। मलमूत्र परित्याग की प्रक्रिया में ऐसा सुखद अनुभव केवल शिशु को ही नहीं होता, बल्कि प्रौढ़ व्यक्ति भी इनका अनुभव कराते हैं। मनोकामुक सिद्धांत के अनुसार मलमूत्र विसर्जन की प्रक्रियाओं में शिशु को केवल शारीरिक तनावों से मुक्ति व मनोकामुक संतुष्टि की ही प्राप्ति नहीं होती है, बल्कि ऐसे विसर्जन के प्रक्रम के सफल रूप से सम्पन्न कर लेने में उसमें एक विशेष गर्व, शक्ति व व्यक्तिगत संप्राप्ति की भी विशिष्ट सुखद अनुभूति होती है। इसी भाव से प्रेरित होकर कभी-कभी शिशु अपने द्वारा त्यागे गए मल को ध्यान पूर्वक देखने लगता है एवं अवसर मिलते ही हाथ से भी उठाने लगता है। साधारण व्यक्ति अपने सामाजिक व सांस्कृतिक प्रवरोधों के कारण ऐसे तथ्य की भले ही अनदेखी कर जाये, परंतु मनोकामुक सिद्धांत में शिशु के ऐसे व्यवहार में व्यक्तित्व के शीलगुणों की उत्पत्ति से संबन्धित अनेक महत्वपूर्ण तत्व निहित रहते हैं। व्यक्तित्व के शीलगुणों की उत्पत्ति का संबंध जिस प्रकार गुदीय निष्कासन की प्रक्रिया से रहता है। ऐसे ही गुदीय अवधारण की स्थिति में भी रहता है। इन दोनों स्थितियों के विभिन्न अनुभवों व कुंठाओ के फलस्वरूप शिशु के भावी जीवन में अनेक गुदीय शीलगुणों की संरचना संभव होती है।

लैंगिक अवस्था (Phallic Stage)- इस अवस्था की अवधि बालक की लगभग चार से पाँच वर्ष तक की होती है। विकास की यह स्थिति भी अपने पूर्वगामी स्थिति की ही परिणति होती है अथवा इस स्थिति की उत्पत्ति गुदा अवधारण स्थिति की कुंठाओ और निराशाओं की ही परिणामी स्थिति होती है। शिशु गुदा अवधारण स्थिति में समाजीकरण के कठोर प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्तिगत स्वछता से संबन्धित नियंत्रण व नियमन के प्रतिबंधों से जब तंग व खिन्न हो उठता है जब ऐसी स्थिति से उत्पन्न संवेगात्मक मानसिक तनाव को दूर करने के लिए वह सहज रूप से ही अपनी सुग्राही जनन-इंद्रिय को स्पर्श करने लगता है। संवेदनशील जनन अंगों के स्पर्श करने में उसे एक विशेष मनोकामुक सुख व आनंद का अनुभव होता है और इस कारण बालक की इस क्रिया में निरंतर रुचि बढ़ती जाती है। इस स्थिति में मनोकामुक संतुष्टि का स्थल मुख्यत: लिंगीय अंग होता है, इसी कारण विकास की इस अवस्था को लैंगिक अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था के आरंभ में प्राय: बालक और बालिकाओं के लिए वस्त्र पहनने संबंधी विशेष प्रतिबंध नहीं होते अत: इस आयु में बालकों व बालिकाओं को एक दूसरे को नग्न रूप से देखने को प्राय: अवसर रहता है और अब वे लिंग भेद को स्पष्ट समझने लगता है। इससे पूर्व उनके लिए लड़कों व लड़कियों के भेद का आधार उनकी अलग-अलग वेश-भूषा रहती थी, परंतु अब उन्हें निशिचतत: यह ज्ञान होने लगता है कि बालकों के शिशन होता है और बालिकाओं में नहीं। इस कारण इस आयु में बालक प्राय: शिशन को बार-बार स्पर्श करने से सहलाने व पूर्ण आकार में प्रस्तुत और प्रदर्शन करने में एक विशेष पुरुषत्व भाव का आनन्द लेते देखे जा सकते हैं। इसी भाव से प्रेरित होकर बालक कभी-कभी मूत्र-त्याग प्रतियोगिता में भी रुचि लेते देखे जा सकते हैं। इसके अंतर्गत प्रत्येक बालक की यह तीव्र इच्छा रहती है ताकि वह

अपने मूत्र त्याग की परिधि को अधिक से अधिक विस्तृत कर सके और इस प्रक्रिया को अपेक्षाकृत अधिक देर तक रख कर अपने पुरुषत्व को स्थापित कर सके।

सुषुप्तावस्था (Latency Stage)- इस काल की अवधि बालक की पाँच वर्ष की आयु तक होती है । बालक के मनोकामुक विकास के प्रक्रम का यह वह चरण होता है जिसमें बालक की शैशवकालीन कामुकता का अधिकांश भाग दमित हो चुका होता है। यद्यपि बालक में कामुकता का ऐसा दमन अकस्मात न होकर शनै-शनै ही होता है। जिसमें उनकी कामुकता का स्वरूप मुख्यत: सुप्त या गुप्त ही होता है। इसी कारण कामुकता की अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से यह काल काम प्रसुप्ति का कहा जाता है। इस काल के संबंध में यह बता देना भी आवश्यक है कि इसका जैविक आधार नहीं है, बल्कि बालक के जीवन में इस काल का आधार मानव समाज व सभ्यता या संस्कृति है। इस काल में कामुकता के सुप्त हो जाने का प्राय: मुख्य कारण उसका दमन होता है। इसके साथ ही साथ बालक की कुछ कामुकता का स्वरूप प्रतिक्रिया विधान के कारण भी दमित हो जाती है और कुछ कामुकता उदत्त (sublimated) हो जाती है । इस कारण बालक की कामुकता का स्वरूप अधिकांशत: चेतन नहीं रहता। यहाँ यह नहीं है कि बालक कि कामुकता समाप्त हो जाती है, बल्कि प्रतिक्रिया विधान के कारण यह इस काल में अधिकांशत: भूमिगत अथवा सुप्त हो जाती है। ऐसे ही अंश मात्र में कामुकता के उदात्त हो जाने से अब बालक व बालिकाओं में इडिपसीय स्थिति जैसी माता पिता के प्रति घृणा कि भावना भी एक प्रकार से लुप्त हो जाती है, और अब वह उनके प्रति आदर व सम्मान प्रदर्शित करने लगते हैं एवं उन्हें आदर्श रूप समझने लगते हैं । इस काल में शैशवकालीन कामुकता के दमन का एक प्रभाव यह देखने को मिलता है कि अब बालकों का विरोधी लिंग के प्रति व्यवहारिकत: कोई आकर्षण नहीं रहता और इस कारण इस काल में अधिकांशत: बालक अन्य बालकों के साथ ही रहना पसंद करता है और बालिका भी स्वतंत्र रूप से अन्य अपनी आयु की बालिकाओं के साथ रहना व खेलना पसंद करती है।

जननिक अवस्था (Genital Stage)- मनोकामुक सिद्धांत के शब्दावली में किशोरावस्था को ही जननिक अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था की आरंभ बालक की लगभग बारह वर्ष की आयु से होता है। तथा इसका काल लगभग उसकी बीस वर्ष की आयु तक रहता है। इस स्थिति के आगमन के साथ ही बालक व बालिका का शारीरिक, मानसिक व संवेगात्मक विकास तीव्र रूप से होने लगता है। परंतु बालिका के विकास का क्रम अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से होता है तथा क्रम में बालिका समान्यत: बालक से दो वर्ष आगे ही रहता है। इस स्थिति में बालक की ऊँचाई व भार द्रुत गति से बढ़ाने लगते हैं। उसकी मांसपेशियाँ दृढ़ होने लगती है, मूँछें निकलने लगती है, तथा वाणी में कर्कशता आने लगती हैं। जबकि बालिका का स्तन व नितम्ब द्रुत गति से विकसित होने लगते हैं। मासिक धर्म का चक्र आरम्भ हो जाता है। तथा वाणी में नम्रता तथा मधुरता आने लगती है। लड़कों के व्यवहार में आक्रामकता तथा लड़कियों में लज्जा तथा विनीतता दृष्टिगोचर होने लगता है। इस अवस्था में लड़के एवं लड़कियां दोनों ही प्राय: दिवा स्वप्न में खोये होते हैं। लड़का अब अपने आपको एक भावी पुरुष के रूप में होने की कल्पना करने लगता है, जबकि लड़की अपनी कल्पना में एक नारी बनने के स्थिति को स्वीकार करने लगती हैं। समाज अभी भी उन्हें लड़के एवं लड़कियां ही समझता है। जबकि लड़का तथा लड़की ऐसी स्थिति के प्रति अपना घोर विरोध प्रकट करते हैं। किशोर मन अब काम भाव को समझने लगता है, तथा प्रेम संबंधी कहानियों, उपन्यास एवं फिल्मों में विशेष रुचि लेने लगता है, तथा उनमें चुंबन व आलिंगन की इच्छा उठने लगती है। परन्तु इस काल

में ऐसी कामुक इच्छाओं की आंशिक पूर्ति केवल इस समय से संबन्धित विभिन्न खेलों की गतिविधियों के अंतर्गत ही संभव रहती है। यद्यपि इस काल में लिंग भेद स्पष्ट होने लगते हैं, परन्तु फिर भी आरम्भ में कामुकता का स्वरूप समलिंगी ही रहता है। वस्तुत: इस काल में बालक व बालिकाओं में अपनी स्वंय की कामुकता से ही एक प्रकार से संतुष्ट रहने का विचार प्रमुख रहता है, व इस समय प्रेम विषय की ओर उसका ध्यान अधिक नहीं रहता हैं। इस काल में हस्त मैथुन की प्रवृति लगभग सार्वभौमिक रूप से दृष्टिगोचर होती है, जबकि लड़कियों में ऐसी प्रवृतियों का होना एक प्रकार का अपबाद ही होता है। लड़कों में हस्त मैथुन का यहाँ आधार प्राय: उनके जनन संबंधी अंगों का स्वरूप आंतरिक व गुप्त रहता है। अत: ऐसे अंगों के प्रति स्पर्श व हस्तगन के प्रति बालिका में स्वाभाविकत: आकर्षित व केन्द्रित होने लगता है और अब उसमें मुखीय, गुदीय, व लैंगिक अवस्थाओं से संबन्धित विभिन्न कामुक स्थलों की ओर सहज रूप में अग्रसर होने लगता है। परन्तु विरोधी लिंग के प्रति उमड़ते हुए इस काम भाव की अभिव्यक्ति की अनुमति समाज तब तक नहीं देता, जब किशोर साधारणत: अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों को संभालने के लिए आवश्यक धन व व्यावसायिक प्रशिक्षण अर्जित नहीं कर लेता।

अभ्यास प्रश्न

1. बालक में कामुक विकास के विभिन्न अवस्था कौन-कौन से हैं ?
2. जननिक अवस्था (Genital Stage) क्या है ?

10.6 किशोरावस्था में सहपाठियों के साथ संबंध

किशोर बालकों का अधिकतर समय घर से बाहर अपने समकक्षियों या साथियों के साथ बीतता है। वे अपना पहनावा, अभिरुचि, वेश भूषा, मनोवृति ठीक वैसा ही रखना पसंद करते हैं जैसा की उनके अन्य साथीगण पसंद करते हैं। लेकिन, किशोरावस्था के अंतिम सालों में या संगी साथियों के समूह का यह प्रभाव समाप्त होने लगता है क्योंकि वे अपना एक स्वतंत्र परिचय (independent identity) बनाने में अधिक रुचि लेने लगते हैं। किशोरावस्था में किशोरों के सामाजिक मनोवृति तथा व्यवहार में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं। इस अवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है वह है विषमलिंगी सम्बन्धों (heterosexual relationship) में परिवर्तन। इस अवस्था के शुरुआत तक बालक एवं बालिकाएँ अपने अपने लिंग के व्यक्तियों के प्रति अधिक आकर्षित रहते हैं। परंतु इस अवस्था के उत्तर काल में किशोरों की अभिरुचि एवं आकर्षण किशोरियों में तथा किशोरियों का किशोरों में अधिक बढ़ जाता हैं। अब वे दोनों एक दूसरे के साथ मिलजुल कर सामाजिक क्रियाओं में हाथ बाँटना अधिक पसंद करते हैं। फलस्वरूप इस अवस्था में व्यक्तियों में सामाजिक सूझ तथा सामाजिक सहभागिता अधिक उत्पन्न हो जाती है। किशोरावस्था में बालकों में नया सामाजिक समूहन भी देखने को मिलता है। किशोरों का सामाजिक समूहन किशोरियों के समाजिक समूहन से समान्यत: बड़ा एवं स्पष्ट रूप से परिभाषित होता है। किशोरों में किसी संगठित समूह का सदस्य बनने की प्रवृति बढ़ जाती है और वे उसका सदस्य बनकर अपनी समाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहते हैं। यदि इस तरह का संगठित समूह का सदस्य बनने से भी उनकी आवश्यकता पूरी नहीं होती है तो वे सामान्य लिंग के व्यक्तियों के साथ मिलकर एक विशेष टोली का निर्माण करते हैं और कुछ समाज विरोधी व्यवहार कर के अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कराते हैं। किशोरावस्था में दोस्ती का आधार अभिरुचि एवं मूल्य होता है। इस अवस्था में किशोर उन्हीं को अपना दोस्त

बनाता है जिनकी अभिरुचियाँ तथा मूल्य उनकी अभिरुचियों तथा मूल्य के समान होते हैं। जो उन्हें सही सही समझता है तथा उनमें सुरक्षा की भावना उत्पन्न करता है। तथा जिन पर वे तहे दिल से विश्वास कर सकते हैं ताकि उनके साथ वे उन सभी विषयों की चर्चा कर सके जिन पर सामान्यत: वे अपने माता-पिता या शिक्षक से बातचीत नहीं कर सकते। जोसेफ (Joseph, 1969) के अनुसार किशोरावस्था में बालक एवं बालिका दोस्ती उन्हीं से करता है जिन पर उन्हें विश्वास होता है, जिनसे वे खुलकर बातचीत कर सकें तथा जिन पर वे तहे दिल से भरोसा कर सके। किशोरावस्था में लिंग संबंधी चेतना (sex consciousness) तीव्र हो जाती हैं। फलस्वरूप लड़के या लड़कियां एक दूसरे के प्रति आकर्षण का अनुभव करते हैं। तरह तरह के वेष-भूषा, केश विन्यास, हाव भाव, द्वारा वे विपरीत लिंगों के सदस्यों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं। उनके मन में एक दूसरे के निकट आने, मित्र बनाने यहाँ तक की यौन संबंध बनाने की लालसा उत्पन्न होने लगती हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. विषमलिंगी सम्बन्ध क्या है?

10.7 किशोरावस्था में बालकों का समाज एवं परिवार से सम्बन्ध

इरिक्सन के अनुसार किशोरावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें किशोरों को विभिन्न तरह की सामाजिक मांगों तथा सामाजिक भूमिकाओं का सामना करना पड़ता है। इन भूमिकाओं को निभाने में तथा सामाजिक मांगों को पूरा करने में किशोरों में दो तरह के भाव उत्पन्न होते हैं। धनात्मक छोर पर अहम पहचान का भाव उत्पन्न होता है तथा ऋणात्मक छोड़ पर भूमिका सभ्रांति का भाव उत्पन्न होता है। किशोरावस्था में व्यक्ति अपने वैयक्तिकता को समझने लगता है। वह इस बात से अवगत हो जाता है कि अपने भाग्य को नियंत्रित करने कि शक्ति है, तथा अपने लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं को ठीक ढंग से परिभाषित कर अपनी संतुष्टि कर सकता है। वह अपना स्थान समाज में बना सकता हैं क्योंकि उसके पास क्षमता है। इन सभी तरह के भावों को मिलाकर इरिक्सन उन्हें एक पद अहम पहचान की भाव की संज्ञा दी। अहम पहचान की भाव की उत्पत्ति के लिए इरिक्सन ने उपयुक्त यौन भूमिकाओं को भी महत्वपूर्ण माना है। परन्तु जब किशोर अपने बाल्यावस्था के कटु अनुभवों या वर्तमान प्रतिकूल सामाजिक वातावरण के कारण अहम पहचान का भाव उत्पन्न नहीं कर पाते हैं। तो उनमें "पहचान संकट" या जिसे "भूमिका संभ्रांति" भी कहते हैं, की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में किशोर पथभ्रष्ट हो जाते हैं, और वे आगे की शिक्षा को रोक देते हैं। उनमें हीनता, बेकारी, उद्देश्यहीनता तथा व्यक्तिगत विघटन जैसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है इरिक्सन के अनुसार किशोर अपराधों की मूल कारण भी यही भूमिका संभ्रांति की स्थिति का उत्पन्न होना होता है। जो किशोर अपने वर्ग की पढ़ाई नागा करके विभिन्न तरह के अपराधों में अपने को लगते हैं, उनमें भूमिका संभ्रांति अपने चरम पर होती हैं। परन्तु कुछ किशोर ऐसे होते हैं जो नई सामाजिक अनुभूतियाँ प्राप्त करने के बाद चेत जाते हैं और वे अनुभव करने लगते हैं कि वे पथभ्रष्ट हो गए थे। दूसरे शब्दों में वे अहम पहचान तथा भूमिका संभ्रांति से उत्पन्न संकट से निबट लेते हैं। फलस्वरूप वे सामाजिक नियमों एवं आदर्शों के अनुकूल व्यवहार करना सीख लेते हैं। इसे इरिक्सन ने कर्तव्यपरायणता कि संज्ञा दी है।

10.8 सारांश

किशोरावस्था मनुष्य के जीवन का बसंतकाल माना गया है। यह काल बारह से उन्नीस वर्ष तक रहता है, परंतु किसी किसी व्यक्ति में यह बाईस वर्ष तक चला जाता है। यह काल भी सभी प्रकार की मानसिक शक्तियों के विकास का समय है। भावों के विकास के साथ साथ बालक की कल्पना का विकास होता है। उसमें सभी प्रकार के सौंदर्य की रुचि उत्पन्न होती है और बालक इसी समय नए नए और ऊँचे ऊँचे आदर्शों को अपनाता है। बालक भविष्य में जो कुछ होता है, उसकी पूरी रूपरेखा उसकी किशोरावस्था में बन जाती है। कामुकता की अनुभूति बालक को 13 वर्ष से ही होने लगती है। इसका कारण उसके शरीर में स्थित ग्रंथियों का स्राव होता है। अतएव बहुत से किशोर बालक अनेक प्रकार की कामुक क्रियाएँ अनायास ही करने लगते हैं।

फ्रॉयड के अनुसार कामभाव अथवा सैक्स का अर्थ अत्यधिक व्यापक विस्तृत है। उनके अनुसार व्यक्तियों के वे समस्त पारस्परिक सुखद व्यवहार, मधुर संपर्क व स्पर्श, विनोदपूर्ण सम्प्रेषण व रसिक संवाद आदि काम भाव या कामुकता का ही प्रतीक होते हैं, जिनसे व्यक्तियों की आनंदमयी व विलासमयी अंतरनोदों की पूर्ति व तृप्ति होती हैं। इसी प्रकार वे समस्त विषय वस्तुएं, क्रियाएँ व प्रतिक्रियाएँ भी काम भाव की ही प्रतीक व परिचायक होती है, जो की व्यक्तियों के सुख भोग व विषय सुख की साधन होती है। इस व्यापक अर्थ में एक वह स्थूल शारीरिक व आंगिक क्रिया भी काम व्हाव जन्य होती है, जिसके सम्पन्न करने से व्यक्ति को एक प्रकार की आंतरागी तनाव (visceral tension) की मुक्ति के साथ-साथ एक प्रकार की मानसिक तृप्ति भी होती है।

व्यक्तित्व के मनोकामुक उत्पत्ति के सिद्धांत के अंतर्गत विकास कि विभिन्न मुख्य अवस्थाएँ पाँच होती है। इनका विस्तार मुख्यत: जन्म से लेकर प्रौढ़ा अवस्था तक होती है। इन विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं के संबंध में उल्लेखनीय एक तथ्य यह है कि ये समस्त अवस्थाएँ विकास प्रक्रम के एक प्रकार से मुख्य बिन्दु ही हैं, और वे स्वयं अपने में अलग-अलग कठोर व स्वतंत्र स्थितियाँ नहीं हैं। वास्तव में इनके संबंध में वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्येक स्थिति का विकास क्रमबद्ध रूप से शनै-शनै अग्रसर होता रहता है, व दो स्थितियों के मध्य में कोई अंतराल नहीं होता है। विकास के इन विभिन्न अवस्थाओं के मुख्य रूप इस प्रकार हैं- **मौखिक अवस्था, गुदा अवस्था, लैंगिक अवस्था, सुषुप्तावस्था, जननिक अवस्था।**

10.9 शब्दार्थ

- **समलिंगी** - एक ही लिंग से संबन्धित
- **पूर्वगामी** - किसी क्रिया के पूर्व में होने वाले कार्य
- **सार्वभौमिक** - प्रत्येक समय
- **क्रमबद्ध** - एक के बाद एक
- **शैशवकालीन** - मानव विकास की एक अवस्था

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. कामुकता (Sex) से आप क्या समझते हैं ? कामुकता को प्रभावित करने वाले अंत: स्रावी ग्रंथियों का वर्णन करें।
2. बालकों में कामुक (कामभाव) विकास के विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करें।
3. किशोरावस्था में बालकों के सहपाठियों के साथ सबन्धों पर एक निबन्ध लिखें।

10.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- सिंह, अरुण कुमार, (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना।
- सिंह, अरुण कुमार, (2012) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- मंगल, एस० के०, (2012) शिक्षा मनोविज्ञान, पी० एच० आई०, नई दिल्ली।
- सिंह, राजेंद्र प्रसाद (2014) विकासात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डी० एन० एवं वर्मा, प्रीति (2012) बाल मनोविज्ञान : बाल विकास, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- हर्लोक, ए० बी०(2002) विकास मनोविज्ञान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- एन० सी० ई० आर० टी०(2007) मनोविज्ञान, नई दिल्ली।
- कपिल, एच० के० (2007) अपसमान्य मनोविज्ञान, एच० पी० भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- अस्थाना मधु, वर्मा, किरण बाला (2008) व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली|

इकाई -11

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था

Early Adulthood

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उददेश्य

11.3 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था

11.4 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की विशेषताएँ

11.4.1 समायोजन की अवस्था

11.4.2 नैतिक विकास

11.4.3 शारीरिक परिपक्वता

11.4.4 व्यक्तिवाद और सृजनात्मकता

11.4.5 गति विकास

11.4.6 बौद्धिक वृद्धि

11.5 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में विकासात्मक कार्य

11.5.1 विकासात्मक कार्यों से अभिप्राय

11.5.2 क्षमता के कौशल का विकास

11.5.3 संवेगात्मक ज्ञान की प्राप्ति

11.6 व्यक्तित्व

11.6.1 व्यक्तित्व के पहलू

11.6.2 व्यक्तित्व की विशेषताएँ

11.6.3 परिपक्व व्यक्तित्व

11.7 सामाजिक विकास

11.7.1 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

11.7.2 मानव का सामाजिक विकास

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.12 संदर्भ ग्रन्थ

11.1 प्रस्तावना

विकास की प्रक्रिया में बालक कुछ अवस्थाओं में से गुजरता है। कोल (Cole, p. 4) ने प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था को महत्त्वपूर्ण अवस्था के रूप में वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था (Early adulthood) का काल 21 से 34 वर्ष का माना है । प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में लोग व्यवसाय, शिक्षा, सम्बन्ध व स्वतन्त्रता को जानने में सक्षम हो जाते हैं। वे जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए जीवन लक्ष्यों व मूल्यों की पूरी जानकारी रखते हैं।

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में लोग कैरियर निर्णय कर सकते हैं। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था के विकास कार्यों में जीवन साथी का चुनाव, परिवार प्रारम्भ करना, घर का प्रबन्ध करना, व्यवसाय प्रारम्भ करना, नागरिक और धार्मिक समूह में शामिल होना व सामाजिक समूह निर्माण इत्यादि सम्मिलित हैं। प्रस्तुत इकाई में आप प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की विशेषताएं, प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में विकास कार्य व्यक्तित्व व सामाजिक विकास का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगें।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था का अर्थ बता सकेगें एवं परिभाषित कर सकेगें।
- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की विशेषताओं को बता सकेगें।
- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था के विकास कार्यों को बता सकेगें।
- व्यक्तित्व व सामाजिक विकास को बता सकेगें।

11.3 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था (Early Adulthood)

जीवनकाल प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था कहलाता है। यह जीवनकाल 20 और 35 वर्ष के बीच का काल है । इस काल में जीवन सक्रिय व स्वस्थ रहता है और व्यक्ति दोस्ती, रोमांस, कैरियर पर ध्यान केन्द्रित करता है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति दीर्घकालिक सम्बन्ध बनाने में सक्षम होते हैं। यह अवस्था "Setting down age" है । इसमें लापरवाही के दिन खत्म हो जाते हैं । प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था को 'प्रजनन आयु' (Reproductive Age) भी कहा जाता है। इस अवस्था में मूल्यों का

परिवर्तन हो जाता है । प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था एक व्यक्ति के जीवन के बहुत ही मूल्यवान आधार स्तम्भ है । इस काल में आत्म गौरव की भावना बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है । जैसे-जैसे बालक की आयु में वृद्धि होती है । वह प्रौढावस्था में प्रवेश कर जाता है, उसमें कई दृष्टि से परिपक्वता (Maturity) आ जाती है।

11.4 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की विशेषतायें (Characteristics of early adulthood)

प्रौढ़ावस्था जीवन के चरणों अथवा कालों में सबसे लम्बी होती है । इसकी विशेषता यह है कि इस काल में सर्वांगी परिपक्वता आती है जैसे कि शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक । इस अवस्था में व्यक्ति समाज का एक कार्यकर्ता सदस्य बन जाता है और सामाजिक तथा नैतिक आदर्शों के अनुसार व्यवहार करता है । उसे अपने आप पर विश्वास होता है और वह अपने निर्णयों तथा कामों के उत्तरदायित्व का बीड़ा उठाता है । उसमें तर्कशक्ति तथा बौद्धिक ढंग से सोचने की योग्यता आ जाती हैं और वह संसार के साथ अधिकतम समायोजन प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है ।

20 से 35 वर्ष की आयु सीमा को अगर ध्यान में रखकर चला जाये तो एक प्रौढ़ और प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में विकास की गति तथा व्यवहार में हमें निम्न विशेषताओं के दर्शन हो सकते हैं ।

11.4.1 समायोजन की अवस्था (Period of Adjustment)

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था समायोजन की अवस्था है । मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसे अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय समाज हित को भी ध्यान में रखना होता है । कभी-कभी व्यक्तिगत इच्छाओं को पूरा करने में सामाजिक अथवा भौतिक बाधाएं व्यक्ति को असमंजस में डाल देती हैं । इस स्थिति में व्यक्ति समस्या का समाधान करने के लिए परिस्थितियों का विश्ले षण करके अपनी क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए कोई संतो षजनक निर्णय लेता है और अपने को अनुकूल स्थिति में पाता है ।

इस अवस्था में व्यक्ति अपनी वैयक्तिक, जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का भौतिक वातावरण की आवश्यकताओं के साथ कम या अधिक समन्वय करता है । समायोजित व्यक्ति मानसिक दबाव, अवसाद, चिन्ता एवं अन्य मानसिक विकारों से ग्रस्त नहीं होता है । इस अवस्था में व्यक्ति की व्यावसायिक तथा सामाजिक कार्य दक्षता उच्च स्तर की होती है तथा समायोजन करके प्रौढ़ आवश्यकतानुसार अपनी इच्छाओं, महत्त्वकांक्षाओं आदि को सामाजिक तथा भौतिक वातावरण के अनुकूल परिवर्तित करके समन्वय स्थापित करने में समर्थ होता है ।

11.4.2 नैतिक विकास (Moral Development)

एक व्यक्ति शारीरिक रूप से सुन्दर और स्वस्थ है, मानसिक रूप से भी सबल है, सुन्दर भाषा बोल सकता है तथा सुन्दर विचार बता सकता है । प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में ये सब गुण प्रौढ़ में होते हैं । इस

अवस्था में नैतिक विकास का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। इस काल में प्रौढ़ सही और गलत, न्याय और अन्याय, भलाई और बुराई, आचार और दुराचार, सुकर्म और दुष्कर्म, पाप और पुण्य में अन्तर समझने में सक्षम हो जाता है तथा उन्हीं कार्यों की ओर उन्मुख होता है जो उसके और समाज के लिए हितकारी हो। इस अवस्था में प्रौढ़ में स्वावलम्बन, आत्म चेतना, संवेदनशीलता, परमार्थता, व्यापकता, परिश्रमशीलता, सहनशीलता, सज्जनता, सच्चरित्रता, ईमानदारी व आध्यात्मिकता आदि गुणों का विकास हो जाता है। इस अवस्था में प्रौढ़ में उन गुणों का विकास होता है। जिनसे प्रेरित होकर वह अपने हित अथवा स्वार्थ का त्याग करते हुए जनहित के लिए कार्य करता है। व्यक्ति परिपक्वता ग्रहण करने के पश्चात इस नैतिक व चारित्रिक विकास की चरम सीमा तक पहुँच पाता है। वह प्रत्येक कार्य के परिणाम जनहित के आधार पर आंकलन करता है और फिर सोच समझकर निर्णय लेता है।

11.4.3 शारीरिक परिपक्वता (Physical Maturity)

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास होता है। यह एक प्रसिद्ध कथन है। शारीरिक विकास व्यवहार को प्रभावित करता है और व्यवहार शारीरिक विकास को प्रभावित करता है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति का शरीर परिपक्व हो जाता है। प्रौढ़ की ऊँचाई, वजन शरीर के अंगों का अनुपातिक विकास, स्नायविक प्रणाली (Nervous System) का विकास तथा आन्तरिक अंगों का परिवर्तन हो जाता है।

वुल्फ तथा वुल्फ के अनुसार परिपक्वता व्यक्ति के शारीरिक अंगों एवं मानसिक क्षमताओं में होने वाले क्रमिक विकास की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के कारण ही प्रौढ़ों के शारीरिक अवयवों में नवीन क्रियाओं को सीखने की क्षमता आती है। उन्होंने परिपक्वता को इसी रूप में परिभाषित किया है- परिपक्वता का अर्थ विकास की उस निश्चित अवस्था से है जिसमें बच्चे कार्य करने योग्य हो जाते हैं जिन्हें वे इस अवस्था से पूर्व नहीं कर सकते थे। इस अवस्था में शारीरिक विकास और परिपक्वता पूर्ण हो जाती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था और किशोरावस्था में प्राप्त मूल्य इस व्यवस्था में आकर परिवर्तित हो जाते हैं।

11.4.4 व्यक्तिवाद और सृजनात्मकता (Individualism and Creativity)

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था, व्यक्तिवाद और सृजनात्मकता की अवस्था है। इसमें प्रौढ़ स्वतन्त्रता एवं व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता पर बल देता है और उसका समर्थन करता है। व्यक्तिवादी चिंतन की यह दूसरी धारा इस सिद्धांत को व्यक्तिगत लालच की सीमाओं से निकालकर उसका विस्तार व्यक्तिगत आत्म विकास तक करती है। इस अवस्था में व्यक्ति उस क्षमता की प्राप्ति करता है। जो उसे कुछ नयी खोज करने, किसी समस्या के समाधान हेतु परम्परागत विधियों से हटकर अनेक प्रकार की नवीन विधियों का प्रयोग करने, मौलिक रूप से चिन्तन करने तथा समाज के उपयोग हेतु नवीन उत्पादों का सृजन करने में सहायता प्रदान करती है। व्यक्ति को सृजनात्मकता से मौलिक

(Original) परिणाम प्राप्त होते हैं। जो व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए लाभप्रद होते हैं। सृजनशील व्यक्ति किसी भी समस्या, घटना तथा परिदृश्य आदि का अवलोकन बड़ी संवेदनशीलता से करता है। वह प्रत्येक चीज को इस दृष्टि से देखता है कि उसमें क्या कमियाँ हैं या क्या अनोखापन है और इसमें और क्या परिवर्तन (Modification) किये जा सकते हैं।

11.4.5 गति विकास (Motor Development)

प्रौढ़ गति-क्रियाओं का प्रयोग करता है, खोज करता है और अपनी अधिकांश जिज्ञासा को संतुष्ट करता है। गति व्यवहार प्रौढ़ के अधिकांश सामाजिक सम्यकों (Social Contracts) का वाहन है और उसे दूसरों को सहयोग देने का साधन है। प्रौढ़ों के मनोवैज्ञानिक समायोजन (Psychological Adjustment) में गति योग्यताओं का विकास महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में सिर के क्षेत्र में गति का संतुलित विकास सम्पूर्ण हो जाता है। व्यक्ति आत्म-पोषण (Self-Feeding) करने में सफल हो जाता है।

11.4.6 बौद्धिक वृद्धि (Intellectual Growth)

पियाजे ने जिस विचारधारा को किया उसे पियाजे के मानसिक अथवा बौद्धिक विकास के सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। उसने निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण संप्रत्ययों की व्याख्या की हैं-

1- प्रौढ़ का मानसिक संगठन या मानसिक क्षमताएँ ही उसकी संज्ञानात्मक संरचनाएं हैं।

2- पियाजे ने स्कीमा शब्द का प्रयोग ऐसी मानसिक संरचना के लिए किया है,जिसका सामान्यीकरण किया जा सके।

3- प्रौढ़ावस्था में अनुकूलन प्रौढ़ों की वह जन्मजात प्रकृति है जो उसे वातावरण के साथ सामंजस्य करने के लिए प्रेरित करती है।

4- आत्मसातकरण से तात्पर्य उस मानसिक क्रिया से हैं जिसके द्वारा व्यक्ति नये अनुभवों का पूर्वज्ञान के साथ तालमेंल बैठाकर उसे अपनी बौद्धिक संरचना में व्यवस्थित करता है।

5- समायोजन की प्रक्रिया में व्यक्ति जब कोई नवीन अनुभव प्राप्त करता है वह अपनी पूर्ववर्ती बौद्धिक संरचना में इस उद्देश्य से परिवर्तन, सुधार अथवा विस्तार करता है ताकि वह अनुभव को उचित ढंग से विद्यमान बौद्धिक संरचना में व्यवस्थित कर सके।

6- पियाजे के अनुसार विकेन्द्रीकरण व्यक्ति की उस क्षमता को कहते हैं जिसके द्वारा वह किसी वस्तु या चीज के बारे में वस्तुनि"ठ तथा वास्तविक ढंग से चिन्तन मनन कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न-1

1- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की विशेषता यह है कि इस काल में .....आती हैं।

2- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में .....व्यक्ति किसी भी समस्या, घटना तथा परिदृश्य आदि का अवलोकन बड़ी संवेदनशीलता से करता है।

3- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति अपनी 1, 2, 3 तथा 4 आवश्यकताओं का भौतिक वातावरण की आवश्यकताओं के साथ कम या अधिक समन्वय करता है।

11.5 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में विकासात्मक कार्य (Development Tasks in Early Adulthood)

11.5.1 विकासात्मक कार्यों से अभिप्राय (Meaning of the Term Development Tasks)

विकासात्मक कार्य, इस संप्रत्यय तथा पदावली का सबसे पहले प्रयोग अमेरिका की शिकागो यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर रॉबर्ट हेविग हस्ट ने इसे निम्न प्रकार से परिभाषित करते हुए किया था-

''विकासात्मक कार्य से अभिप्राय उस कार्य से है जिसे व्यक्ति अपने जीवन की किसी एक अवस्था में करते हुए देखा जा सकता है। इन कार्यों का सफल सम्पादन जहाँ से उसे आनंद प्रदान करके आगे के विकासात्मक कार्यों के सफल सम्पादन की ओर ले जाता है, वहाँ इनके सम्पादन में मिली असफलता उन्हे विषादमय बनाकर आगामी कार्यों के सम्पादन में कठिनाई खड़ी कर देती है।''

1- जैसे-जैसे बालक की आयु में वृद्धि होती है उसमें कई दृष्टि से परिपक्वता आती जाती है। जो उसके ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं भावनात्मक व्यवहार में अपने आप झलकने लगती है।

2- बहुत से विकासात्मक कार्य ऐसे होते हैं जिनकी आवश्यकता आयु बढ़ने के साथ-साथ अपने भौतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश में अपने आपको समायोजित होने के लिए प्रौढ़ को पड़ती रहती है। विकास की प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था के विकासात्मक कार्य निम्नलिखित हैं।

11.5.2 क्षमता के कौशल का विकास (Developing Skills of Competence)

जीवन में सही ढंग से कार्य करना व्यक्ति की क्षमता है। इस अवस्था में व्यवहार की पहचान, मूल्यांकन और उचित मार्गदर्शन मिलता है। व्यक्ति व्यवहारात्मक, प्रबन्धन, सृजनात्मकता, व्यापकता, नौकरी का ज्ञान, तकनीकी ज्ञान, कार्य की गुणवता, समूह-कार्य, सम्प्रेषण, समस्या-समाधान, लचीलापन, संगठन, गुणवता नियंत्रण, नवाचार, इत्यादि गुण होते हैं।

संवेगात्मक विकास मानव वृद्धि और विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। प्रेम, क्रोध, भय, घृणा आदि संवेग बालक के व्यक्तित्व और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रौढ़ का संवेगात्मक व्यवहार केवल उसकी शारीरिक वृद्धि और विकास को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक और सौन्दर्यबोध के विकास पर भी यथेष्ठ प्रभाव डालता है। संवेगात्मक अनुभूतियों के साथ कोई न कोई मूल प्रवृत्ति अथवा मूलभूत आवश्यकता जुड़ी रहती है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में संवेगात्मक विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

इस अवस्था में प्राय: सभी व्यक्तियों में संवेगात्मक रूप में परिपक्वता आ जाती है। संक्षिप्त रूप से उस व्यक्ति को संवेगात्मक रूप से परिपक्व कहा जा सकता है। जो अपने संवेगों पर उचित अंकुश रखते हुए उन्हें भली-भान्ति अभिव्यक्त कर सके। ऐसे व्यक्ति में कुछ निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं।

1- उसके व्यवहार में प्राय: सभी संवेगों के दर्शन हो सकते हैं और उनके द्वारा कब किस संवेग की अभिव्यक्ति हो रही है, उसका ज्ञान भी भली-भांति हो सकता है।

2- संवेगों की अभिव्यक्ति में भी पर्याप्त सुधार हो जाता है। अब वह अपने संवेगों की अभिव्यक्ति समाज के नियम और आचरण संहिता का ध्यान रखकर करने लगता है।

3- अब वह कोरी आदर्शवादिता के चक्कर में न पड़कर अपना दृष्टिकोण अधिक से अधिक यथार्थवादी बनाने का प्रयत्न करता है।

4- उसमें पर्याप्त आत्म सम्मान और स्वाभिमान होता है।

5- प्रौढ़ों के संवेगात्मक व्यवहार में काफी संयम पाया जाता है। वे ज्वालामुखी पर्वतों की भांति अचानक नहीं फट पड़ते।

इस प्रकार से प्रत्येक समाज और सांस्कृतिक समूह अपने-अपने बालकों से उनकी आयु और जीवनकाल के हिसाब से विशेष प्रकार के विकासात्मक कार्यों के सम्पादन की अपेक्षा करता है और इसी दृष्टिकोण से इन कार्यों के सम्पादन हेतु उन्हें आवश्यक रूप से तैयार करने के लिए विभिन्न प्रकार की औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा का भी प्रबन्ध करता है। इस तरह से प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था तक के कार्यों की अपेक्षित कार्यों की सूची किसी समाज या समूह विशेष द्वारा अपने सदस्यों को जारी की जा सकती है। बल्कि प्रौढ़ों तथा वृद्धों के व्यवहार को समाज या समूह अपेक्षित बनाने हेतु ऐसे कार्य और व्यवहार क्रियाओं को निश्चित किया जा सकता है जिनसे कि उनकी अपने आप से और परिवेश से समायोजन में उचित सहायता की जा सके।

अभ्यास प्रश्न-2

1- जैसे-जैसे बालक की आयु में वृद्धि होती हैं उसमें कई दृष्टि से .....आती-जाती हैं।

2- संवेगात्मक विकास मानव .....का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

3- संवेगात्मक अनुभूतियों के साथ कोई न कोई .....मूल आवश्यकता जुड़ी रहती है।

4- प्रौढ़ों के .....में काफी संयम पाया जाता है। वे ज्वालामुखी पर्वतों की भांति अचानक नहीं फट पड़ते।

11.6 व्यक्तित्व (Personality)

सामान्यत: व्यक्तित्व से अभिप्राय व्यक्ति के रूप, रंग, कद, लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, पतलापन अर्थात् शारीरिक संरचना तथा मृदुभा षी होने से लगाया जाता है। शिक्षा जगत में 'व्यक्तित्व' शब्द अपना

एक विशेष स्थान रखता है। शिक्षा अपने संपूर्ण रूप में बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास से अपना प्रयोजन रखती है। मनोवैज्ञानिक भाषा में व्यक्ति अपने आप में जो कुछ भी है वही उसका व्यक्तित्व है। अपने प्रति और दूसरों के प्रति किए जाने वाले व्यवहार का यह एक समग्र चित्र है। इसमें व्यक्ति के पास शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से है जो कुछ भी होता है वह सभी सम्मिलित होता है।

आर. बी. कैटल- ''व्यक्तित्व वह है, जिसके द्वारा हम यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि कोई व्यक्ति किस परिस्थिति में क्या करेगा।

जे.बी. वाटसन- ''विश्वसनीय सूचना प्राप्त करने के दृष्टिकोण से काफी लम्बे समय तक वास्तविक निरीक्षण या अवलोकन करने के पश्चात व्यक्ति में जो भी क्रियाएँ अथवा व्यवहार का जो भी रूप पाया जाता है, उसे उसका व्यक्तित्व कहा जाता है।''

11.6.1 व्यक्तित्व के पहलू (Aspects of Personality)

गैरिसन तथा अन्य ने व्यक्तित्व के अधोलिखित पहलू बताये हैं-

1- क्रियात्मक पहलू

2- सामाजिक पहलू

3- कारण सम्बन्धी पहलू

4- अन्य पहलू

1- **क्रियात्मक पहलू (Action Aspect) -** व्यक्तित्व के इस पहलू का सम्बन्ध मानव की क्रियाओं से है। ये क्रियायें उसकी भावुकता, शान्ति, विनोदप्रियता, मानसिक श्रेष्ठता आदि को व्यक्त करती है।

2- **सामाजिक पहलू (Social Aspect)** -व्यक्तित्व के इस पहलू का सम्बन्ध मानव द्वारा दूसरों पर डाले जाने वाले सामाजिक प्रभाव से है। इस पहलू में उन सब बातों का समावेश हो जाता है, जिनके कारण मानव दूसरों पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव डालता है।

3- **कारण सम्बन्धी पहलू (Cause Aspect)** -व्यक्तित्व के इस पहलू का सम्बन्ध मानव के सामाजिक या असामाजिक कार्यों के कारणों और उन कार्यों के प्रति लोगों की प्रतिक्रियाओं से है। यदि उसके कार्य अच्छे हैं, तो लोग उसे पसन्द करते हैं, अन्यथा नहीं।

4- **अन्य पहलू (Other Aspects)** - व्यक्तित्व के अन्य पहलू है- दूसरों पर हमारा प्रभाव, हमारे जीवन में होने वाली बातों और घटनाओं का हम पर प्रभाव, हमारे गम्भीर विचार, भावनायें और अभिवृत्तियाँ।

11-6-2 व्यक्तित्व की विशेषताएँ (Characterstics of Personality)

क) **आत्म चेतना (Self-Consciousness)** -इसी विशेषता के कारण मानव को सब जीवधारियों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता है और उसके व्यक्तित्व की उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है।

ख) **सामंजस्य (Adjustability)** - व्यक्ति को न केवल बाह्य वातावरण से बल्कि अपने स्वयं के आन्तरिक जीवन से भी सामंजस्य करना पड़ता है। सामंजस्य करने के कारण उसके व्यवहार में परिवर्तन होता है और फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व में विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

ग) **सामाजिकता (Sociability)** - समाज से पृथक मानव और उसके व्यक्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव में आत्म चेतना का विकास तभी होता है, जब वह समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर क्रिया और अन्त: क्रिया करता है।

घ) **दृढ़ इच्छा शक्ति (Strong will power)** - दृढ़ शक्ति व्यक्ति को जीवन की कठिनाईयों से संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने की क्षमता प्रदान करती है।

ड़) **विकास की निरन्तरता (Development Continuty)** - व्यक्ति के विकास में कभी स्थिरता नहीं आती है। जैसे-जैसे व्यक्ति के कार्यों, विचारों, अनुभवों, स्थितियों आदि में परिवर्तन होता है वैसे-वैसे उसके व्यक्तित्व के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।

11.6.3 परिपक्व व्यक्तित्व (Mature Personality)

समायोजित व्यक्ति अपनी आन्तरिक और बाहरी आवश्यकताओं में समरूप संतुलन कायम रखने में सफल होता है। परिपक्व व्यक्तित्व एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू (शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक और सामाजिक) सुसंगत और प्रभावशाली ढंग से काम कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति में उसकी महत्वाकांक्षायें और आकांक्षाएं उसकी मानसिक क्षमताओं के अनुरूप होती है। परिपक्व व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशे षताएं हैं।

क) **मानसिक प्रक्रियाओं में संतुलन(Balance Between Mental Processes)**

व्यक्ति की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं में संतुलन होना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और क्रियाओं में सन्तुलन का पूर्व अनुमान होता है।

ख) **सामाजिक वातावरण के साथ सुसंगत समायोजन (Harmonious Adjustment to Social Environment)**

व्यक्ति को स्वयं को समायोजित करने के लिए उसे दूसरों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अपनी आवश्यकताओं को स्पष्ट रूप से जानना चाहिए क्योंकि उसका विकास और उसकी प्रसन्नता दूसरों के विकास और प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं।

ग) स्वस्थ अभिवृत्तियाँ और रूचियाँ (Healthy Attitudes and Interests)

एकीकृत व्यक्ति में स्वस्थ आदतें, अभिवृत्तियाँ और रूचियाँ होती है। वह अपने कर्तव्यों का पालन करने में नियमित और समय का पाबन्द होता है। जीवन, रिश्तेदारों, मित्रों, परिवार, समुदाय, देश, धर्म, अध्ययन और व्यवसाय के प्रति उसकी अभिवृत्तियाँ स्वस्थ होती हैं।

घ) पर्याप्त बोध (Adequate Perception)

व्यक्तित्व के एकीकरण का अर्थ है स्वयं और बाहरी पर्यावरण के बारे में यथार्थता का पर्याप्त बोध।

अभ्यास प्रश्न-3

1- व्यक्तित्व की विशेषता होती है-

अ) चरित्र ब) प्रवृत्तियाँ

स) वंशानुक्रम द) उपरोक्त सभी

2- अचेतन मस्तिष्क का पक्ष है-

अ) इद ब) अहम

स) पराहम द) उपरोक्त सभी

3- व्यक्तित्व में प्रवृत्ति होती है-

अ) जन्मजात प्रवृत्तियाँ ब) अर्जित प्रवृत्तियाँ

स) दोनो ही द) उपरोक्त कोई नहीं

4- व्यक्तित्व के मुख्य पक्ष हैं-

अ) अभिरूचियाँ ब) मूल्य

स) अभिवृत्तियाँ द) उपरोक्त सभी

11.7 सामाजिक विकास (Social Development)

जैसे-जैसे व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक विकास होता है, वैसे-वैसे ही उसका सामाजिक विकास भी होता है। अपने परिवार के सदस्यों, अपने समूह के साथियों, अपने समाज की संस्थाओं और परम्पराओं एवं अपनी स्वयं की रूचियों और इच्छाओं से प्रभावित होकर वह अपने सामाजिक व्यवहार का निर्माण और अपना सामाजिक विकास करता है। सामाजिक व्यवहार में स्थिरता न होकर परिवर्तनशील होती है। अत: समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है, और सामाजिक विकास एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ता जाता है।

सॉरे हेलफोर्ड ने लिखा है, ''समाजीकरण की प्रक्रिया दूसरे व्यक्तियों के साथ शिशु के प्रथम सम्पर्क से आरम्भ होती है और आजीवन चलती रहती है।'' सामाजिक आदर्शों, परम्पराओं एवं रूढ़ियों के

अनुसार समाज के अन्य लोगों के सहयोग से जो व्यवहार किया जाता है, उसे सामाजिक विकास के अन्तर्गत रखा जाता है।

सोरेन्स के अनुसार, ''सामाजिक वृद्धि एवं विकास से हमारा तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली-भांति चले चलने (समायोजित करने) की बढ़ती हुई योग्यता से है।''

इस प्रकार से सोरेन्सन यह स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति की सामाजिक योग्यताओं और कौशल में बढोतरी होती है। इन बढ़ी हुई योग्यताओं और क्षमताओं के सहारे वह सामाजिक सम्बन्धों को अच्छी तरह निभाने में कुशल बनता चला जाता है। वह अपने व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने की चेष्टा करता है तथा दूसरों के साथ समायोजन करने और हिल-मिल कर प्रेम से रहने की लालसा रखता है।

श्रीमति हरलॉक- ''सामाजिक विकास से अभिप्राय सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता प्राप्त करने से है।''

अत: हम कह सकते हैं कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया उसी समय से अपना कार्य प्रारम्भ कर देती है। जिस समय एक अबोध शिशु का अपनी माँ परिवार के सदस्यों तथा अन्य व्यक्तियों के साथ कोई सम्पर्क सूत्र बनना प्रारम्भ हो जाता है और फिर यह कार्य अनवरत रूप से जिन्दगी भर चलता रहता है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था को प्राय: अत्यधिक सामाजिक चेतना, बढ़ते हुये सामाजिक सम्बन्धों और प्रगाढ़ मित्रता की अवस्था की संज्ञा दी जाती है।

11.7.1 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Social Development)

स्किनर व हैरीमन के शब्दों में, ''वातावरण और संगठित सामाजिक साधनों के कुछ ऐसे विशेष कारक हैं, जिनका बालक के सामाजिक विकास की दशा पर निश्चित और विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। उल्लिखित कारकों में से अधिक महत्वपूर्ण अधोलिखित हैं-

1- **वंशानुक्रम (Heredity)** -कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति के सामाजिक विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है।

2- **शारीरिक और मानसिक विकास (Physical and Mental Development)** - स्वस्थ और अधिक विकसित मस्ति"क वाले पौढ़ कर सामाजिक विकास अस्वस्थ और कम विकसित मस्तिष्क वाले प्रौढ़ की अपेक्षा अधिक होता है।

3- **संवेगात्मक विकास (Emotional Development)** -प्रौढ़ के सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार उसका संवेगात्मक विकास है। क्रोध व ईर्ष्या करने वाला प्रौढ़ दूसरे की घृणा का पात्र बन जाता है। इसके विपरीत प्रेम और विनोद से परिपूर्ण प्रौढ़ सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है।

4- **परिवार (Family)** -परिवार ही वह स्थान है जहां मानव का उचित सामाजिक विकास होता है।

5- **सामाजिक व्यवस्था (Social Systems)** - सामाजिक व्यवस्था प्रौढ़ के सामाजिक विकास को एक निश्चित रूप दिशा प्रदान करती है। समाज के कार्य, आदर्श और प्रतिमान व्यक्ति के दृष्टिकोणों का निर्माण करते हैं।

मैक्डूगल के अनुसार मनुष्य में सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति होती है, यह उसे समूह में रहने के लिए प्रेरित करती है। जिस मनुष्यमें यह मूल प्रवृत्ति जितनी तीव्र होती है, वह सामाजिक पर्यावरण मिलते ही उतनी ही तेजी से उसमें समायोजन करता है और उतनी ही तेजी से उसका सामाजिक विकास होता है।

6- **सामाजिक पर्यावरण (Social Environment)** - प्रौढ़ समहों में आता है और छोटे-बड़े अनेक सामाजिक समूहों का सदस्य बनता है। इन समूहों की क्रियाओं में भाग लेने से उसका मानसिक, भाषायी, संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक विकास अपेक्षाकृत थोड़ी तेजी से होता है और विस्तृत रूप में होता है। उसका संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक विकास तो अपने सही रूपों में समाज की क्रियाओं में भाग लेने से ही होता है।

11.7.2 मानव का सामाजिक विकास (Social Development of Human Being)

मानव के सामाजिक विकास से तात्पर्य उसके द्वारा अपने समाज की जीवन शैली को सीखने और अपने समाज में समायोजन करने से होता है।

मनोवैज्ञानिक हरलॉक के शब्दों में, ''सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की योग्यता प्राप्त करने से होता है।'' समाजशास्त्र की भाषा में इसे समाजीकरण कहते हैं।

व्यक्ति के सामाजिक नियमों का पालन करने की धनात्मक मनोवृत्ति विकसित होती है जिसके द्वारा वे समाज में समायोजन करते हैं।

प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति भिन्न-भिन्न समुदायों के सदस्य बनने की ओर प्रवृत होते हैं। उनका सामाजिक क्षेत्र बढ़ता जाता है, वे समाज के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक सभी क्षेत्रों में रूचि लेने लगते हैं। इससे उनमें सामाजिक परिपक्वता आती है, वे सामाजिक अच्छाई-बुराई में भेद करने लगते हैं और सामाजिक परिवर्तन में रूचि लेने लगते हैं। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में वे किशोरावस्था के तनावों से मुक्त हो जाते हैं और यथार्थ को अपनाने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न-4

रिक्त स्थान की पूर्ति करो-

1- समाजीकरण का सम्बन्ध .....से होता है।

2- संवेग आधारित होते हैं-

अ) सामाजिक विकास ब) शारीरिक विकास

स) मानसिक विकास द) उपरोक्त सभी

3- ..... में स्थिरता न होकर परिवर्तनशीलता होती है।

4- सामाजिक आदर्शों परम्पराओं एवं रूढ़ियों के अनुसार समाज के अन्य लोगों के सहयोग से जो व्यवहार किया जाता है, उसे .....के अन्तर्गत रखा जाता है।

11.8 सारांश

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में लोग व्यवसाय, शिक्षा सम्बन्ध व स्वतन्त्रता को जानने में सक्षम हो जाते हैं। यह 20 और 35 वर्ष के बीच का काल है। इसमें लापरवाही के दिन समाप्त हो जाते हैं। प्रौढ़ावस्था जीवन के चरणों अथवा कालों में सबसे लम्बी होती है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की प्रमुख विशेषताओं में समायोजन की अवस्था, नैतिक विकास, शारीरिक परिपक्वता इत्यादि सम्मिलित हैं। इस पाठ के अन्तर्गत हम लोगों ने प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था का अर्थ, विशेषताओं, विकास कार्यों, व्यक्तित्व, सामाजिक विकास का अध्ययन किया।

11.9 शब्दावली

- **प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था**- जीवन काल 20 और 35 वर्ष के बीच का काल है।
- **समायोजन**- समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की संतुष्टि को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के साथ संतुलन बनाये रखता है।
- **व्यक्तिवाद**- इसमें स्वतन्त्रता एवं व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता पर बल दिया जाता है।
- **सृजनात्मकता**- सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने वाली मानसिक प्रक्रिया है।
- **व्यक्तित्व**- व्यक्तित्व वह व्यापक प्रतिदर्श है जो जीव के व्यक्तिगत व्यवहार की विशेषताओं में निहित समाकलन को व्यक्त करता है।
- **नैतिक विकास**- नैतिक विकास वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति में उन गुणों का विकास होता है जिनसे प्रेरित होकर वह अपने हित अथवा स्वार्थ का त्याग करते हुए जनहित के लिए कार्य है।

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. सर्वांगी परिपक्वता 2. सृजनशील
3. वैयक्तिक, जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक

अभ्यास प्रश्न-2

1. परिपक्वता
2. वृद्धि एवं विकास
3. मूल प्रवृत्ति
4. संवेगात्मक व्यवहार

अभ्यास प्रश्न- 3

1. द
2. द
3. स
4. द

अभ्यास प्रश्न-4

1. समायोजन
2. द
3. सामाजिक व्यवहार
4. सामाजिक विकास

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ?

2- सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का उल्लेख कीजिए ?

3- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए ?

4- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था के विकास कार्यों की विवेचना कीजिए?

5- समायोजन की अवस्था से आप क्या समझते हैं ?

6- व्यक्तिवाद और सृजनात्मकता में अन्तर स्पष्ट कीजिए ?

7- निम्नलिखित पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए-

   क) शारीरिक परिपक्वता

   ख) संवेगात्मक ज्ञान की प्राप्ति

   ग) विकासात्मक कार्य

8- व्यक्तित्व क्या हैं? उसके विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वों का वर्णन कीजिए?

9- ''व्यक्तित्व पूर्ण मनुष्यहै।'' इस पर टिप्पणी कीजिए ?

11.12 संदर्भ ग्रन्थ

- एस. ल्यूक्स (1973) , ''इनडिविडुअलिज्म, ब्लैकवेल, ऑक्सफर्ड।
- जी. जिमेंल (1971); ऑन इनडिविडुअलिटी ऐंड सोशल फॉर्म्स, युनिवर्सिटी ऑफ शिकागों प्रैस, शिकागो।

- शर्मा; आर. ए. (2011); छात्र का विकास एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
- मंगल, एस. के. (2014) शिक्षा मनोविज्ञान, पी.एच.आई. लरनिंग, प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली।
- पाठक, पी.डी. (1996) शिक्षा-मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- माथुर, एस.एस. (1995) शिक्षा-मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2001) शिक्षा-मनोविज्ञान भारती भवन, पब्लिशर्स एडं डिस्ट्रीव्यटूर्स, पटना।

इकाई - 12

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था रूचियों में परिवर्तन

Changes in Interests in Early Adulthood

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 रूचियों में परिवर्तन

12.3.1 रूचि का अर्थ और परिभाषाएं

12.3.2 रूचियों की प्रकृति और विशे षताएं

12.3.3 हम कई वस्तुओं में रूचि लेते हैं और कईयों में क्यों नही ?

12.3.4 व्यक्तिगत तत्त्व

12.3.5 वातावरण सम्बन्धी तत्त्व

12.4 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में रूचियों का परिवर्तन

12.4.1 व्यक्तिगत रूचियाँ

12.5 मनोरंजनात्मक रूचियाँ

12.5.1 अभिव्यंजनापूर्ण

12.5.2 नाचमण्डली

12.5.3 खेल और क्रीड़ाएं

12.6 प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में यौन भूमिका समायोजन

12.6.1 प्रौढ़ भूमिकाओं की अवधारणा

12.7 सामाजिक रूचियाँ

12.7.1 सामाजिक भागीदारी

12.8 सामाजिक गतिशीलता

12.9 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्तिगत और सामाजिक खतरें

12.9.1 शारीरिक खतरे

12.9.2 मृत्युदर

12.9.3 अस्वस्थता या व्याधि

12.9.4 दुर्घटनायें

12.9.5 मनोवैज्ञानिक खतरे

12.9.6 संवेगात्मक समायोजन

12.9.7 घरेलू समायोजन का खतरा

12.10 शब्दावली

12.11 सारांश

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

12.14 संदर्भ ग्रन्थ

12.1 प्रस्तावना

सामान्यत: रूचि से तात्पर्य व्यक्ति की पसन्द से होता है। कोई व्यक्ति जिस वस्तु अथवा क्रिया को पसन्द करता है और उसकी ओर आकर्षित होता है तो हम कहते हैं कि उसमें रूचि है। रूचि सीखने-सीखाने की प्रक्रिया को संचालित करने वाली केन्द्रीय शक्ति है। परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रूचि मनुष्यकी वह मानसिक संरचना है जो उसे किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रिया आदि से स्वाभाविक रूप से जोड़ती है, वह उसकी ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षित होता है और उसकी ओर स्वाभाविक रूप से अपना ध्यान केन्द्रित करता है। प्रस्तुत इकाई में आप रूचियों में परिवर्तन; प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में मनोरंजन, सामाजिक रूचियाँ, गतिशीलता, उद्देश्य, यौन भूमिका समायोजन, प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्तिगत और सामाजिक खतरों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगें।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- रूचियों में परिवर्तन का अर्थ बता सकेंगें एवं परिभाषित कर सकेगें।
- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में मनोरंजन को बता सकेगें।
- सामाजिक रूचियों व गतिशीलता को बता सकेगें।
- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में यौन भूमिका व समायोजन को बता सकेगें।
- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्तिगत और सामाजिक खतरों के बारे में बता सकेगें।

12.3 रूचियों में परिवर्तन (Changes in Interest)

12.3.1 रूचि का अर्थ और परिभाषाएं (Changes and Defination of Interest)

रूचि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को संचालित करने वाली केन्द्रिय शक्ति है। हमारे सभी प्रयत्नों का लक्ष्य विद्यार्थियों में 'सीखने' की रूचि को विकसित करना होता है। 'रूचि' बच्चों और प्रौढ़ों को केवल सीखने में ही सहायता प्रदान नहीं करती बल्कि उनके दृष्टिकोणों, उनकी प्रवृत्तियों तथा अन्य व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं के निर्माण में भी सहायक होती है। यह उनके व्यक्तित्व निर्माण की दिशा निर्देशित करती है। 'रूचियों' के इस महत्व को देखते हुए यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि 'रूचि वास्तव में है क्या? बहुत से मनोवैज्ञानिकों तथा विचारकों ने इस पर अपने विचार प्रकट किये है।

क्रो एण्ड क्रो ''रूचि वह अभिप्रेरक शक्ति है जो हमें किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया की ओर ध्यान देने के लिए बाध्य करती है अथवा यह एक प्रभावात्मक अनुभूति है जो स्वयं क्रिया द्वारा अभिप्रेरित होती है। दूसरे शब्दों में रूचि किसी क्रिया का कारण भी हो सकती है और उस क्रिया में भाग लेने का परिणाम भी।''

रॉस- ''जो वस्तु हमसे सम्बन्धित होती है अथवा प्रयोजन रखती है हमारी रूचि उसी में होती है।''

बी.एन.झा.- ''रूचि वह स्थिर मानसिक तंत्र है जो ध्यान की एकाग्रता बनाये रखते हुए कार्य को चालू रखती है।''

12.3.2 रूचियों की प्रकृति और विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों तथा प्रयोगों से रूचियों की प्रकृति एवं विशेषताओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो सकता है। ये विशेषताएँ संक्षिप्त रूप से निम्नलिखित हैं-

1- हमारी रूचियाँ हमारी आवश्यकताओं, इच्छाओं तथा लक्ष्यों से बहुत ज्यादा सम्बन्धित होती है।

2- रूचि एक अभिप्रेरक शक्ति है जो व्यक्ति को ज्ञानात्मक, क्रियात्मक या भावात्मक व्यवहार की ओर अग्रसर करती है।

3- रूचि और ध्यान का आपस में गहरा सम्बन्ध है। इनके परस्पर सम्बन्ध को स्पष्टकरते हुए मैकडूगल ने लिखा है, ''रूचि ध्यान का छुपा हुआ रूप है और ध्यान रूचि का क्रियात्मक स्वरूप।'' यह बिल्कुल ठीक है। रूचि 'ध्यान' की माँ है। हम उन चीजों की ओर ध्यान देते हैं जिनमें हमारी रूचि होती है। इस प्रकार रूचि को हमें ध्यान देने के लिए मानसिक रूप से तैयार करती है। रूचि के रूप में किसी क्रिया का रूप धारण कर लेता है और उसी की ओर हमारा 'ध्यान' आकर्षित रहता है।

4- रूचियाँ जन्मजात भी होती हैं और अर्जित भी।

5- रूचि किसी भी वस्तु को व्यक्तिगत अर्थ प्रदान करती है। किसी भी वस्तु में रूचि होने के कारण हम सभी वस्तुओं की उसी रूचि के दृष्टिकोण से व्याख्या करते हैं।

6- अपनी रूचि के अनुसार कार्य करना हमेंशा संतुष्टि प्रदान करता है। इससे व्यक्ति को अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

7- 'रूचि' से 'सीखने' में आने वाली असामान्य रूकावटों को दूर करने में सहायता मिलती है। इससे व्यक्ति को 'थकावट' का सामना करने और असफलता से बचने में सहायता मिलती है।

8- रूचियों और अभिरूचियों में इस आधार पर तो समानता होती है कि दोनों में व्यक्ति किसी विशिष्ट व्यवहार के लिए मानसिक रूप से तैयार रहता है परन्तु वास्तव में दोनों में स्पष्ट अन्तर है। व्यक्ति जिस वस्तु में 'रूचि' रखता है। उसे सक्रियता से प्राप्त करने का प्रयास करता है, परन्तु अभिवृति व्यक्ति को सक्रिय नहीं बनाती। एक व्यक्ति की कुछ अभिवृत्ति हो सकती है परन्तु इसे बनाये रखने के लिए उसे कुछ करना आवश्यक नहीं।

9- रूचियाँ स्थिर और स्थायी नहीं होती है। परिपक्वता, शिक्षा तथा अन्य आन्तरिक एवं बाह्य तत्त्वों के कारण उनमें परिवर्तन भी होते हैं।

12.3.3 हम कई वस्तुओं में रूचि क्यों लेते है और कईयों में क्यों नहीं?

वास्तव में हमारी जन्मजात प्रवृत्तियाँ ही हमारी विशिष्ट रूचियों के लिए उत्तरदायी है। हम वस्तुत: उन चीजों के प्रति रूचि रखते हैं जिनसे हमारी जन्मजात इच्छाएं संतुष्ट होती है। बचपन में ही यह बात देखी जा सकती है कि जन्मजात प्रवृत्तियों के कारण ही बच्चे किसी न किसी वस्तु में रूचि लेने लगते हैं।

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होने लगता है, उसकी जन्मजात प्रवृत्तियों में विकास और परिष्कार होता रहता है। ये प्रवृत्तियाँ किस प्रकार और किस सीमा तक विकसित होती है। यह वातावरण पर निर्भर करता है। जन्मजात प्रवृत्तियों तथा बुनियादी इच्छाओं को विशिष्ट रूप प्रदान करने का दायित्व वातावरण सम्बन्धी शक्तियों पर होता है। परिणामस्वरूप रूचियां जन्मजात या वंशानुगत विशेषताओं पर स्थिर नहीं रहती बल्कि अर्जित प्रवृत्तियों के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

इसके अतिरिक्त जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं हमारी मूल प्रवृत्तियाँ कई प्रकार की भावनाओं और जटिलताओं को जन्म देने लगती है जिनसे जीवन में कई प्रकार के आदर्श और लक्ष्य स्थापित हो जाते हैं हम उन वस्तुओं की ओर ध्यान देने लगते हैं जिनका सम्बन्ध हमारी भावनाओं के साथ होता है। हमारे दृष्टिकोण, हमारा स्वभाव तथा व्यक्तित्व की अन्य विशेषताएँ भी हमारी रूचियों को प्रभावित करती रहती है। हम जीवन में किन्ही आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं। इन प्रयासों के कारण हमारी रूचियों का क्षेत्र बढ़ता रहता है।

अत: रूचियों को केवल जन्मजात समझना भ्रममूलक धारणा है। वस्तुत: ये अर्जित होती है और मूल प्रवृत्तियों का वातावरण की विशिष्टशक्तियों के सतत संघर्ष से ही इनका विकास होता है।

आन्तरिक या व्यक्तिगत तत्त्व और बाह्य वातावरण सम्बन्धी तत्व दोनों ही व्यक्तियों की रूचियों को प्रभावित करते हैं। इन तत्वों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

12.3.4 व्यक्तिगत तत्त्व

1- शारीरिक स्वास्थ्य और शारीरिक विकास।

2- मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक विकास।

3- सामाजिक विकास।

4- लिंग और आयु।

5- संवेग, स्थायीभाव एवं कुण्ठाएं।

6- व्यक्ति की इच्छाएँ, उसके जीवन के आदर्श व लक्ष्य।

7- उसकी अभिवृत्तियाँ।

8- उसकी मूल प्रवृत्तियों का रूप।

12.3.5 वातावरण सम्बन्धी तत्त्व

1- व्यक्ति के परिवार का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर।

2- उसका सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण।

3- उसकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण।

4- अपनी विशेष रूचियों की पूर्ति हेतु प्राप्त अवसर।

अभ्यास प्रश्न-1

1- .....सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को संचालित करने वाली केन्द्रीय शक्ति है।

2- रूचि एक .....है जो स्वयं क्रिया द्वारा अभिप्रेरित होती है।

12.4 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में रूचियों का परिवर्तन

1- स्वास्थ्य स्थितियों में परिवर्तन- बहुत से प्रौढ़ जब मध्य आयु में पहुंचते हैं,तो उन्हें लगता है कि उनकी शक्ति में पहले की अपेक्षा कमी आ गई है। परिणाम धीरे-धीरे उनकी रूचिया उस तरफ जाती है जिसमें कम शक्ति व धैर्य की जरूरत होती है।

2- आर्थिक स्थिति में परिवर्तन- जब प्रौढ़ों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है तो उनकी रूचियां उन वस्तुओं के प्रति भी बढ़ती है जिन्हें वे पहले नहीं कर सकते थे और यदि दूसरी तरफ उनकी आर्थिक स्थिति पारिवारिक जिम्मेवारियों या व्यवसायिक तरक्की की कमी के कारण अच्छी न हो तो उनकी बहुत सी रूचियां अपने आप समाप्त हो जाती है।

3- जीवन प्रतिमान में परिवर्तन- समय ऊर्जा और धन के साथ अपनी रूचियों का पुर्नमूल्यांकन करना चाहिए। उन्हें यह देखना चाहिए कि क्या वे नये जीवन प्रतिमानों के योग्य है अन्यथा वही संतुष्टि देनी चाहिए जो पहले थी।

4- **मूल्यों में परिवर्तन**- किसी व्यक्ति में पूर्व विद्यमान रूचियाँ उसके अन्दर मूल्यों को प्रभावित करते हैं।

5- **यौन भूमिका परिवर्तन**- जब कोई प्रौढ़ व्यक्ति किसी प्रौढ़ औरत के सम्पर्क में आता है तो उनकी रूचियों में पहले की अपेक्षा परिवर्तन आ जाता है।

6- **दम्पति जीवन में प्रवेश होने से परिवर्तन**- अविवाहित से दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करने से उनकी रूचियों में परिवर्तन आ जाता है।

7- **अभिभावक भूमिका की अवधारणा**- जब नौजवान प्रौढ़ अभिभावक बन जाते हैं तो उनके पास पूर्व रूचियों को बनाए रखने के लिए समय, धन और ऊर्जा नहीं होती है। इसके स्थान पर उनकी रूचियां आत्म निर्देशित से परिवार निर्देशित बन जाती है। हालांकि वे अपनी पुरानी रूचियां फिर से प्राप्त करेगें जब उनकी अभिभावक के रूप में जिम्मेवारियां खत्म हो जाएगी। यह इस पर निर्भर करेगा कि वे अपनी रूचियां पूरी करने के लिए कितने अवसर गवां देते हैं।

8- **प्राथमिकता में अन्तर**- पसन्द और नापसन्द जो रूचियों को बड़े स्तर पर प्रभावित करती है , आयु के साथ बढ़ते है और इसके कारण प्रौढ़ अवस्था में रूचियों में स्थिरता आ जाती है।

9- **सांस्कृतिक और पर्यावरणीय दबावों में अन्तर**- क्योंकि हर उम्र में रूचियां सामाजिक समूह के दबाव से प्रभावित होती है ज्यों-ज्यों सामाजिक समूहों के मूल्य बदलते हैं रूचियां भी बदलती है।

12.4.1 व्यक्तिगत रूचियाँ

व्यक्तिगत रूचियाँ वे है जो किसी व्यक्ति से सम्बन्धित होती है। बहुत से नौजवान प्रौढ़ अपने किशोर अवस्था से तीव्र रूचियां रखते हैं जिसके कारण अहम भावना पैदा होती है। घर में काम करते हुए या पारिवारिक जिम्मेवारियों का निर्वाहन करते हुए धीरे-धीरे उनकी अहम रूचियां सामाजिक बन जाती है।

1- **दिखावट**- प्रौढ़ अवस्था आने तक ज्यादातर आदमी और औरतें अपने शारीरिक बनावट के कारण परिवर्तित होते हैं जो कि उनकी व्यक्तिगत रूचियों को प्रभावित करते हैं और जब कोई व्यक्ति परिवार के दबाव में आकर व्यवसाय प्रारम्भ करता है और उसमें उसे सफलता प्राप्त नहीं होती है उसके कारण भी सामाजिक आर्थिक स्थिति में प्रभाव पड़ता है।

2- **व्यक्तिगत और वस्त्रीय सजावट**- प्रौढ़ों में अक्सर व्यक्तिगत और वस्त्रीय साज सज्जा रूचियों को प्रभावित करती है। प्रत्येक प्रौढ़ सज धज कर दूसरों के सामने अपना व्यक्तित्व प्रभावशाली दिखाना चाहता है जिससे उसके समय धन और शारीरिक ऊर्जा की खपत होती है। लेकिन प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन करने में इन सबकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

अभ्यास प्रश्न :- (दो)

1- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में रूचियों का परिवर्तन होता है।

क) स्वास्थ्य स्थिति में परिवर्तन ख) आर्थिक स्थिति में परिवर्तन

ग) उपरोक्त दोनों घ) इनमें से कोई नहीं

2- प्रौढ़ों में अक्सर व्यक्तिगत और वस्त्रीय साज-सज्जा रूचियों को प्रभावित नहीं करती है।

सत्य/असत्य

12.5 मनोरंजनात्मक रूचियाँ

मनोरंजन पद (Recreation) एक ऐसी क्रिया है जो हमें खुशी देने वाला और मजबूती देने वाला होता है। प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में एक प्रौढ़ खेल खेलता है तो इस क्रिया से उसमें आनंद की अनुभूति होती है। किशोरावस्था की अपेक्षा प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में युवक आनन्दमय रूचियों को महसूस करते हैं। युवा प्रौढ़ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अपने परिवार व दोस्तों के साथ खाली समय मनोरंजन के लिए व्यतीत करते हैं। जिसके कारण समय ऊर्जा की खपत होती है और सामाजिक वर्गों में पहले की अपेक्षा प्रौढ़ावस्था में प्रौढ़ मनोरंजन के लिए ज्यादा धन खर्च कर रहे हैं। फिर भी कई प्रौढ़ अपनी मनोरंजनात्मक क्रियाओं के कारण संतुष्ट नहीं है, और उन्हें समायोजन समस्याओं से जूझना पड़ता है।

मनोरंजनात्मक समस्याओं में कई प्रमुख कारण है। उनमें से कुछ निम्नलिखित है-

1- जब प्रौढ़ विद्यालयों और महाविद्यालयों में कई मनोरंजनात्मक क्रियाओं में हिस्सा लेते हैं जिनमें उनका धन व अन्य कोई मूल्य नहीं खर्च हुआ है उन क्रियाओं में वे युवक हिस्सा लेकर अपने दोस्तों के साथ आन्नद प्राप्त करते हैं।

2- परिवार के सदस्य और अध्यापक प्रौढ़ युवकों को मनोरंजनात्मक क्रियाओं में हिस्सेदारी के लिए प्रोत्साहित करते हैं जो कि विद्यालयों और महाविद्यालयों की महत्वपूर्ण क्रिया है।

3- विद्यालय और महाविद्यालय युवकों को मनोरंजनात्मक क्रियाओं में हिस्सेदारी लेने के लिए निर्देशन प्रदान करते हैं।

12.5.1 अभिव्यंजनापूर्ण (Talking)

युवक और युवतियों के लिए समय व्यतीत करने के लिए आपसी बातचीत का सहारा लेना मनोरंनात्मक क्रियाओं की रूचियों में आता है। खासतौर पर जो दम्पति घर में कार्य करते हैं, वो बातचीत के माध्यम से गृह कार्य में क्रियाशील रहते हैं। घर में अगर माँ घर का कार्य कर रही है तो बच्चे उसका अवलोकन करते रहते हैं और पुरुष घर से बाहर कार्य करते हुए अपने दोस्तों के साथ बातचीत करते हुए क्रियाओं में हिस्सेदारी लेते हैं।

12.5.2 नाचमण्डली (Dancing)

प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में नृत्य शैली एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण मनोरंजनात्मक रूचि है। जब घर में प्रौढ़ एकान्त महसूस करते हैं तो नृत्य का सहारा लेते हैं। कई बार प्रौढ़ सामाजिक समूहों में नृत्य गान करते हैं तो उनको बहुत संतुष्टि प्राप्त होती है।

12.5.3 खेल और क्रीड़ाएँ (Sports and Games)

खेल और क्रीड़ाओं में सक्रिय भूमिका प्रौढ़ो में मनोरंजनात्मक शैली की बढ़ौतरी करती है और भी अन्य मनोरंजनात्मक क्रियाएं है जो प्रौढ़ों में नव उत्साहवर्धन करती हैं जिनमें पढ़ना, संगीत को सुनना।

प्रौढ़ो के अन्दर समाज में उच्च स्तर को प्राप्त करने की भावना होती है। वे राजनेता बनकर समाज में उच्च स्थान प्राप्त करना चाहते हैं क्योंकि उन्हें लोकप्रिय बनने की चाहत होती है।

अभ्यास प्रश्न-तीन

1- सामाजिक वर्गों में किशोरावस्था की अपेक्षा प्रौढ़ावस्था में प्रौढ़ मनोरंजन के लिए ज्यादा खर्च करते हैं। सत्य/असत्य

2- मनोरंजनात्मक रूचियों में सम्मिलित हैं-

क) अभिव्यंजनापूर्ण ख) नाचमण्डलियाँ

ग) खेल और क्रीडायें घ) उपरोक्त सभी

12.6 प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में यौन भूमिका समायोजन (Sex wise adjustment in early adult hood)

प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में यौन भूमिका समायोजन अत्यन्त मुश्किल है। प्रौढ़ अवस्था में लैगिक जीवन की तेजी से वृद्धि होती है। वासनात्मक स्वप्न तथा स्वप्नदोषों से अज्ञान के कारण प्रौढ़ों में डर उत्पन्न होता है। इसी प्रकार लड़कियाँ महावारी आने से चिन्तित हो उठती है। समायोजन के लिए लैगिक शिक्षा प्रदान करना अति आवश्यक है। अत: यह आवश्यक है कि प्रौढ़ो में लैंगिक स्वास्थ्य के प्रति पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए।

12.6.1 प्रौढ़ यौन भूमिकाओं की अवधारणा (Concepts of adults sex roles)

1. **परम्परागत अवधारणाएं (Traditional concepts)** -यौन भुमिकाओं की परम्परागत अवधारणाएं रूचियों, योग्यताओं और व्यवहार को ज्यादा महत्व देता है, जिसमें महिलाओं के कार्य को अत्यन्त महत्वता प्रदान की गई है।

2. **पुरुष (Man)** - पुरुष घर से बाहर स्त्रियों की भूमिका नर्स, अध्यापिका, गृहिणी आदि के रूप में दूसरों की सेवा करना होती है। फिल्मों का देखना, रेडियों का सुनना, टेलिविजन देखना इत्यादि।

12.7 सामाजिक रूचियाँ (Social Interest)

12.7.1 सामाजिक भागीदारी (Social Participation)

प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में प्रौढ़ो को सामाजिक क्रियाओं में हिस्सेदारी लेना अत्यन्त महव्वपूर्ण है। इसी के कारण उनका सामाजिक जीवन अत्यन्त सफल होता है। प्रौढ़ अवस्था में युवक सामाजिक क्रियाओं में हिस्सेदारी लेना पसन्द करते हैं लेकिन जो विवाहित प्रौढ़ हैं वे अविवाहित प्रौढ़ो से भिन्न होते है क्योंकि विवाहित प्रौढ़ अपने दाम्पत्य जीवन में सक्रिय रहते हैं और अविवाहित सामाजिक क्रियाओं में सक्रिय रहते हैं क्योंकि उन्हें वहां आनन्द की अनुभूति होती है।

12.8 सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility)

प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में दो प्रकार की सामाजिक गतिशीलताएं महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं अदा करती है-

क) भौगोलिक गतिशीलता

ख) सामाजिक गतिशीलता

भौगोलिक गतिशीलता में व्यवसाय परिवर्तन के कारण लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं।

सामाजिक गतिशीलता से अभिप्राय एक सामाजिक समूह का दूसरे सामाजिक समूह की तरफ गतिशील रहना है। सामाजिक गतिशीलता दो प्रकार की होती है।

1) **क्षैतिज (Horizantal)**

2) **लम्ब रूप (Vertical)**

क्षैतिज गतिशीलता समान स्तर के सामाजिक समूह में होती है।

लम्ब रूप गतिशीलता सामाजिक समूह में उच्च स्तर से निम्न स्तर या निम्न स्तर से सामाजिक समूह के उच्च स्तर की और गतिशील होती है।

12.9 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्तिगत और सामाजिक खतरे

जिस प्रकार किशोरावस्था में खतरे लेते है उसी प्रकार प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्तिगत और सामाजिक खतरे देखने को मिलते हैं। जब हम अपनी सेहत का ध्यान नहीं रख पाते हैं, तो हमें जीवन में खतरों की आहट प्रतीत होती है।

12.9.1 शारीरिक खतरे (Physical Hazarels)

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में शारीरिक व मनौवैज्ञानिक खतरे प्रतीत होते हैं जैसे- बीमारी, दुर्घटना, अनाड़ीपन इत्यादि।

12.9.2 मृत्युदर (Mortality)

दुर्घटनाओं के कारण प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में कई मृत्यु हो जाती हैं। कई अनुसन्धानों में जानकारी मिली है कि लड़कियों की तुलना पुरुषों की मृत्यु का खतरा दुर्घटनाओं के कारण ज्यादा होता है।

12.9.3 अस्वस्थता या व्याधि (Illness)

प्रौढ़ो में अस्वस्थता या व्याधि ज्यादा देखने को मिलती है क्योंकि इस आयु वर्ग के प्रौढ़ नशे, शराब इत्यादि में संलिप्त पाए जाते हैं।

12.9.4 दुर्घटनायें (Accidents)

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में कई दुर्घटनायें दिखायी देती हैं। दुर्घटनाओं के कारण व्यक्तियों की हड्डियों का टूटना, शरीर के हिस्से टूटना, कई बार गम्भीर प्रभाव शरीर पर पड़ जाता है।

12.9.5 मनोवैज्ञानिक खतरे (Psychological Hazards)

मनोविज्ञान आचरण एवं व्यवहार का यथार्थ विज्ञान है। कहा भी गया है कि सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया, फिर अपने मन का त्याग किया। इसके पश्चात उसने अपनी चेतना का त्याग किया और अब वह व्यवहार के प्रकार को अपनाता है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में मानसिक प्रक्रियायें ठीक कार्य नहीं कर पाती हैं जिसके कारण मनोवैज्ञानिक खतरे दिखाई देते हैं जैसे सभी मानसिक प्रक्रियायें जैसे संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, चिन्तन, सीखना, याद करना, कल्पना इत्यादि में समस्या उत्पन्न हो जाती है।

क) वाणी सम्बन्धी खतरा

ख) संवेगात्मक खतरा

ग) ग्रन्थियों में वाधा

कई बार व्यक्ति अत्यधिक उदासी मनोग्रसित, वाध्यता और व्याकुलता जैसी मनोवैज्ञानिक बीमारियों से मुक्त होता है। यदि ये मनोवैज्ञानिक बीमारियां अत्यधिक होती हैं तो प्रौढ़ को व्यावसायिक सलाह लेनी पड़ती है।

12.9.6 संवेगात्मक समायोजन (Emotional Adjustment)

यदि प्रौढ़ व्यक्ति उचित रूप में एक उचित स्थिति में उचित संवेग व्यक्त करता है तो वह समायोजित होता है। संवेगात्मक रूप में स्थिर व्यक्ति अच्छी तरह से समायोजित हो सकता है। संवेगात्मक रूप से अस्थिर अवस्थाएं मानसिक विकृतियाँ और कुसमायोजन उत्पन्न करती हैं।

12.9.7 घरेलू समायोजन का खतरा

अपने परिवार के सदस्यों के साथ प्रौढ़ के सम्बन्ध उसके समायोजन को प्रभावित करते हैं। घर संतुष्टि और सुरक्षा को उन्नत बनाता है। घर में अनुकूल वातावरण घरेलू समायोजन को प्रोत्साहित करता है और घर में प्रतिकूल वातावरण कसमायोजन उत्पन्न करता है।

प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में प्रौढ़ों को व्यक्तिगत और सामाजिक खतरों का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति की यह उम्र चाहे पुरुष हो या स्त्री उनके व्यवहार में एक निश्चित परिपक्वता दर्शाती है।

माहिर विकासात्मक कार्य करना प्रौढ़ अवस्था में अत्यन्त कठिन काम है।

कमजोर स्वास्थ्य और शारीरिक दोष जिन्हें ठीक नही किया जा सकता। एक व्यक्ति के सामाजिक और व्यक्तिगत समायोजन में प्रौढ़ अवस्था में खतरा होते है। वे प्रौढ़ जो अपंग है व्यवसायिक सफलता प्राप्त करने में बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। शारीरिक भद्दापन इन सबसे खतरनाक है जो उन्हें निरूत्साहित करता है। शारीरिक भद्दापन होने के कारण व्यक्ति विपरीत लिंग वाले को आकर्षित करने में असफल रहते हैं और बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शारीरिक खतरे हमारे निजी जीवन में, वैवाहिक जीवन में बाधा है। शारीरिक भद्देपन के कारण वे अपने आप की दूसरों की उपलब्धियों के साथ तुलना करते हैं तो खुद को पिछड़ा हुआ महसूस करते है।

कई युवा प्रौढ़ सामाजिक समूहों में समायोजन करने में कठिनाई महसूस करते हैं।

प्रथम - अनुकूल सामाजिक समूह के साथ प्रौढ़ सम्मिलित नहीं हो पाते है जो कि प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था के महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्य है। जो महिलाएं घर के कार्य में व्यस्त रहती हैं , उनके पास सामाजिक क्रियाओं की हिस्सेदारी के लिए समय नहीं होता है। इसके विपरीत पुरुष कार्य में इतने व्यस्त होते हैं कि वे अपने परिवार के लिए उचित समय नहीं दे पाते हैं जिसके कारण उनकी पारिवारिक जिन्दगी में बाधाएं उत्पन्न होती है। सामाजिक क्रियाओं में संतुष्टि हमारे वैवाहिक जीवन को प्रभावित करती है। कई प्रौढ़ इस आयु में सामाजिक क्रियाओं में बहुत पैसा खर्च करते हैं जिसमें दोस्ती सम्बन्ध और अन्य लोगों के साथ सम्पर्क में आते हैं। कई बार पारिवारिक जीवन को एक तरफ रखकर व्यवसायिक सीढ़ी पर प्रौढ़ चलना आरम्भ कर देते हैं, जिसके कारण सामाजिक क्रियाओं में तो सफलता प्राप्त होती हैं लेकिन अपना पारिवारिक जीवन प्रभावित होता है। अन्य सामाजिक खतरा सामाजिक जीवन के साथ संतुष्टि और सामाजिक जीवन का समायोजन है। सामाजिक समूहों में व्यक्तिगत भूमिका अदा करने की अपेक्षा की जाती है। अक्सर ऐसा पाया जाता है कि विद्यालय व महाविद्यालय में नेता रहने वाले किशोर प्रौढ़ अवस्था में असफल रहे हैं।

अन्य सामाजिक खतरा सामाजिक गतिशीलता है क्योंकि सामाजिक समूहों के अपने सामाजिक मूल्य होते हैं, व्यवहारिक स्तर होता है। प्रौढ़ अवस्था में आने वाले सामाजिक जीवन को सही ढंग से निर्वाहन न करने के कारण तनाव होता है।

अभ्यास प्रश्न-चार

1- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में यौन भूमिका समायोजन अत्यन्त मुश्किल क्रिया है।
सत्य/असत्य

2- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में बीमारी, दुर्घटना किस खतरे में सम्मिलित होती हैं।

क) शारीरिक खतरे ख) मनोवैज्ञानिक खतरे

ग) सामाजिक खतरे ग) संवेगात्मक खतरे

3- मनोवैज्ञानिक खतरों में सम्मिलित हैं।

क) वाणी सम्बन्धी ख) संवेगात्मक

ग) ग्रन्थियों में वाधा घ) उपरोक्त सभी

12.10 शब्दावली

- **रूचियाँ**- जो वस्तु हमसे सम्बन्धित होती है अथवा प्रयोजन रखती है। हमारी रूचि उसी में होती है।
- **प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था**- यह काल 25 वर्ष से 40 वर्ष तक का माना गया है।
- **सामाजिक रूचियाँ**- जो रूचियां हमारी सामाजिक इच्छाओं, आवश्यकताओं व लक्ष्यों से ज्यादा सम्बन्धित होती हैं।

12.11 सारांश

हमारी रूचियाँ हमारी आवश्यकताओं इच्छाओं तथा लक्ष्यों से बहुत ज्यादा सम्बन्धित होती हैं। रूचि प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में युवाओं को केवल सीखने में ही सहायता प्रदान नहीं करती बल्कि उनके दृष्टिकोणों, उनकी प्रवृत्तियों तथा अन्य व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं के निर्माण में भी सहायक होती है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में रूचियों में बहुत परिवर्तन दिखाई देता है। जिसमें आर्थिक स्थिति में परिवर्तन स्वास्थ्य स्थिति, जीवन प्रतिमानों में परिवर्तन, मूल्यों में परिवर्तन यौन भूमिका परिवर्तन, एकल से दम्पति जीवन में आगमन, पारिवारिक भूमिका, सांस्कृतिक व पर्यावरणीय दबावों में दबाव इत्यादि। इस पाठ के अन्तर्गत हम लोगों ने रूचियों में परिवर्तन, प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में मनोरंजनात्मक आधार, यौन भूमिका, व्यक्तिगत और सामाजिक खतरों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया।

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- एक

1- रूचि 2. प्रभावात्मक अनुभूति

अभ्यास प्रश्न-दो

1- ग 2. असत्य

अभ्यास प्रश्न- तीन

1- सत्य 2. घ

अभ्यास प्रश्न-चार

1- सत्य 2. क 3. घ

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. रूचियों से आप क्या समझते हैं ? व्याख्या कीजिए ?

2. प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में सामाजिक रूचियों की विवेचना कीजिए ?

3. प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्तिगत और सामाजिक खतरों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

4. यौन भूमिका समायोजन से आप क्या समझते हैं ?

12.14 संदर्भ ग्रन्थ

- सिंह, अरूण कुमार (2001), शिक्षा मनोविज्ञान भारती भवन, पब्लिशर्ज एवं डिस्ट्रीव्यूटर्स, पटना।
- मंगल, एस. के. (2014) शिक्षा मनोविज्ञान, पी.एच.आई. लर्निंग, प्राईवेट, लिमिटेड, दिल्ली।
- शर्मा, आर.ए. (2011) छात्र का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर.लाल, बुक डिपोट मेरठ।
- हरलॉक, ई.बी. (1980), मनोविज्ञान विकास: एक जीवन उपागम, दि मैक्गरा हिल कम्पनी, न्यूयार्क।

इकाई -13

व्यवसायिक और पारिवारिक समायोजन

Vocational and Family Adjustment

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 समायोजन

13.3.1 समायोजन का अर्थ एवं परिभाषा

13.3.2 अच्छे समायोजन के मानदण्ड

13.3.3 समायोजन की प्रक्रिया

13.3.4 समायोजन प्रक्रिया की विशेषताएँ

13.3.5 समायोजन के प्रतिमान

13.3.6 समायोजन के निर्धारक

13.4 व्यवसायिक और पारिवारिक समायोजन

13.4.1 व्यावसायिक समायोजन

13.5 वैवाहिक समायोजन

13.6 सारांश

13.7 शब्दावली

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.10 संदर्भ ग्रन्थ

13.1 प्रस्तावना

बदलते हुए वातावरण के साथ समायोजन करने में तथा प्रौढ़ की मदद करने में शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। समायोजन एकीकृत और सन्तुलित व्यक्तित्व विकसित करने में मदद करता है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति पारिवारिक व व्यावसायिक समायोजन में कुशलता प्राप्त कर लेता है। इस

अवस्था में व्यक्ति पारिवारिक और वैवाहिक समायोजन करके सन्तुलन कायम रखता है। समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के बीच सन्तुलन कायम रखता है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की उम्र बसाने- कैरियर और जीवन साथी के साथ सामंजस्य बनाने की अवस्था है। व्यक्ति एक उपयुक्त जीवन शैली अपनाता है। वे अपने वर्तमान और भविष्य की जरूरतों को संतुष्ट करता है। प्रस्तुत इकाई में आप व्यावसायिक और पारिवारिक समायोजन, वैवाहिक समायोजन, माता-पिता (पितृत्व) समायोजन, वैवाहिक जीवन के मूल्यांकन का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेगें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- व्यावसायिक और पारिवारिक समायोजन के बारे में बता सकेगें।
- वैवाहिक समायोजन को बता सकेगें।
- माता-पिता पारिवारिक समायोजन को बता सकेगे।
- वैवाहिक समायोजन का मूल्यांकन कर सकेगें।

13-3 समायोजन (Adjustment)

13.3.1 समायोजन का अर्थ तथा परिभाषा (Meaning and Definition of Adjustment)

सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करते समय समाज हित को ध्यान में रखता है। व्यक्तिगत इच्छाओं को पूर्ण करने में सामाजिक और भौतिक बाधाएं मनुष्य को असमंजस्य में डाल देती है। इस स्थिति में व्यक्ति समस्या का समाधान करने के लिए परिस्थितियों का विश्लेषण करता है। अपनी क्षमताओं को ध्यान में रखता है। इस प्रकार मनुष्य कोई संतोषजनक निर्णय लेता है और अपने को अनुकूल स्थिति में पाता है। अनुकूलन की यह प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक भाषा में समायोजन कहलाती है। समायोजन की यह प्रक्रिया बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर चलती रहती है।

नयी परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने की क्षमता मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा सबसे अधिक होती है। समायोजन शब्द सम तथा आयोजन दो शब्दों के योग से बना है। सम का अर्थ है अच्छा अथवा भली-भाँती आयोजन का अर्थ संगठित अथवा व्यवस्थित होता है। अत: समायोजन का अर्थ अच्छी तरह से परिस्थितियों के साथ व्यवस्थित होना है। जब व्यक्ति अपने लक्ष्य को अपनी क्षमताओं के अनुसार निर्धारित करता है तो उसे सफलता प्राप्त होती है और वह संतुष्ट रहता है। यदि वह लक्ष्य प्राप्त करने में रूकावटों को दूर करने में असमर्थ रहता है तो असफल रहने पर उसे निराशा

घेरती है और वह तनावग्रस्त हो जाता है। तनाव के अधिक होने से वह अनेक प्रकार के मनोविकारों का शिकार हो जाता है। जब व्यक्ति इस श्रेणी में आता है तो उसे कुसमायोजन की श्रेणी में रखा जाता है।

शेफर के अनुसार- ''समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की संतुष्टि को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के साथ सन्तुलन बनाए रखता है।

एस.एस. चौहान के शब्दों में - ''समायोजन व्यक्ति के जीवन की वह स्थिति है जिसमें वह अपनी वैयक्तिक, जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का भौतिक वातावरण की आवश्यकताओं के साथ कम या अधिक समन्वय कर सकें।''

स्मिथ के अनुसार- ''अच्छा समायोजन वह है जो वास्तविकता के साथ-साथ व्यक्ति को संतोष प्रदान करें अन्ततोगत्वा, यह व्यक्ति की कुण्ठाओं, उसके तनावों एवं चिन्ताओं, जिसे उसे सहन करना पड़ता है, को न्यूनतम कर देता है।''

कोलमैन के अनुसार- ''समायोजन किसी व्यक्ति के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और तनाव की स्थिति से निपटने के लिए किये गये प्रयासों का परिणाम है।

इस प्रकार समायोजन व्यक्ति की अपनी शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं सामाजिक वातावरण के दबाव के साथ तालमेंल स्थापित करना है। एक अच्छा समायोजन यथार्थपूर्ण होता है और व्यक्ति को चिन्ताओं तथा तनाव से मुक्ति दिलाता है।

13.3.2 अच्छे समायोजन के मानदण्ड (Criteria for a Good Adjustment)

एक समायोजित व्यक्ति के मुख्य लक्षण निम्नलिखित है-

1- **अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य**- एक समायोजित व्यक्ति मनोवैज्ञानिक कारणों से होने वाली सिरदर्द, अपाचन, कब्ज, अल्सर आदि बीमारियों से मुक्त रहता है।

2- **कार्य क्षमता**- समायोजित व्यक्ति की व्यवसायिक तथा सामाजिक कार्यक्षमता उच्च स्तर की होती है।

3- **मनोवैज्ञानिक शान्ति**- समायोजित व्यक्ति मानसिक दबाव, अवसाद, चिन्ता आदि से मुक्त होता है।

4- **सहयोग की भावना**- समायोजित व्यक्ति सहयोग की भावना से कार्य करता है।

5- **सामाजिक स्वीकार्यता**- समायोजित व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के अनुकूल होता है।

6- **व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं वातावरण में समन्वय**- समायोजित व्यक्ति आवश्यकताओं के अनुसार अपनी इच्छाओं महत्त्वकांक्षाओं आदि को सामाजिक तथा भौतिक वातावरण के अनुकूल परिवर्तित करके समन्वय स्थापित करने में समर्थ होता है।

7- **सन्तुलित व्यक्तित्व**- समायोजित व्यक्ति एक व्यवस्थित व्यक्तित्व वाला होता है । समस्याओं का सामना धैर्य तथा साहस के साथ करता है।

8- **द्वन्दों के समाधान की क्षमता**- सुनियोजित व्यक्ति अपने मानसिक द्वन्दों को शीघ्र निपटाने की क्षमता रखता है तथा लम्बे समय तक हताशाओं से नहीं घिरता है।

9- **क्षमता तथा आकांक्षाओं में न्यूनतम अन्तर**- एक समायोजित व्यक्ति अपनी क्षमताओं तथा आकांक्षाओंमें कम से कम अन्तर रखता है।

10- **अत्यधिक चिन्ताग्रस्त होने की भावना न होना**- एक सुनियोजित व्यक्ति किसी चीज को लेकर बहुत अधिक चिन्ताग्रस्त नही होता है बल्कि धैर्य से काम लेकर समस्या का समाधान करता है।

इस प्रकार एक सुनियोजित व्यक्ति धैर्यवान,आत्मविश्वासी,सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार कार्य करने वाला तथा अपनी क्षमता के अनुकूल लक्ष्य निर्धारित करता है।

13.3.3 समायोजन की प्रक्रिया (Process of Adjustment)

समायोजन की प्रक्रिया व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती रहती है। समायोजन की प्रक्रिया में व्यक्ति तथा उसका वातावरण दोनों प्रभावित होते हैं। इस प्रक्रिया में व्यक्ति वातावरण को या तो अपने अनुकूल ढाल लेता है या फिर अपने आपको वातावरण के अनुकूल ढाल लेता है और तीसरी स्थिति में दोनों पक्षों में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन किया जाता है।

13.3.4 समायोजन प्रक्रिया की विशेषताएं (Characteristics of Adjustment Process)

समायोजन प्रक्रिया की मुख्य विशेषताएं निम्न है-

1- **गतिशील प्रक्रिया** - समायोजन का चक्र निरन्तर चलता रहता है। ऐसा इसलिए होता है कि व्यक्ति के लिए दिन-प्रतिदिन नई आवश्यकताएं सामने आती हैं।

2- **उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया**- जब व्यक्ति को कोई आवश्यकता होती है तो आवश्यकता को पूरा करने के उद्देश्य से व्यक्ति सक्रिय हो जाता है और जब आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है तो मनुष्य समायोजित हो जाता है।

3- **द्विमार्गी प्रक्रिया**- समायोजन की प्रक्रिया में व्यक्ति उसका वातावरण दोनों में से कुछ परिवर्तन द्वारा ही समायोजन की प्रक्रिया पूरी होती है।

4- **कुण्ठा तथा द्वन्द की स्थितियाँ**- जब तक व्यक्ति की आवश्यकताएं पूरी नहीं होती तब तक वह निराशा तथा तनाव से पीड़ित रहता है।

5- **सतत चलने वाली प्रक्रिया**- यह प्रक्रिया आवश्यकता की संतुष्टि होने के साथ पूरी हो जाती है परन्तु फिर दूसरी आवश्यकता के उत्पन्न होने से पुन: शुरू हो जाती है। अत: सतत चलने वाली प्रक्रिया है।

13-3-5 समायोजन के प्रतिमान (Models of Adjustement)

व्यक्ति के समायोजन की प्रक्रिया और कार्यविधि की व्याख्या करने वाले प्रारूपों को समायोजन के प्रतिमान कहा जाता है। ये प्रतिमान कुछ तथ्यों पर आधारित होते हैं जिनके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि व्यक्ति वातावरण के साथ कब, क्यों और कैसे समायोजन करता है। दो मुख्य प्रतिमानों का विवरण इस प्रकार है-

समायोजन का व्यवहार वादी प्रतिमान

वॉटसन तथा अन्य व्यवहारवादियों ने मन तथा अचेतन जैसे अमूर्त प्रत्ययों को पूर्णत भ्रामक तथा आधारहीन करार दिया। उनके अनुसार व्यक्ति का वास्तविक अस्तित्व उसके शरीर से अभिव्यक्त होता है तथा व्यक्ति एक यन्त्र की भान्ति कार्य करता है। जिस तरह यन्त्र के सभी कल पुर्जे कार्य करते हुए यन्त्र को संचालित करते है। उसी तरह शरीर के विभिन्न अंग वातावरण के साथ अन्त:क्रिया करके व्यक्ति के व्यवहार का संचालन करते हुए उसे वातावरण के साथ समायोजित करते है।

समायोजन का व्यवहारवादी प्रतिमान अधिगम के नियमों तथा सिद्धांतों पर आधारित है। समायोजन की प्रक्रिया की व्याख्या थॉर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित साहचर्य के माध्यम से की जा सकती है। जब कोई प्राणी किसी परिस्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है तो उसे संतुष्टि होती है तथा वह इस प्रक्रिया को बार-बार दोहराता है। स्किनर ने क्रिया प्रसूत सिद्धांत में प्राणी को वांछनीय व्यवहार करने पर पुनर्बलन दिया जाता है। अत: समायोजन की प्रक्रिया में अनुक्रिया पुनर्बलन की सार्थकता को बल मिला। टॉलमैन के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार में उसके विशेष उद्दीपनों तथा अनुक्रियाओं का स्वरूप सदैव एक जैसा नहीं रहता बल्कि उसका व्यवहार व्यक्ति तथा वातावरण परिस्थितियों से सम्बन्धित कुछ कारक प्रभावित करते है ताकि उसका वातावरण के साथ उचित तालमेल बना रहे।

यह प्रतिमान वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। इसमें प्राणी के व्यवहार को परिवर्तित तथा नियन्त्रित करने पर बल दिया जाता हैं तथा उसकी भावी समायोजन की संभावनाओं का पता लगाने की कोशिश की जाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यवहारवादियों के अनुसार अधिगम व्यवहार ही सामंजस्य प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है। इस प्रतिमान के अनुसार शिक्षक छात्रों की वातावरणीय स्थितियों में परिवर्तन करके उसके व्यवहार को नियन्त्रित करता है।

समायोजन का मनोविश्ले षणवादी प्रतिमान

इस प्रतिमान को प्रतिपादित करने का श्रेय फ्रॉयड को जाता है। बाद में उसके कुछ साथियों एडलर जंग, एरिक, कैरीन तथा हार्नि आदि ने इसमें संशोधन किये। मनोविश्ले षणवादी व्यक्ति के समायोजन तथा उसके चेतन व्यवहार के संचालन में अचेतन का विशेष योगदान मानते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति की समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं को समझने तथा उसका निवारण करने के लिए अचेतन के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। फ्रॉयड ने व्यक्तित्व की संरचना को द्वंद, अहं

तथा पराहं के संगम के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार एक समायोजित व्यक्ति इन तीन अंगों के साथ आसानी से अनुकूलन हो जाता है और तनाव की स्थिति से मुक्त रहता है। दूसरी ओर जिन व्यक्तियों में इन तीनों घटकों में उचित तालमेंल नहीं रहता है। वे वातावरण और समाज के साथ सामंजस्य नही कर पाते और तनावग्रस्त रहते है। इदं व्यक्ति की मनोऊर्जा का गर्भगृह है तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तिया इदं से ही विकसित होती है। जबकि अहं इन प्रवृत्तियों की तुष्टि हेतु सामाजिक मान्यताओं के अनुकूल परिस्थितियां तैयार करता है लेकिन पराहं केवल उन्हीं कार्यों को करने की अनुमति प्रदान करता है , जिनसे नैतिकता की सीमा का उल्लंघन न हो।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनो-विश्लेषण प्रतिमान में व्यक्ति अपने वातावरण अथवा दोनों में परिवर्तन करके समायोजन करता है। अत: यह एक गतिशील तथा चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है। फ्रॉयड के साथियों ने इदं अहं तथा पराहं के अतिरिक्त वातावरणीय परिस्थितियों को भी समायोजन की प्रक्रिया में विशेष महत्त्व दिया है। शिक्षकों को चाहिए कि वे छात्रों को उनके आत्म बोध से अवगत कराये जिससे वे वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकें।

13.3.6 समायोजन के निर्धारक (Determinants of Adjustment)

समायोजन के निर्धारक वही होते हैं जो किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्धारक होते हैं। इस प्रकार समायोजन के निर्धारण में मुख्य रूप से दो कारक महत्त्वपूर्ण हैं-

1- जैविक कारक

2- सांस्कृतिक कारक

1- जैविक कारक- समायोजन के जैविक निर्धारक व्यक्ति की अनुवांशिकता से जुड़े होते हैं। जैविक दृष्टिकोण से प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय होता है।

जेम्स सी. कोलमैन ने व्यक्ति के समायोजन में चार जैविक आवश्यकताएं बताई हैं-

1) आन्तराग- इसमें भोजन, पानी, ऑक्सीजन, नींद, मल मूत्र त्याग करना तथा जीने के लिए अन्य क्रियाएँ तथा परिस्थितियां आती है।

2) सुरक्षा- इसमें वे दो चीजे आती है जो शरीर को हानि तथा क्षति होने से रक्षा करती है।

3) काम- यह आवश्यकता प्रजातियों के चिरस्थायीकरण तथा व्यक्ति की कामवासना की पूर्ति हेतु महत्त्वपूर्ण है।

4) संवेदी तथा गामक- यह संवेदित उत्तेजनाओं तथा गामक क्रियाओं के लिए आवश्यक है जिससे शारीरिक तन्त्र अच्छी तरह से कार्य कर सके।

अभ्यास प्रश्न-1

1- जब व्यक्ति दम्पत्ति जीवन में जीविकोपार्जन करके अत्यन्त प्रसन्न होता है तो यह कौन सा समायोजन कहलाता है ?

क) पारिवारिक समायोजन ख) सामाजिक समायोजन

ग) मानसिक समायोजन घ) उपरोक्त सभी

2- जब प्रौढ़ सिरदर्द, अपाचन, कब्ज, अल्सर इत्यादि बीमारियों के खतरे में हो तो यह कहलाता है ?

क) शारीरिक समायोजन ख) कार्य क्षमता

ग) संतुलित व्यक्तित्व घ) सामाजिक स्वीकार्यता

13.4 व्यवसायिक और पारिवारिक समायोजन (Vocational and Family Adjustment)

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति व्यवसाय शुरू करता है। एक जीवन साथी का चयन करता है। शादी करके भावी जीवन जीना सीखता है। परिवार शुरू करता है। बच्चों का पोषण करने की जिम्मेदारी आ जाती है। नागरिक जिम्मेदारियां बखूबी निभा सकता है। एक सौहार्दपूर्ण सामाजिक समूह ढूंढने में व्यक्ति लग जाता है।

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में विकासात्मक कार्यों में व्यावसायिक व पारिवारिक समायोजन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हमें अपने भावी जीवन के लिए व्यवसाय चुनना पड़ता है, पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करना पड़ता है। ये ज्यादा मुश्किल कार्य हैं, इनमें समायोजन करने की अत्यन्त आवश्यकता रहती है।

परिवार में समायोजन करने के लिए विकासात्मक कार्य करना पड़ता है। जब प्रौढ़ की शादी हो जाती है तो परिवार के साथ समायोजन करना प्रौढ़ की महत्त्वपूर्ण भूमिका बन जाती है।

अन्य विकासात्मक कार्य प्रौढ़ावस्था में सामाजिक समूहों के अनुकूल, नागरिक उतरदायित्व को समझते हुए जीवन यापन करना पड़ता है । यदि प्रौढ़ वैवाहिक समायोजन सफल कर लेता है तो परिवार व दम्पत्ति संतुष्ट हो जाता है। यौन-भूमिका समायोजन व्यावसायिक समायोजन का मौलिक आधार है।

13.4.1 व्यवसायिक समायोजन (Vocational Adjustment)

वर्तमान समय में प्रौढ़ों में आनन्द की अनुभूति संतोषजनक व्यवसायिक समायोजन से होती है। भावी जीवन में अपने व्यवसाय से कितना धन अर्जित हो रहा है और कैसे अर्जित किया जा रहा है पर

विशेष बल दिया जाता है । परिवार में यदि पत्नी समायोजन नहीं करती तो परिवार का माहौल तनावपूर्ण रहता है।

क) **व्यवसाय का सही चुनाव**- सबसे पहला महत्त्वपूर्ण समायोजन व्यवसाय का सही चुनाव करना है । प्रौढ़ किसी व्यवसाय में प्रशिक्षण लेता है, लेकिन उसे यह मालूम नहीं होता कि उसे किस व्यवसाय के आधार पर जीविकोपार्जन करना है । कई बार ऐसे व्यवसाय का चुनाव प्रौढ़ कर लेते हैं जिसके कारण उन्हें नौकरी नहीं मिलती और भावी जीवनयापन में बहुत मुश्किल हो जाती है। आज की पीढ़ी के व्यवसाय का चुनाव करना अत्यन्त मुश्किल कार्य है। कई प्रौढ़ प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं, कई एक नौकरी के उपरान्त दूसरी नौकरी ढूंढने में लग जाते हैं । जिसके कारण व्यवसायिक चुनाव में मुश्किल आती है । कई प्रौढ़ों का मानना होता है कि जिस व्यवसाय में परिवार के सदस्य हैं, उस व्यवसाय में नहीं जाना, जिसके कारण पारिवारिक व व्यावसायिक समायोजन करना मुश्किल प्रतीत होता है।

ख) **व्यवसाय चुनाव की स्थिरता**- व्यावसायिक समायोजन की दूसरी विशेषता व्यवसाय चुनाव की स्थिरता या स्थायित्व है । यह प्रौढ़ दम्पति दोनों के लिए मुश्किल हो जाता है, यदि व्यवसाय के चुनाव में स्थायित्व न हो । व्यावसायिक चुनाव में निम्नलिखित कारक प्रमुख उत्तरदायी हैं-

1- विभिन्न कार्यों की बढ़ोतरी।

2- कार्य समय में लचीलेपन का अभाव।

3- व्यवसाय की लम्बी अवधि की समस्या।

4- कार्य में सुरक्षा का अभाव।

5- स्वयं की क्षमताओं को अनदेखा करना।

6- नव-यथार्थवादी व्यावसायिक लक्ष्य व मूल्य।

ग) **पुरुष समायोजन (Men's Adjustment)**

व्यवसाय में समायोजन करना पुरु षों के लिए महत्वपूर्ण परिस्थिति होती है । प्रथम-नौकरी उन्हें सकारात्मक भूमिका अदा करने की अनुमति प्रदान करती है। अपनी योग्यताओं के अनुरूप कार्य कुशलता की प्राप्ति होती है।

उदाहरणस्वरूप यदि पुरुष नेता बनना चाहता है लेकिन वह किसी विद्यालय में पठन-पाठन का अच्छा कार्य कर रहा है तो वह विद्यालय में ही कार्य करके संतुष्ट है।

द्वितीय- व्यक्ति को संतुष्टि होती है यदि वह अपनी योग्यता के अनुरूप व्यवसाय में कार्य कर रहा है।

तृतीय- प्राधिकारी के साथ यदि व्यक्ति समायोजन कर लेता है तो वह संतुष्ट है। कई प्रौढ़ विद्यालय एवं महाविद्यालयों में प्राधिकारियों के साथ उचित समायोजन करने में सफल रहते हैं।

चतुर्थ- प्रौढ़ व्यावसायिक नेता बनकर अच्छा समायोजन करने में सफल हो जाते हैं। वे अपने व्यवसाय से इतने संतुष्ट होते हैं कि उनका अपना परिवार खुशहाल रहता है।

घ) महिला समायोजन (Women's Adjustment) - व्यावसायिक जीवन में कुछ परिस्थितियां पुरुषों को समायोजन में सहायतार्थ होती है, इसी प्रकार महिलाओं के समायोजन के लिए भी कई परिस्थितियों प्रभावशाली सिद्ध होती है।

प्रथम- जब महिला योग्यता, प्रशिक्षण और उम्मीदों के अनुरूप नौकरी नहीं प्राप्त कर पाती तो वह निराश हो जाती है। जिसके कारण उनमें हताशा देखने को मिलती है। समायोजन कर पाना मुश्किल हो जाता है। अत: निम्नलिखित ढंग से पारिवारिक व वैवाहिक समायोजन की व्याख्या प्रस्तुत है।

आज के दौर में एक प्रौढ़ व्यक्ति की खुशियां बड़े स्तर पर व्यवसायिक समायोजन में संतुष्टि पर निर्भर करती है। उनकी आजीविका की पूरी प्रणाली इस बात पर निर्भर करती है कि वे कितना कमाते हैं और किस तरह कमाते हैं क्योंकि औरतों की एक बड़ी संख्या चाहे विवाहित या अविवाहित हो आज घर से बाहर काम करते हैं उन्हें भी व्यवसायिक समायोजन करना चाहिए। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि बहुत सी महिलाएं राजकीय विभागों में काम करते हुए लैंगिक भेदभाव का शिकार होती हैं। इस तरह भेदभाव से प्रभावित महिलाएँ कम वेतन पर भी रोजगार लेने के लिए बाध्य होती हैं। यहां तक कि अच्छी योग्यताओं वाली महिलाएं भी व्यवसायिक क्षेत्र में भेदभाव का शिकार होती है।

कुछ औरतें तनाव और असन्तोष में भी समायोजन कर लेती है। जब उनके लिए सभी व्यवसायिक दरवाजे बन्द हो जाते हैं। इनमें से एक सामान्य तरीका उसका अपने पतियों को सफलता पाने के लिए सहायता करनी भी होती है क्योंकि उनके रास्तों की बाधाओं के कारण वे महसूस करती है कि वे कभी भी अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकती। अध्ययनों से यह पाया गया है कि समायोजन की आवश्यकता आज बहुत से क्षेत्रों में है। इनमें से प्रत्येक समायोजन न सिर्फ समायोजन के प्रभाव पर निर्भर है। इससे भी अधिक आवश्यक किसी व्यक्ति की सफलता और असफलता के अनुभव समायोजन में ज्यादा सक्रिय होते हैं। व्यवसायिक समायोजन के अधिकतर क्षेत्रों में प्रौढों को किस तरह से तैयार होना चाहिए यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। इससे सम्बन्धित महत्वपूर्ण पहलू अग्रलिखित है।

पहला प्रमुख समायोजन व्यवसाय का चुनाव है। सालों पहले जब कुछ प्रौढ़ों ने कार्य की तैयारी का चुनाव किया तो उन्होंने व्यवसायिक कार्य के लिए विद्यालयों, महाविद्यालयों और यहां तक कि व्यवसायिक प्रशिक्षण संस्थानों से शिक्षा लेने के पश्चात उन्हें सन्देह रहा कि क्या वे उनकी आगामी जीवन यापन में सफल होंगे ? यहाँ तक कि व्यवसायिक क्षेत्र में किसी विशेष चुनाव के द्वारा किये गये प्रशिक्षण से ही काम मिल सकता है।

आज यह प्रमाण है कि व्यवसायिक समायोजन नयी पीढ़ी के प्रौढ़ों के लिए आवश्यक हो गया है। बहुत से प्रौढ़ जो कम प्रशिक्षित या अप्रशिक्षित हैं किसी कार्य को एक विशेष अवधि के लिए करने के पश्चात दूसरी नौकरी ढूंढते हैं। यह कार्य की आशा बीस से तीस की उमर से अधिक होती है। व्यवसाय का चुनाव कब किया जाए किन्ही निश्चित तथ्यों पर निर्भर करता है। इनमें से ज्यादा आवश्यक व्यक्ति द्वारा चुने गए कार्य के लिए उसकी पसन्द पर निर्भर करती है। बहुत से प्रौढ़ यह शिकायत करते हैं कि जिन क्षेत्रों में उनके अभिभावकों या रिश्तेदारों ने काम किया है वे उसे अलग करना चाहते हैं।

प्रौढ़ों में प्रमुख समायोजन उनके व्यवसाय के चुनाव में स्थिरता है। यह प्राय: पुरुष और महिला को कार्य परिवर्तन करना असामान्य नहीं है। एक व्यक्ति का व्यवसायिक चुनाव कितना स्थिर है। मुख्यत: तीन पहलुओं पर निर्भर है जो कि कार्य अनुभव, व्यक्तिगत रूचियाँ और व्यवसायिक मूल्य है। आज आर्थिक आवश्यकता का महत्त्व भी इसमें अपनी भूमिका दे रहे हैं।

बहुत सी महत्त्वपूर्ण परिस्थितियां है जो पुरुषों के समायोजन को उनके काम में प्रभावित करती है। पहले उन्हें जिस कार्य को करने की इच्छा होती है दिये जाये तो वे संतुष्ट होकर अपने काम में समायोजित हो जाएगें। उदाहरण के लिए एक आदमी नेता की भूमिका अदा करना चाहे या खेलने आदि हो इस तरह की भूमिका विद्यालयों, महाविद्यालयों के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

दूसरी संतुष्टि तब प्राप्त होती है जब उसे लगता है कि उसका कार्य उसकी योग्यताओं और प्रशिक्षण के अनुरूप हो।

काम का तीसरा समायोजन आदमी का अधिकारों के साथ है। वे वास्तविक तौर पर किस तरह नियोजित हो इस बात के प्रभाव पर निर्भर करता है कि उनके काम का समायोजन कैसा है।

काम में चौथा समायोजन वेतन में वृद्धि या कमियों द्वारा प्रभावित है। प्रौढ़ व्यक्ति हर साल ज्यादा वेतन की इच्छा रखता है।

जिस तरह पुरुषों का समायोजन कई तरह से प्रभावित है उसी तरह महिलाओं का भी प्रभावित होता है। जब औरतें अपनी योग्यता, प्रशिक्षण और अनुभव होने के बावजूद नौकरी पाने में असफल रहती हैं तो वे तनाव महससू करती हैं।

13.5 वैवाहिक समायोजन (Marital Adjustment)

वैवाहिक जीवन में दम्पति को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ज्यादातर प्रौढ़ प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में अच्छे स्वास्थ्य व बच्चों के लिए ज्यादा चिन्ताग्रस्त रहते हैं और एक साथ समय व्यतीत करने में मुश्किल प्रतीत होती है। प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में जीवन संतुष्टि के लिए निम्नलिखित परिमाप हैं-

1- **मानसिक (Mental)** -वैवाहिक जीवन में समायोजन करने के लिए दम्पति में भावात्मक सम्बन्ध होना बहुत ही आवश्यक है।

2- **नौकरी (Job)** - दाम्पत्य जीवन में यह बहुत जरूरी होता है कि नौकरी की संतुष्टि परिवार के लिए लाभकारी हो। परिवार में पत्नी चाहती है कि मेरे पति की आमदनी ज्यादा हो जिससे परिवार का पालन पोषण सही ढंग से हो सके।

3- **सामाजिक (Social)** –मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर उसका समाजीकरण होता है। एक वैवाहिक दम्पति के लिए समाज, सांस्कृतिक मूल्यों व परम्परागत सामाजिक भूमिकाओं का निर्वाहन करने में सहायतार्थ होता है।

4- **वैवाहिक (Marital)** -अच्छे सम्बन्ध वे होते हैं जिनमें समस्या समाधान नियन्त्रित ढंग से हो सके। प्रारम्भिक प्रौढ़ अवस्था में पति और पत्नी को समस्या समाधान के द्वारा वैवाहिक जीवन सफल करने में सहायता मिलती है। वैवाहिक समायोजन एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। विवाह के उपरान्त से ही परिवार में समायोजन की गम्भीर समस्या प्रतीत होती है। प्रत्येक व्यक्तिगत गुण के आधार पर दाम्पत्य जीवन सफल होता है। एक दम्पति में विभिन्न व्यक्तिगत विभिन्नताएं होती है। पति और पत्नी दोनों में एक-दूसरे की वृद्धि और विकास को समझने की परिपक्वता होनी चाहिए।

मुखर्जी **(1990),** ने वैवाहिक समायोजन को परिभाषित किया है कि पति और पत्नी में समग्रता होनी चाहिए। एक दूसरे की खुशी में संतुष्टि होनी चाहिए लेकिन दाम्पत्य जीवन में यह चिन्ता का विषय है कि पति और पत्नी के बीच वैवाहिक समायोजन में यह बहुत महत्वपूर्ण है कि वैवाहिक रिश्ते की सफलता के लिए पति-पत्नी में एक दूसरे के प्रति समझ का होना अति आवश्यक है।

डैगलर **(1980)** ने दावा किया है कि कुछ वर्षों में वैवाहिक जीवन में कई संघर्ष देखने को मिले हैं जिनमें लिंग, असमानता, बलात्कार आदि।

वैवाहिक समायोजन एक सामाजिक समायोजन है जिसमें पति और पत्नी घर का समायोजन करते हैं।

वैवाहिक जीवन में कठिनाईयाँ

क) शादी के लिए अधूरी तैयारी

यद्यपि भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान में यौन समायोजन आसान हो गया है क्योंकि घर, स्कूल और विद्यालयों में उपलब्ध यौन सूचनाएं उपलब्ध होने के कारण ज्यादातर जोड़ो ने घरेलू कौशल जैसे बच्चों की देखभाल, उनके लिए वित्तीय प्रबन्धन आदि को तैयार कर रखते है।

ख) विवाह की भूमिका

वैवाहिक भूमिकाओं में परिवर्तन की धारणा स्त्रियों और पुरु षों दोनों में अलग सामाजिक वर्गों, धार्मिक समूहों में समायोजन की समस्या पहले की अपेक्षा कम हुई है।

ग) बाल विवाह (Early Marriage)

व्यस्क होने से पहले नौजवानों की शादी करने से उनकी शिक्षा में बाधा आ जाती है और उन्हें बहुत सी आर्थिक कठिनाईयों का सामना भी करना पड़ता है। फलस्वरूप वे पूरी तरह वैवाहिक जीवन का आनन्द नहीं ले पाते हैं। जिसके कारण उनके अन्दर एक स्थिर जलन, नाराजगी और विरोध की भावना का विकास होता है जो कि अच्छे वैवाहिक समायोजन में बाधा डालती है।

घ) विवाह के अवास्तविक पहलू (Unrealistic Concepts of Marriage)

वे प्रौढ़ जिन्होंने अपना जीवन विद्यालयों और महाविद्यालयों में गुजारा है कम या बिलकुल भी अनुभव न होने के कारण विवाह के अवास्तविक पहलुओं को नही जान पाते हैं। विवाह की यह अवास्तविक प्रणाली गम्भीर समायोजन समस्याएं उत्पन्न करती है। जिसके कारण तलाक हो जाता है।

ड़) मिश्रित शादियाँ (Mixed Marriages)

दो परिवारों में वैवाहिक समायोजन तभी खुशहाल होते हैं अगर उनके बीच वैवाहिक सम्बन्ध आपसी सहमति से हुए हो।

च) छोटा प्रेमालाप (Shortened Courtship)

पुराने दिनों की अपेक्षा आजकल वैवाहिक सम्बन्ध से पूर्व की अवधि कम होने लगी है। जिससे कई तरह की समायोजन सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो जाती है।

छ) विवाह के प्रेम प्रसंग युक्त पहलू (Romantic Concepts of Marriage)

बहुत से प्रौढ़ किशोर अवस्था में ही विवाह से सम्बन्धित प्रेम प्रसंग युक्त रिश्ते बना देते हैं। इससे उनके अन्दर शादी के प्रति रूचियाँ कम हो जाती है तथा वे वैवाहिक जीवन सम्बन्धी कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों से दूर भागते हैं।

ज) पहचान की कमी (Lack of Identity)

यदि कोई आदमी यह महसूस करें कि उसका परिवार, दोस्त और रिश्तेदार उसे एक अयोग्य पति और यदि एक स्त्री यह महसूस करे कि समाज में उसकी पहचान सिर्फ गृहिणी तक ही सीमित है हालांकि उसके अन्दर और अधिक कार्य करने की क्षमता पाई जाती हो तो अपनी पहचान की कमी के कारण तनावग्रस्त हो जाती है।

वैवाहिक समायोजन का मूल्यांकन (Assessment of Marital Adjustment)

वैवाहिक समायोजन का मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित परिमाप सम्मिलित है-

1- परिवार के वित्तीय प्रबन्धन करना।

2- मनोरंजन की रिश्तों में भूमिका।

3- दोस्तों के स्नेह का प्रदर्शन।

4- यौन सम्बन्धों का आंकलन ।

5- उचित आचरण।

6- जीवन का दर्शन।

7- ससुराल के साथ निपटने के तरीके।

8- पारिवारिक रिश्तों में सम्बन्धों का आंकलन ।

9- अवकाश के समय का परिवार में सदुपयोग ।

10- अपने वैवाहिक साथी पर आत्मविश्वास।

अभ्यास प्रश्न- 2

1. प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था के विकासात्मक कार्यों में व्यावसायिक व पारिवारिक समायोजन अत्यन्त महत्वपूर्ण है ? सत्य/असत्य

2. व्यावसायिक चुनाव के महत्वपूर्ण कारक सम्मिलित हैं ?

क) लचीलेपन का अभाव ख) कार्य में सुरक्षा का अभाव

ग) व्यवसाय की लम्बी अवधी की समस्या घ) उपरोक्त सभी

पुरुष समायोजन

व्यवसाय में समायोजन करना पुरुषों के लिए महत्वपूर्ण परिस्थिति होती है । पुरुष को अपनी योग्यताओं के अनुरूप कार्य कुशलता की प्राप्ति होती है।

13.6 सारांश

बढ़िया समायोजन वह है जो यथार्थवादी और संतोषप्रद दोनों हो। कम-से-कम यह उन निराशाओं, तनावों और व्याकुलताओं को अल्पमत कर देता है । जिन्हें व्यक्ति को सहन करना पड़ता है । प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यावसायिक संतुष्टि जीवन में अत्यन्त आवश्यक है । व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति से परिवार में उचित सामंजस्य हो जाता है जो कि प्रत्येक परिवार के लिए समायोजन करने में सहायक सिद्ध होता है। यदि दम्पति व्यावसायिक दृष्टि से परिपूर्ण नहीं तो परिवार कुण्ठाग्रस्त हो जाता है। इस पाठक के अन्तर्गत हम लोगों ने व्यावसायिक व पारिवारिक समायोजन का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया।

13.7 शब्दावली

- **समायोजन -** समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई जीवधारी अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की संतुष्टि से सम्बन्धित परिस्थितियों में संतुलन बनाये रखता है।

- **व्यावसायिक समायोजन -** समायोजन व्यवसाय का सही चुनाव करना है। इससे बालकों को आनन्द की अनुभूति देता है।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-**1**

1. क 2. क

अभ्यास प्रश्न-**2**

1. सत्य 2. घ

13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- व्यावसायिक व पारिवारिक समायोजन से आप क्या समझते हैं ?

2- वैवाहिक समायोजन से क्या अभिप्राय है ?

3- पारिवारिक समायोजन की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ?

4- वैवाहिक समायोजन को मूल्यांकन कीजिए ?

13.10 संदर्भ ग्रन्थ

- हरलॉक, ई.बी. (1980) मनोविज्ञान विकास: एक जीवन उपागम, दि मैक्गरा हिल कम्पनी, न्यूयार्क।
- सिंह, अरूण कुमार (2001) शिक्षा मनोविज्ञान भारती भवन, पब्लिशर्ज एंड डिस्ट्रीव्यूटर्स, पटना।
- मंगल. एस.के. (2014) प्राईवेट, लिमिटेड, दिल्ली।
- शर्मा. आर. ए. (2011) छात्र का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।

इकाई -14

मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक परिवर्तन एवं विशेषताएं

Physical, psychological and social changes and characteristics of middle age and old age

इकाई की रूपरेखा (Structure of Unit)

14.0 प्रस्तावना (Introduction)
14.1 उद्देश्य (Objectives)
14.2 मध्यावस्था की विशेषताएं (Characterstics of Middle age)
14.3 वृद्धावस्था की विशेषताएं (Characterstics of Old age)
14.4 मध्यावस्था में शारीरिक परिवर्तन (Physical changes in Middle age)
14.5 मध्यावस्था में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन (Psychological changes in Middle age)
14.6 मध्यावस्था में सामाजिक परिवर्तन (Social changes in Middle age)
14.7 वृद्धावस्था में शारीरिक परिवर्तन (Physical changes in Old age)
14.8 वृद्धावस्था में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन (Psychological changes in Old age)
14.9 वृद्धावस्था में सामाजिक परिवर्तन (Social changes in Old age)
14.10 सारांश (Summary)
14.11 निबंधात्मक प्रश्न
14.12 संदर्भ ग्रन्थसूची (Bibliography)

14.1 प्रस्तावना

विकास की प्रक्रिया व्यक्तित्व के उचित समायोजन और विकास के मार्ग में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जो गर्भाधान से आरंभ होती है एवं मृत्यु पर्यन्त चलती है। विकास अवस्थाओं को अनके चरणों में बांटा गया है। प्रसिद्व वैज्ञानिक हरलॉक के अनुसार जीवन की प्रमुख अवस्थाएं निम्नानुसार है :

गर्भकालीन अवस्था : गर्भाधान से जन्म तक।
शैशवावस्था : जन्म से 10 से 14 दिन तक।
बचपनावस्था : 2 सप्ताह से 2 वर्ष तक।
बाल्यावस्था :
पूर्व बाल्यावस्था - 2 से 6 वर्ष तक।

उत्तर बाल्यावस्था - 6 से 13 वर्ष तक बालिकाओं में तथा 6 से 14 वर्ष बालकों में।
वय:संधि -11 से 15 वर्ष तक बालिकाओं में तथा 12 से 16 वर्ष तक बालकों में।
किशोरावस्था :
पूर्व किशोरावस्था :-13 से 16 वर्ष तक बालिकाओं में तथा 14 से 17 वर्ष तक बालकों में।
उत्तर किशोरावस्था :- 16 से 21 वर्ष तक बालिकाओं में तथा 17 से 21 वर्ष बालकों में।

प्रौढावस्था : 21 से 40 वर्ष तक।
मध्यावस्था : 41 से 60 वर्ष तक।
वृद्धावस्था : 60 वर्ष के बाद।

जीवन के विकास की अवस्थाओं की अपनी अलग-अलग विशेषताएं होती है। इन्ही विशेषताओं के कारण एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न दिखाई देती है। जीवन में विकास की गति निरंतर बनी रहती है तथा यह एक क्रमिक शृंखला के रूप में जीवंत पर्यन्त तक चलती रहती है। विकास की प्रक्रिया में जो शारीरिक परिवर्तन होते है उन्हें देखा जा सकता है लेकिन बौद्धिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास को मात्र अनुभव किया जा सकता है। अत: कहा जा सकता है कि विकास का तात्पर्य उन सभी शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों से है जो व्यवस्थित, क्रमिक एवं समानुगत हो तथा परिपक्वता की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक होते हैं। विकास अवस्थाओं में मध्यावस्था एवं वृद्धावस्था यथार्थ में परिवर्तन के साथ पूर्णता लेकर आती है। इस समय व्यक्ति स्वयं के चेतन व अनुभव द्वारा स्वाभाविक सामंजस्य के साथ जीवन को प्रभावशाली व सहज बना सकता है।

14.1 उद्देश्य (Objective)

विकास की अवस्थाओं में मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था पूर्णता की ओर अग्रसर होती है। विभिन्न शारीरिक, मानसिक व सामाजिक परिवर्तन इन अवस्थाओं में परिलक्षित होते हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान सकेंगे कि -

- विकास की विभिन्न अवस्थाओं में मध्यावस्था तथा वृद्वावस्था भी विशेष है|
- मध्यावस्था के गुणों की जानकारी दे सकेंगे|
- मध्यावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों की पहचान कर सकेंगे|
- मध्यावस्था में होने वाले मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को उजागर कर सकेंगे|
- मध्यावस्था में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों से परिचित हो सकेंगे।
- वृद्धावस्था के गुणों की जानकारी दे सकेंगे।
- वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन को पहचान कर सकेंगे।
- वृद्धावस्था में होने वाले मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिवर्तनों से परिचित हो सकेंगे।

- इस इकाई का उद्देश्य मध्यावस्था व वृद्धावस्था में होने वाले गुणों और विशेषताओं तथा परिवर्तनों के प्रति समुचित मार्गदर्शन प्रदान करना है।

14.2 मध्यावस्था की विशेषताएं

मध्यावस्था तकनीकी दृष्टिकोण से जीवन के स्थायित्व की अवस्था है। इस समय व्यक्ति का स्वास्थ्य सामान्यतया अच्छा होता है तथा आय भी अधिकतम होती है, परंतु इनमें व्यक्तिगत अंतर भी होना स्वाभाविक है।

41 वर्ष से लेकर 60 वर्ष तक की इस अवस्था में कई शारीरिक, मनोवैज्ञानिक ,संवेगात्मक, सामाजिक तथा नैतिक एवं धार्मिक परिवर्तन होते हैं जो कई बार प्रसन्नता देने वाले तथा कई बार ऋणात्मकता लिए होते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए कठोर परिश्रम, धैर्य, सहनशीलता से निभाएं गए उत्तर दायित्वों की सफलता प्राप्त होती है। इसी अवस्था में व्यक्ति अपने द्वारा बनाई गई पहचान एवं उपलब्धियों की सफलता का आनंद उठाता है।

इस अवस्था के प्रारंभ एवं अंत तक के वर्षों में व्यक्ति कई परिवर्तनों से गुजरता है। जिसमें वे शारीरिक परिवर्तन भी है जिसे व्यक्ति पसंद नहीं करता है तथा अपने स्वास्थ्य की समस्याओं के प्रति भी उसका ध्यान जाने लगता है। व्यक्ति की रुचियां एवं व्यवहार परिवर्तित होने लगते है तथा शांति व सम्मान के साथ जीने की लालसा बढ़ जाती है। इस अवस्था में परिवार के अन्य छोटे सदस्यों के साथ समायोजन करने में कठिनाई आने लगती है। क्योंकि बच्चों की पंसद, रुचियां, इच्छाएं, व्यवहार आदि मध्य वय के लोगों से काफी भिन्न होती है। युवा पीढ़ी पश्चिमी सभ्यता संस्कृति को व्यवहार में उतारने लगते हैं, वहीं उन्हें यह आधुनिकीकरण अप्रशसंनीय लगता है तथा सामंजस्य की समस्या प्रबल होने लगती है। कई लोग इस उम्र तक आते-आते जिद्दी एवं समस्यात्मक व्यवहार दर्शाने लगते हैं।

सामाजिक उत्तर दायित्वों का सफल निर्वहन उनमें प्रसन्नता व संतोष की अभिव्यक्ति देता है, वहीं यदि इस उम्र तक उनके बच्चे व्यवसायिक व शैक्षिक सफलता अर्जित नहीं कर पाते है तो वे तनाव ग्रसित हो जाते है। इस आयु की समाप्ति तक व्यक्ति की संतान संबंधी सांसारिक जिम्मेदारियां यथा विवाह इत्यादि पूर्ण हो जाते हैं। इस अवस्था में ईश्वर, आत्मा, जीवन मरण, पाप पुण्य की दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाकर नैतिकता को स्वीकार कर जीवन की सफलता के लिए प्रयत्नशील रहता है।

14.4 मध्यावस्था में शारीरिक परिवर्तन

मध्यावस्था में शरीर और शारीरिक क्रियाओ में परिवर्तन स्वाभाविक है तथा ये इतने व्यापक एवं लाक्षणिक होते हैं कि इन्हें सरलता से पहचाना जा सकता है। इस उम्र के पड़ाव में वजन में या तो वृद्धि हो जाती है या फिर कम हो जाता है। शारीरिक सरंचना में परिवर्तन के कारण शारीरिक स्फूर्ति और कार्य क्षमता में कमी आने लगाती। इस अवस्था में लैंगिक आकर्षण क्षीण होने लगता है। व्यक्ति की मांसपेशियो व उतकों में वसा जमा होने लगती है जिससे चलने-फिरने ,उठाने- बैठने में परेशानी भी महसूस होने लगाती है। यदि इस अवस्था में व्यक्ति अपने जीवनचर्या पर ध्यान नहीं दे

तो वह अनेक बीमारियो से ग्रसित होने लगता है जिनमें हृदय रोग, मधुमेंह, उच्च रक्तचाप प्रमुख है। मध्यावस्था में होने वाले प्रमुख शारीरिक परिवर्तन निम्नलिखित है :

1. **नाडी संस्थान में परिवर्तन :** मध्यावस्था में तंत्रिका तंतुओं का क्षय होना प्रारम्भिक अवस्था में होता है जो वृद्वावस्था में तीव्र गति से होने लगता है। मोतियाबिंद तथा आँखों की रोशनी में कमी आने लगती है। व्यक्ति के आँखों की पुतलिया छोटी पडने लगती है तथा मांसपेशिया ढीली पड़ जाती है जिससे ग्लूकोमा जैसी बीमारियों से व्यक्ति ग्रसित हो सकता हैं।

2. **पाचन अंगों में परिवर्तन :** इस अवस्था में पाचन शक्ति कमजोर होना प्रारम्भ होने से व्यक्ति को गरिष्ठ भोजन को पचाना आसान नहीं होता है। व्यक्ति के आमाशय में संकुचन और प्रसरण की क्षमता में शिथिलता आने से पेट संबंधित बीमारियां आ घेरती हैं। छोटी आंतों की दीवारों की पेशियों के कमजोर होने से भोजन का अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता हैं।

3. **दांतों व हड्डियो में परिवर्तन :**समुचित देखभाल के अभाव में कैल्शियम एवं फास्फोरस लवणों की कमी होने से दांतों का टूटने का क्रम शुरू हो जाता है तथा पुन: नए दांतों का आना असंभव होता हैं। हड्डियो में भी ओस्टियोपोरोसिस एवं फैक्चर का आसानी से ठीक नहीं होना, घुटने में दर्द का होना प्रारंभ होने लगता है।

   अंतःस्त्रावी ग्रन्थियों के हार्मोन में कमी, हार्मोन लेवल में परिवर्तन आने से महिलाओं में मासिक धर्म रुक जाता है तथा रजोनिवृति की अवस्था आ जाती है। हार्मोन संबंधित संतुलन बिगडने से अन्य कई प्रकार के विकार आने लगते है।

4. **आधारीय उपापचय दर में कमी होना :** मध्यावस्था की अवस्था में निर्माणात्मक कार्य धीरे -धीरे कम होता जाता है तथा शारीरिक क्रियाशीलता में भी कमी आने लगती है जिससे संपूर्ण आधारीय उपापचय दर में कमी आ जाती है।

   हृदय एवं रक्त परिसंचरण तंत्र में परिवर्तन : वसा एवं वसीय अम्लों का धमनी एवं शिराओं की अंत: दीवारों पर जमना व उसके कारण होने वाली परेशानी का आभास होने लगता है। एथेरोस्ककेरोसिस अथार्त कोलेस्ट्रोल के जमा होने से रक्त का दाब बढ़ जाता है व हार्ट अटैक की संभावना भी कई गुना बढ़ जाती है। इसमें लचीली धमनी व शिराओं का व्यास वसा जमने से कम हो जाता है। ब्लड प्रेशर के अनियमित होने से भी विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करता है।

5. **उत्सर्जी संस्थान में परिवर्तन :** मध्यावस्था में उत्सर्जी संस्थान की प्रमुख कोशिका नेफ्रान की क्रियाशीलता में कमी आने लगाती है इस कारण से मूत्र त्यागने में परेशानी आती है। पथरी होने की संभावना भी हो जाती है।

इसके अलावा बालों का रंग सफेद होने लगता है , चेहरे पर झुर्रियाँव स्किन की चमक भी कम होने लगती है। सयोंजी उत्तकों के कठोर होने से शरीर का लचीलापन कम हो जाता हैं तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी से इस अवस्था का व्यक्ति ऊर्जा स्तर में कमी महसूस करता हैं।

14.5 मध्यावस्था में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन

- मानव जीवन में संवेगों का स्थान जन्म से ही होता है इनकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष परिस्थिति के साथ उनकी स्मृति से भी हो सकती है | ये सवेंग शारीरिक व मानसिक दोनों ही व्यवहार में परिलक्षित होते हैं। अस्थिर सवेंग इस अवस्था में स्थायी होने लगते हैं। मध्यावस्था में निम्न परिवर्तन होते हैं।

- मध्यावस्था में व्यक्ति संवेगों की अभिव्यक्ति स्वतंत्र होकर नहीं करता। अपितु वह घटना, परिस्थिति और व्यक्ति की मनोदशा को प्रदर्शित करता है।

- मध्यावस्था के संवेग दीर्धकालीन होते हैं और परिवार के प्रत्येक निर्णय को सोच-समझकर, तर्कपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करते हैं क्योंकि इस अवस्था में व्यक्ति अपने संवेग को नियंत्रित रख सकता है।

- - इस अवस्था में व्यक्ति अपने संवेगों की पुनरावृति नहीं करता। जो संवेग उत्पन्न हो जाता है वे काफी लंबे समय तक बने रहते हैं। जैसे यदि मध्यवय व्यक्ति एक बार क्रोधित होता है तो तुरंत सामान्यवस्था में नहीं आ पाता है।

- मध्यावस्था पर संवेगों का प्रभाव दीर्घकालीन पड़ता है उनमें क्रोध,घृणा, ईष्या, चिंता जैसे नकारात्मक संवेग काफी लंबे समय तक बने रहते हैं। फलस्वरूप उनकी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति पूर्व की अपेक्षा कम हो जाती है। जैसे पुत्र शोक होने पर माता-पिता उसे सहन नहीं कर पाते है। वे मानसिक रूप से क्षुब्ध तथा शारीरिक तौर पर बीमार हो जाते हैं।

- मध्यावस्था में व्यक्ति अपने संवेगों का प्रकटीकरण समाज द्वारा मान्य तरीके से ही अभिव्यक्त करते हैं।

- मध्यावस्था में व्यक्ति अपनी इंद्रियों को काफी नियंत्रित रख सकता है। जिसके कारण वे मौका और परिस्थियों के अनुरूप संवेगों को अभिव्यक्त करते हैं।

- मध्यवस्था के व्यक्ति अपनी इंद्रियों का संबंध मूर्त एवं अमूर्त दोनों प्रकार के संवेगों से संबंधितहोता है। जितना प्रसन्न मूर्त वस्तु को देखकर होता है उतना उदास किसी अप्रिय घटना के बारे में सोचकर हो जाता है।

- मध्यावस्था में व्यक्ति बालक के भविष्य को लेकर, उसके व्यवसाय या नौकरी को लेकर चिंतिंत रहता है, लेकिन संवेगों को सोच समझकर, शांत स्वभाव से प्रकट करता है जिससे वह अपनी बात को सही ढंग से बच्चों तक पहुंचा सकें।

- -मध्यावस्था में व्यक्ति अपने विचारों, मनोवृतियों एवं सोचने के तरीकों को सुव्यवस्थित ढंग से प्रकट करता है, लेकिन अप्रिय वस्तु को देखने पर क्रोधित भी हो सकता है। इस प्रकार व्यक्ति मध्यावस्था में संवेगों द्वारा सामाजिक समायोजन स्थापित करने में अमूल्य भूमिका निभाता है। इसमें व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक मनोदशा में परिवर्तन होता है और व्यक्ति विकट से विकट कार्य करने की क्षमता प्रकट कर सकता है। संवेगों का भाव

व्यक्ति अपने चेहरे पर अभिव्यक्त करता है । संवेग मानव व्यवहार का असामान्य ढंग है इसको सरल शब्दों में निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं । मध्यावस्था में संवेग व्यक्ति की वह जटिल अवस्था होती है जिसके कारण व्यक्ति के व्यवहार चिंतन, चेतना, अनुभव, अनुभूति प्रत्यक्षीकरण आदि में परिवर्तन होते है जो व्यक्ति के चेहरे के हाव-भाव एवं शरीर के संपूर्ण भावों के द्वारा परिलक्षित होते हैं।

14.6 मध्यावस्था में सामाजिक परिवर्तन

मनुष्य सामाजिक प्राणी है तथा हर अवस्था की तरह इस अवस्था में भी उसकी प्रत्येक गतिविधि पर समाज का प्रभाव पड़ता है । इस अवस्था में बच्चों के बड़े हो जाने तथा उनका विवाह हो जाने से मेलजोल का दायरा बढ़ जाता है, बच्चों को सामाजिक एवं आर्थिक स्थिरता दिलाने का जिम्मेदारी इसी अवस्था में पूर्ण करनी पड़ती है अत: सामाजिक परिवर्तन जीवन को प्रभावित करते हैं । मध्यावस्था में व्यक्ति की यह अभिलाषा होती है कि उसे सामाजिक प्रतिष्ठा मिले, समाज में उसकी यश प्राप्त करने की अभिलाषा बढ़ जाती है । यदि उसे इस अवस्था में आदर, सम्मान, इज्जत मिलती है तो उसे आत्मसंतुष्टि एवं आनंद मिलता है अन्यथा वह बहुत व्याकुल हो जाता है।

परिवार की सरंचना में परिवर्तन :

इस अवस्था में परिवार की सरंचना में परिवर्तन आता है, मूल्यों व संस्कारों में भिन्नता से परिवार के अन्य सदस्यों के साथ तालमेल बैठाना उसके लिए कठिन हो सकता है विशेष रूप से जब युवा संतान उसका कहा नहीं मानती है । कई बार एकल रह जाने पर भी उसके जीवन में अचानक परिवर्तन आ जाता है विशेष रूप से महिलाओं के एकल रह जाने पर परिवार वालो का व्यवहार कटुता पूर्ण हो जाता है।

सामाजिक आर्थिक स्तर पर परिवर्तन :

व्यावसायिक स्तर पर अगर व्यक्ति उच्च स्तर पर सुदृढ़ व स्थायी अवस्था में होता है तो ज्यादा परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता है, परन्तु यदि आर्थिक स्तर पर कमजोर हो तो उसे सामाजिक स्तर पर असुरक्षा महसूस होती है । यही अवस्था होती है जब व्यवसाय के आधार पर सामाजिक परिवर्तन परिलक्षित होते है । आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होने पर भविष्य के प्रति असुरक्षा व परिवारजन और समाज के सदस्य अचानक व्यवहार बदल लेते हैं।

संगठनकर्ता की भूमिका में परिवर्तन :

इस अवस्था में माता-पिता की भूमिका में होने से उन्हें संगठनकर्ता के रूप में परिवार व समाज को जोड़ कर रखना होता है । बच्चों के बड़े होने पर उनके दोस्तों व विवाह होने पर नए संबंधो में समायोजन करना पड़ता है। यह परिवर्तन सहर्ष स्वीकार करना इस अवस्था में आसान नहीं होता है। सामाजिक कार्यो में परिवर्तन दृ इस अवस्था में सामाजिक कार्य व उनमें भागिदारिता बदल जाती हैए अपने स्वास्थ्य व रूचि के अनुसार वह ग्रुप में शामिल होता है तथा अपने मूल्यों से समझोता करना अब उसके लिए आसान नहीं होता है । अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए वह पूरी लगन से कार्य करता हैं धार्मिक संगठनकर्ता के रूप में सक्रिय भी हो जाता है।

माता पिता की भूमिका में परिवर्तन :

बच्चों के छोटे होने तक माता पिता की भूमिका पालक व मार्गदर्शक की होती है तथा बच्चें उनका सम्मान भी करते है, परन्तु उनके बड़े हो जाने पर रिश्ते में भी बदलाव देखने को मिलता है तथा विचारों की भिन्नता से मतभेद उत्पन्न हो जाते है।

समाज में व्यक्ति स्तर पर परिवर्तन :

व्यक्ति का अनुकूल व प्रतिकूल परिस्तिथितियों में समायोजन करना व अपनी स्थिति को, यश, कीर्ति को बनाए रखना आवश्यक होता है। परिवार , समाज और व्यावसायिक स्तर पर आए बदलाव में स्वयं को ढालना होता हैं।

14.7 वृद्धावस्था में शारीरिक परिवर्तन

नाडी संस्थान में परिवर्तन : तंत्रिका तंतुओं के कमजोर होने से दृष्टी क्षमता, श्रवण क्षमता , सुंघने की क्षमता में कमी आ जाती है। सीखने की क्षमता में तथा स्मरण की क्षमता में भी व्यापक रूप से कम हो जाती है। इसीलिए इस अवस्था में नया ज्ञान अर्जित करने में रूचि समाप्त हो जाती हैं।

पाचन अंगो में परिवर्तन : पाचन संस्थान के कमजोर हो जाने से भोजन का पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। भोजन देरी से पचता है, लार रसों का स्त्रवण कम होने लगता है। दांतों का क्षय होने से व टूट जाने से भोजन को काटने, चबाने, कुतरने में परेशानी आती है जिससे सलाद , कड़े फल, चने, मूंगफली इत्यादि पदार्थों को ठीक प्रकार से नहीं खा सकते हैं।

आमाशय में पाचन हारमोंस का स्त्रवण कम होने से पाचन तथा पोषक पथार्थो का अवशोषण नहीं हो पाता है। आंतों की क्रमाकुंचन गति शिथिल हो जाती है एवं आंतों की दीवारों की पेशियाँ कमजोर हो जाती है जिससे कब्ज की शिकायत बढ़ जाती हैं। शरीर के विभिन्न अंगो तक पोषक पदार्थो के नहीं पंहुचनेसे कमजोरी आने लगाती है।

हड्डियों एवं दांतों में परिवर्तन : वृद्धावस्था में अस्थियों का पुनर्वशोषण होने से अस्थिय कमजोर होने लगती है। हड्डियों के भुरभुरी होने से जरा सा गिरने से व चोट लगने से टूट जाती है। हड्डियों के टूट जाने पर वे आसानी से नहीं जुड़ती है , ओस्टियोपोरोसिस अर्थात अस्थि विकृति रोग तथा ओस्टियोमलेशिया की समस्याओं से व्यक्ति को चलने फिरने भी तकलीफ होने लगती है । इस स्थिति में अस्थियों से कैल्शियम व फास्फोरस लवण का क्षय होता हैं ,परिणामस्वरूप हड्डियां कमजोर हो जाती है।

वृद्धावस्था में दांत और मसूड़े कमजोर हो जाते हैं जिसके कारण दांत गिरने लगते हैं। दांतों के सड़ जाने से उनमें खड़े तक हो जाते है तथा भोजन चबाने व निगलने में परेशानी हो जाती हैं।

त्वचा एवं बालों में परिवर्तन : वृद्धावस्था में त्वचा, बालों एवं नाखूनों में परिवर्तन होने लगता है। त्वचा रूखी,बेजान , कांतिहीन , झुर्रिदार, आकर्षण रहित हो जाती हैं। कोशिकाओं का विनाश अधिक तथा निर्माण कम होने लगता हैं। चेहरे पर झुर्रियां अधिक होने से अलग लटकती हुई प्रतीत होती है तथा लचीलापन भी ख़त्म हो जाता हैं। बाल सफेद नाखून कड़े , भुरभुरे एवं चमकहीन हो जाते है ,हाथ- पैरों की नसें मोटी हो जाती हैं तथा बैंगनी रंग की मोटी डोरी की तरह दिखती हैं। अंत:स्त्रावी ग्रन्थियो के हार्मोन स्त्रवण में कमी : इस समय में हार्मोन स्त्रवण में कमी आने से हार्मोन

संतुलन गड़बड़ा जाता हैं । महिलाओं में रजोनिवृति आ जाता हैं, थाइरोइड तथा पैराथाइरोइड ग्रन्थियो से निकलने वाले हार्मोन के असंतुलन से अस्थि विकृति रोग हो जाता है ,क्योंकि कैल्शियम का चयापचय ठीक प्रकार से नहीं हो पता हैं । थाइरोइड ग्रंथि की क्रियाशीलता में कमी होने से कैलोरी की मांग कम हो जाती हैं जिससे संभोग की इच्छा कम हो जाती है। स्त्रियों में मांसपेशियों का खिंचाव कम होता है क्योंकि प्रोजेस्टेरोन तथा एस्ट्रोजन हार्मोन का स्त्रवण स्टार भी परिवर्तित हो जाता है।

आधारीय चयापचय दर में कमी होना : इस समय शरीर में कोई भी निर्माणात्मक कार्य नहीं होता है और ना ही नवीन कोषों एवं तंतुओं का निर्माण होता है। ऊर्जा की मांग कम हो जाती है, शरीर की क्रियाशीलता में कमी आ जाती है जिससे आधारीय चयापचय दर में कमी होना स्वाभाविक होता है।

हृदय एवं रक्त परिसंचरण तंत्र में परिवर्तन : इस उम्र में वसा एवं वसीय अम्ल धमनी एवं शिराओं की अंत: दीवारों पर जम जाते हैं। एथेरोस्ककेरोसिस अथार्त कोलेस्ट्रोल के जमा होने से रक्त का दाब बढ़ जाता है व हार्ट अटैक की संभावना भी कई गुना बढ़ जाती है। इसमें लचीली धमनी व शिराओं का व्यास वसा जमने से कम हो जाता है जिससे ब्लड प्रेशर अनियमित हो जाता है। इस अवस्था में कई वृद्ध हार्ट अटैक के शिकार हो जाते हैं।

रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी : रोगों से लडऩे की क्षमता कम हो जाती है क्योंकि लिम्फोसाइटस की संख्या में काफी कमी हो जाती है। इसके साथ ही लिम्फोसाइटस कोशिकाओं की संख्या में कमी आ जाती है। इस कारण वृद्ध लोग सर्दी, जुकाम, बुखार एवं संक्रामक बीमारियों से जल्दी ही ग्रसित हो जाते हैं । कैंसर तथा क्षय रोग की संभावना भी बढ़ जाती है । **संयोजी तंतुओ का कठोर होना :** शरीर में उपस्थित संयोजी तंतुओ में व्यापक परिवर्तन आ जाता है , वे कठोर एवं सख्त हो जाते हैं। श्वेत तथा पित्त सौत्रिक ऊतक में कठोरता आ जाती है,ये ऊतक क्रमश: मांसपेशियों को जोडऩे का काम करता है। परिणामत: जोड़ वाले भाग जैसे घुटना, कोहनी, कलाई ए तेहुना, कंधे अदि भागो में दर्द होने लगता हैं तथा बैठने और उठने के दौरान आवाज भी आने लगती है।

14.9 वृद्धावस्था में सामाजिक परिवर्तन

वृद्धावस्था को यदि समस्याओं की आयु कहा जाएगा तो कोई अतिशोक्ति नहीं होगी । क्योंकि वृद्धावस्था में अनगिनत समस्याएं बनी रहती है । कुछ समस्याएं ऐसी होती है जो वृद्धावस्था के अंतिम क्षण तक पीछा नहीं छोड़ती है और व्यक्ति को अपने साथ ही लेकर जाती है। जैसे स्वास्थ्य की गंभीर समस्या । वृद्धावस्था में सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक एकाकीपन की समस्याएं होती है। साथ ही वृद्धजन पीढिय़ों के अंतराल के कारण नई पीढियों से समायोजन स्थापित नहीं कर पाते। अपनी संतानों के बदलते विचार, उनके परिधान, चालचलन, शराब सेवन आदि उन्हें रास नहीं आता। फलत: ये कारण उनकी समस्याएं बन जाती है।

वृद्धावस्था की प्रमुख समस्याएं :

- संतान के साथ संबंधोंमें तनाव।
- एकाकीपन|

- मान-सम्मान एवं सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी।
- आय का कम हो जाना।
- सक्रिय सेवा से सेवानिवृत्त होना।
- अधिकारों में कमी।
- खाली समय के उपयोग की समस्या।
- स्वास्थ्य संबंधितसमस्या।
- क्रियाशीलता में कमी।
- मानसिक शक्ति क्षीण होना।
- मानसिक तनाव।
- अनिद्रा।

समस्याओं का समाधान :

- वर्तमान में वृद्धावस्था की समस्याएं न केवल व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक होकर रह गई है, बल्कि यह एक सामाजिक समस्या बन गई है। न केवल भारत बल्कि संपूर्ण विश्व वृद्धजनों की बढ़ती समस्याओं के समाधान के लिए चिंतितहै। वृद्धजनों की समस्या का समाधान निम्नानुसार किया जा सकता है :
- सामाजिक सुरक्षा देकर।
- वृद्धावस्था पेंशन की व्यवस्था करके।
- वृद्धाश्रम की स्थापना कर।
- चिकित्सालयों में वृद्वजनों के लिए अलग विभाग की स्थापना करके।
- मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करके।
- स्वास्थ्य बीमा द्वारा।
- अलग आवास निर्माण कर।
- वृद्धजनों के लिए संगठन बनाकर।
- संविधान में संशोधन कर।
- उचित सम्मान देकर।
- पारिवारिक वातावरण सुखद बनाकर।
- वृद्धजनों द्वारा समायोजन स्थापित कर।
- दुर्घटना बीमा एवं जीवन बीमा करके।

14.10 सारांश

मध्यावस्था और वृद्धावस्था जीवन की अनुपम एवं महत्वपूर्ण अवस्था है। इसमें कई शारीरिक, मानसिक , सामाजिक, संवेगात्मक परिवर्तन परिलक्षित होते है। इन अवस्थाओं में जीवन मूल्यों और

आर्दशों में स्थिरता आ जाती है। सकारात्मक जीवन शैली व समायोजन इन अवस्थाओं में भी यश और प्रतिष्ठा को बढ़ा देती है।

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकास की अवस्थाओं में मध्यावस्था व वृद्धावस्था के विशेष लक्षण क्या है ?
2. वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक,मनोवैज्ञानिक व सामाजिक परिवर्तनों को विस्तार से समझाइए।
3. मध्यावस्था में व्यक्ति के जीवन में किस प्रकार के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक परिवर्तन परिलक्षित होते है ?

इकाई – 15

मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन , सेवानिवृति में समायोजन , वृद्धावस्था में पारिवारिक जीवन में परिवर्तन

Vocational adjustment in middle age, adjustment to retirement, change in family life in old age

इकाई की संरचना (Structure of Unit)

15.0 प्रस्तावना (Introduction)

15.1 लक्ष्य व उद्देश्य (Aims & objective)

15.2 समायोजन का संप्रत्यय (Concept of adjustment)

15.3 व्यवसायिक समायोजन (Vocational adjustment)

15.4 मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन (Vocational adjustment in Middle age)

15.5 सेवानिवृति (Retirement)

15.6 सेवानिवृति समायोजन (Retirement adjustment)

15.7 बदलाव क्षेत्र (Area of Change)

15.8 समायोजन हेतु प्रयास (Efforts for adjustment)

15.9 वृद्धावस्था परिचय (Old age introduction)

15.10 वृद्धावस्था के लक्षण (Features)

15.11 पारिवारिक जीवनशैली (Life style)

15.12 सांराश (Summary) ?

15.13 संदर्भ ग्रन्थसूची (Bibliography)

15.0 प्रस्तावना

मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन

विभिन्न विद्वानों ने जीवन शैली के कई आयामों को देखते हुए मानवीय अवस्था को विभक्त किया है। मध्यावस्था प्रौढावस्था एवं वृद्धावस्था के मध्य का काल है आमतौर पर मध्यावस्था को 40 से 60 वर्ष की आयु को माना जाता है | यह अवस्था ऐसी होती है कि न वो जवान रहता है न ही वृद्ध । अत: मध्यावस्था में समायोजन करने की व्यक्ति को आवश्यकता होती है। चूकिं इस आयु में व्यक्ति

अपने व्यवसाय का चयन कर लेता है ओर इस व्यवसाय में रहते हुए वह सफल होने तथा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश करता है।

15.1 लक्ष्य एवं उद्देश्य (Aims & objective)

इस ईकाई की समाप्ति पर छात्र

- व्यवसायिक समायोजन की व्याख्या कर सकेगें।
- सेवानिवृति समायोजन की व्याख्या कर सकेगें।
- वृद्धावस्था के लक्षणो का वर्णन कर सकेगें।

15.2 समायोजन का संप्रत्यय

व्यक्ति अपने सम्मुख ऐसी परिस्थितियो का सामना करता है जो उसकी इच्छाओं ओर आवश्कताओ की पूर्ति में बाधक होती है। उदाहरण- एक व्यक्ति अपनी शिक्षा समाप्त करता है समाप्ति के पश्चात वह जिस क्षैत्र में जाना चाहता है विषम परिस्थितियो की वजह से उस व्यव्साय में नही जा पाता है जिसमें वह जाना चाहता है। लेकिन अपने ज्ञान व योग्यता को ध्यान में रख कर दूसरा व्यवसाय चुन लेता है तथा सफल होने का प्रयास करता है, इसे हम समायोजन कहेगें। अत: जब व्यक्ति अपने व्यवहार की गतिशीलता का प्रयोग आवश्कताओ की पूर्ति ओर आत्म पुष्टि के लिए करता है तो इसे समायोजन की प्रक्रिया कहा जाता है।

1 समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्कताओ ओर आवश्कताओ की पूर्ति को प्रभावी करने वाली परिस्थितियों में सतुंलन रखता है। *Boring & Lagfald*

2 समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने ओर अपने वातावरण के बीच सतुंलित संबंध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।

15.3 व्यवसायिक समायोजन

व्यवसाय का किसी कार्य में संलग्न होना हम सभी के लिए आवश्यक है हम अपनी व्यक्तिगत पारिवारिक व सामाजिक आदि आवश्कताओ की पूर्ति के लिए उचित साधन को प्राप्त करने की कोशिश करते है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी क्षमता योग्यताओ के आधार पर व्यवसाय को प्राप्त करने का प्रयास करता है अत: हम अपने अपने ढंग से काम करते हुए व्यवसाय में समायोजित करने का प्रयास करते हैं। व्यवसाय में समायोजन ही हमें संतुष्टि प्रदान करता है, हमारी आंकाक्षाओं व आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है परिवार, पडौस व समाज आदि कई क्षेत्रो में हमें समायोजन करना होता है ऐसे ही हमें व्यवसाय में भी समायोजन करना होता है, लेकिन व्यवसाय समायोजन होता क्या है ? इस संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के अपने - अपने मत है, सामान्य रूप से जो परिणाम सामने आए हैं उनमें व्यवसायिक रूप से समायोजित होने वाले व्यक्तियो में अधिकतर निम्न मुख्य बातें दिखाई देती है –

1. अपने व्यवसाय में संतुष्टि का अनुभव करते हैं वह यह नहीं कहते हैं कि उनकी किस्मत खराब है अथवा मजबुरी में उन्होनें यह व्यवसाय का चुनाव किया है।
2. अपने व्यवसाय से संबंधितकार्यों को करने में उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होता है वह आनंद व उल्लास के साथ प्रत्येक काम को करते हैं। काम करने के पश्चात वह संतोष का अनुभव करते हैं, इस तरह से इन व्यक्तियों में व्यवसायिक संतुष्टि की भावना पाई जाती है।
3. अपने कार्यस्थल अथवा व्यवसाय क्षेत्र से वह संतुष्ट होते हैं अर्थात विभिन्न परिस्थितियों या सुविधाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते है वे उपलब्ध विभिन्न उपकरणो भौतिक संसाधनो व सुविधाओं के प्रति दुखी नही होते ओर न ही कष्ट का अनुभव करते है, वे उपलब्ध संसाधनो से ही संतुष्ट रहते हैं एवं उन संसाधनो का उचित रूप से प्रयोग करके कार्य को बेहतर तरीके से करने का प्रयास करते हैं।
4. अपने व्यवसायिक साथियों तथा अधिकारियो से समायोजन ठीक प्रकार से रहता है पारस्पिरिक तालमेल बिठाते हुए वह अपने कार्य को करते हैं, अपने संबंधो के कारण कार्यों में लापरवाही नहीं बरतते हैं।
5. उनमें अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा होती है तथा उसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं अपने व्यवसाय को छोड कर दूसरे व्यवसाय को अपनाने की बात नहीं करते हैं, वह यही भावना रखते हैं कि वह अपने कार्य को बडी निष्ठा से करे ताकि अपने कार्यालय व कार्यालय से संबंधित व्यक्तियो, समाज व देश के लिए हितकर हो।
6. उनका व्यवसाय उनको पदोन्नित के अवसर प्रदान करता है | यदि कुछ कारणो से ऐसा नही होता है तो विचलित नहीं होना चाहिए तथा ऐसा अनुभव किया जाना चाहिए कि पदोन्नित न होने पर उनसे भेदभाव किया जा रहा है | कई बार स्थानान्तरण से भी व्यक्ति अपने व्यवसाय के प्रति ध्यान केन्द्रिकरण नहीं कर पाता है, लेकिन ऐसी परिस्थिति में भी उसे विवेक से काम लेना चाहिए एवं यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि यह व्यवसाय का भाग है जिसे सहज ही स्वीकार कर लेना चाहिए।
7. वे अपने व्यवसाय से आर्थिक दृष्टि से भी समुचित रूप से संतुष्टि का अनुभव करते हैं। दूसरे व्यवसाय से जिनमें अधिक पैसा या सुविधाएं मिलती है उन व्यवसायो से तुलना करके अपने मन में किसी भी प्रकार की हीन भावना नहीं रखते हैं।
8. अपने व्यवसाय की गरिमा व प्रतिष्ठा को बनाए रखने का प्रयास करते हैं। प्रलोभन वश किसी भी गलत कार्य में सम्मिलित नहीं होते हैं और न ही किसी को गलत कार्य के लिए प्रेरित करते हैं। वह अपने साथियों तथा अधिकारियो का पूरा साथ देते है उनसे किसी भी प्रकार का द्वेष नहीं रखते हैं।

9. वे हमेशा दूसरों के लिए एक आदर्श कार्मिक के रूप में अपनी छवि बनाने का प्रयास करते है शाब्दिक व अशाब्दिक तरीके से अपने सहकर्मियो को पीड़ा नहीं पहुंचाते हैं। विषम परिस्थितियो में अपने साथीगणों का साथ देते हैं।

15.4 मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन

मध्यावस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी रूचि, अभिरूचि, अभिक्षमता व योग्यता के अनुरूप किसी न किसी व्यवसाय से जुडा हुआ होता है क्योंकि उस पर पारिवारिक व सामाजिक जिम्मेदारी होती है। मध्यावस्था में समायोजन उसे दो अवस्था वाले व्यक्तियो से करना होता है। प्रथम अवस्था प्रौढा अवस्था है व दुसरी अवस्था वृद्धावस्था है अत: मध्यावस्था में समायोजन के लिए व्यक्ति को कई प्रयास करने होगें तभी वह व्यवसाय में संतुष्टि का अनुभव करेगा। वे प्रयास निम्न है –

1 व्यवसाय में संलग्न सभी साथीगणों व अधिकारियो के साथ संतुलित व समायोजित व्यवहार रखना होगा, हो सकता है उनके साथ काम करने वाले कार्मिक आयु में छोटे अथवा बड़े भी हो सकते हैं।

2 अहम की भावना का विकास नहीं होने देना होगा | कई बार इस आयु में वे यह मानते है कि हमारे पास अनुभव ज्यादा है और इसी कारण से वे दूसरे व्यक्तियो से तालमेल नहीं रख पाते है और न ही ज्यादा विचार विमर्श करते हैं। इस तरह के व्यवहार का प्रभाव उनके कार्यों पर होगा।

3 पारिवारिक, आर्थिक व अन्य इससे संबंधित परेशानियों को वे अपने कार्यस्थल पर नहीं लावें ओर न ही अपने कार्यों पर हावी होने देना चाहिए अन्यथा वे पूर्ण रूप से निष्ठा के साथ कार्य कर पाएगें।

4 इस अवस्था में व्यक्ति मानसिक व शारिरीक रूप से अनेक व्याधियों से परेशान हो सकता है क्योंकि इस अवस्था में अनेक हार्मोन संबंधी परिवर्तन होते हैं अत: स्वस्थ्य रहने का प्रयास करना चाहिए ताकि व्यवसाय में कार्य करते समय दिक्कत न आए।

5 इस अवस्था में सामाजिकता अथवा सामाजिक संबंधो पर भी जोर देना चाहिए अत: यह व्यक्ति को उर्जा प्रदान करेगा।

6 अपने विचारों व अभिव्यक्तियों को सकारात्मक रखना होगा ताकि प्रत्येक आयु के व्यक्तियों के साथ वह मिलनसारिता से रह सके उनके साथ मिलजुल के कार्य कर सके।

7 अपनी रूचियो में भी समय के साथ बदलाव लाना होगा। प्रत्येक आयु के व्यक्तियों की अपनी अपनी रूचि होती है उनके रहन सहन खानपान आदि के तौर तरीके अलग अलग होते हैं जैसे नौजवान व्यक्ति आधुनिक पौशाको को पहनना पंसद करता है व नवीन तरीके से जीवन जीना व कार्य करना पंसद करता है जबकि मध्यावस्था या वृद्धावस्था वाले व्यक्ति इसे नापंसद करते है।

8 नवीन तकनीको को सीखने का व प्रयोग करने का प्रयास करना चाहिए ताकि नई पीढी के साथ सामांजस्य स्थापित कर सके।

9 पश्च मध्यावस्था में कई व्यक्ति कार्य के प्रति अरूचि दिखाते हैं उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए उन्हे अपने अनुभव द्वारा दूसरो को लाभान्वित करना चाहिए।

15.5 मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन में आने वाली समस्याएं

1 **अंहम की भावना** – यही टकराव की स्थिति पैदा करता है क्योंकि एक कार्य स्थल में विभिन्न आयु के व्यक्ति कार्य करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से पृथक होता है वे सभी अपने अपने अहम को शांत करने का प्रयास करते हैं। यदि उन्हे संतोष प्रदान नहीं होता है तो एक अच्छा वातावरण नही रह पाएगा। इस कारण समायोजन करने में परेशानी अनुभव होगी।

2 **शिक्षा -** मध्यावस्था में संलग्न व्यक्ति अधिकांशत: पुरानी विधि से शिक्षा प्राप्ति की होती है वे यह मानते हैं कि हमने गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्राप्त की, अत: वे अपने आपको यह मानते है कि हममें ज्ञान ज्यादा है अत: यह भी कुसमायोजन का मुख्य कारण होगी।

3 **नवीन तरीके** – मध्यावस्था वाले प्राय: व्यक्ति नवीन तरीके सीखना नही चाहते है वे अपने तरीके को ही बेहतर मानते हैं। अत: इस तरह के ज्ञान अभाव में वे नवीन तरीकों की आलोचना करते हैं उससे समायोजन स्थापित नहीं कर सकते।

4 **अनुभव** – प्राय: यह देखा जाता है कि मध्यावस्था तक आते आते अपने कार्य से संबंधित अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को हो जाता है। अत: अधिक अनुभव वाले व्यक्ति कम अनुभव वाले व्यक्तियो की कार्य शैली में भिन्नत होने से समायोजन स्थापित होना मुश्किल हो जाता है।

5 **कार्य करने की क्षमता** – मध्यावस्था अन्य अवस्था वाले व्यक्तियो की कार्य दक्षता में अन्तर होता है। पूर्ण मध्यावस्था व पश्च मध्यावस्था में देखे तो दोनों अवस्था वाले व्यक्तियों में भी कार्य क्षमता व दक्षता में अन्तर होगा, इसके अलावा अन्य अवस्था से भिन्नता पाई जाती है अत: समायोजन स्थापित नहीं हो पाता।

6 **सोचने की क्षमता** – मध्यावस्था चूंकि प्रौढावस्था व वृद्धावस्था के बीच की कड़ी है अत: तीनों की विचार क्षमता अलग अलग होगी जिसका प्रभाव उनकी व्यवसायिक दक्षता पर नितान्त रूप से पडेगा।

7 **अनुशासन व समय पाबंदी** – प्राय: मध्यावस्था वाले व्यक्तियो में से दोनों ही गुण पाए जाते हैं जबकि अन्य अवस्था वाले व्यक्ति इसे रूकावट महसूस करते हैं अत: समायोजित होने में समस्या होती है।

8 **निवेश व संचय की प्रवृति** – मध्यावस्था वाले व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से सोचते हैं जबकि प्रौढावस्था वाले व्यक्ति इतना नहीं सोचते हैं। अत: मध्यावस्था प्रत्येक कार्य में धन का संचय कर उत्तम कार्य चाहते हैं अत: ऐसा नहीं होने पर समायोजन नहीं हो पाता है।

9 **गुटबाजी** – मध्यावस्था वाले व्यक्तियो की अपनी सोच होती है जबकि अन्य अवस्था वाले व्यक्तियो की अपनी सोच होती है अत: व्यक्ति उन्ही के साथ साथ रहना व कार्य करना पंसद

करता है जहां वैचारिक समानता हो अत: यह भी व्यवसायिक समायोजन में बाधा उत्पन्न करता है।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1 समायोजन के संप्रत्यय को स्पष्ट किजिये ?

Explain the concept of adjustment ?

2 व्यवसायिक समायोजन के लिए क्या-क्या गुण होने चाहिए ?

What are the characters for Vocational adjustment, describe in detail ?

3 मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन में किन कठिनाईयों का सामना करना पडता है स्पष्ट किजिये ?

Explain the problems in Vocational adjustment of middle stage ?

सेवानिवृति समायोजन

15.5 सेवानिवृति

सेवानिवृति वह काल है जब व्यक्ति अपने व्यवसाय से निवृत होता है अर्थात इस अवस्था में अपने कार्य से स्वंतत्रता प्रापृत होती है वह अपने आप को स्वतंत्र महसूस करता है। प्रत्येक व्यक्ति अलग अलग व्यवसाय या कार्यो में संलग्न होता है लेकिन एक अवस्था ऐसी आती है जब वह शारीरिक व मानसिक रूप से उतना स्वस्थ्य नहीं रहता है अत: शारीरिक व मानसिक क्षीणता की वजह से अपने कार्य से मुक्ति प्राप्त करता है अथवा चाहता है, इसे ही सेवानिवृति कहते हैं। कई क्षेत्रो में एक आयु निश्चित होती है व्यक्ति उसी निश्चित आयु तक कार्य कर सकता है उसके बाद उस व्यवसाय को उसे त्यागना पडता है जैसे सरकारी नौकरी में 60 वर्ष की समय सीमा दे रखी है 60 वर्ष की आयु पूर्ण करने के पश्चात सरकारी आदेशानुसार सेवानिवृति प्रदान की जाती है।
कभी कभी व्यक्ति कई कारणों की वजह से अपने व्यवसाय या क्षेत्र में कार्य करने में असहज महसुस करता है जैसे कोई व्यक्ति शारिरीक रूप से स्वस्थ्य नही अथवा किसी रोग से ग्रसित है तो अपनी स्वेच्छा से पृथक हो सकता है इसे भी सेवानिवृति ही कहा जाएगा। अत: कहा जा सकता है कि सेवानिवृति स्वेच्छा से भी प्राप्त की जा सकती है।

प्रत्येक व्यवसाय में सेवानिवृति के अलग अलग नियम होते है व आयु सीमा भी पृथक पृथक होती है ओर उन्ही के अनुसार व्यक्ति को सेवानिवृति दी जाती है। जैसे सेना में 30 से 35 वर्ष के व्यक्ति को ही उर्जावान व स्वस्थ्य माना जाता है अत: इसके पश्चात उन्हे सेवानिवृति प्रदान की जाती है।

15.6 सेवानिवृति समायोजन

व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वो को पूर्ण करने हेतु धन का अर्जन करता है। धन का अर्जन करने के लिए उसे कोई न कोई कार्य करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति लम्बे समय तक अपने व्यवसाय से जुडे रहता है अत: कह सकते हैं कि उनकी दिनचर्या एक जैसी रहती है। वह प्रत्येक दिन एक जैसा कार्य करता है और कई वर्ष बीत जाते हैं। परंतु सेवानिवृति उसकी दैनिक दिनचर्या में परिवर्तन लाती है वह खालीपन या रिक्तता महसूस करता है इस खाली समय में वह जानने का प्रयास करता है कि मैं क्या हुं ? मैने क्या क्या उपलब्धियां प्राप्त की है ? मैने समाज व परिवार के लिए क्या क्या किया है ? मैने अपने व्यवसाय से क्या प्राप्त किया है ? भविष्य में मुझे क्या करना है ? इत्यादि। इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का वह प्रयास करता है इस प्रकार बदलती हुई परिस्थितियों के साथ उसे समायोजन करने की आवश्यकता होती है | यदि वह समायोजन स्थापित करके अपने समय का उपयोग सही तरीके से करता है तो बदलती हुई जीवन शैली में उसे कठिनाई नहीं आती है ओर संतोष प्राप्त करने की कोशिश करता है। कई व्यक्ति अपनी इस बदलती हुई जीवन शैली से सामंजस्य स्थापित नही कर पाते है व अवसाद एवं भग्नाशा की अवस्था में चले जाते है। अत: सेवानिवृत व्यक्ति को यह समझना होगा कि जीवन के कई क्षेत्र में बदलाव होगें व उसे सहज रूप से स्वीकारना होगा।

15.7 बदलाव क्षेत्र

सेवानिवृति के पश्चात जीवन के कई क्षेत्रो में अथवा पहलुओं में परिवर्तन होता है वह निम्न है –

1 **पारिवारिक दृष्टि से** – सेवाकालीन अवस्था में व्यक्ति को परिवार से सम्प्रेषण करने का मौका नहीं मिल पाता था परन्तु सेवानिवृति के पश्चात सम्प्रेषण की अपनी अहम भूमिका रहती है क्योंकि परिवार के अन्य सदस्यों से वैचारिक संबंध स्थापित करने में उसकी आवश्यकता है उदाहरणत: एक व्यक्ति के कई पारिवारिक सदस्य होते हैं उनसे उन्हें उस अवस्था में समझौता करना होता है यदि वह समझौता नहीं कर पाता है तो संभवत: उनमें दूरियां उत्पन्न हो जाती है ओर वह अपने आप को पृथक महसुस करता है।

2 **शारीरिक दृष्टि से** – सेवानिवृति मध्यावस्था के बाद का समय है इस अवस्था में कई शारीरिक परिवर्तन होते है इसके अलावा इन परिवर्तनों के प्रभाव से वह कई रोगो से ग्रसित भी हो जाता है। कई व्यक्ति इसे नकारात्मक भाव से देखते हैं एवं अपने जीवन के प्रति उदासीन हो जाते है यह उदासीनता उनमें अवसाद के भाव उत्पन्न करती है।

3 **मानसिक दृष्टि से -** बदलती हुई शारीरिक स्थिति के प्रभाव से मानसिक स्थिति में परिवर्तन होता है , इस अवस्था में स्मृति में कमी आ जाती है अर्थात मानसिक क्षमता व योग्यता में कमी आती है जिससे व्यक्ति में कई संवेदना जैसे चिडचिडापन आदि की बढोतरी हो जाती है। मानसिक संघर्ष इन्हीं कारणों की वजह से रहता है।

4 **सामाजिक दृष्टि से** – शारीरिक व मानसिक कमजोरियों से यदि वह समाज में अपनी भागीदारी नहीं निभा पाता है तो समाज में अपने आप को पृथक महसूस करता है। सामाजिक कार्यों के प्रति उसकी अरूचि उत्पन्न हो जाती है। सामाजिक कार्यो में पृथकता

का दूसरा कारण यह भी है कि सेवानिवृति से पहले उसने कभी समाज के लिए कोई समय नहीं दिया है तो अब नवीन दिशा में सोचने में उसे कठिनाई होगी।

5 **आर्थिक दृष्टि से** – सेवानिवृति के पश्चात आर्थिक रूप से भी कई व्यक्तियो को कठिनाई का सामना करना पडता है चूंकि सेवाकालीन अवस्था में उस पर कई जिम्मेदारी होती है जैसे शिक्षा, विवाह आदि इन जिम्मेदारियों को निभाते निभाते वह अपने जीवन में भविष्य हेतु संचय व निवेश नही कर पाता है। सेवानिवृति के पश्चात उसकी जिम्मेदारियां वही रहती है एवं धन की आवश्यक्कता रहती है परन्तु आय का स्त्रोत वह नहीं रह पाने से उसे कई परेशानियां होती है।

6 **पृथकता** – सेवानिवृति के पश्चात व्यक्ति को यह लगने लगता है कि उसकी पारिवारिक स्थिति में बदलाव आया है वह अपनी महत्ता को कम महसूस करने लगता है इसके अलावा भी कई कारणों से अपने आप को अकेला महसूस करता है। कई बार कई सेवानिवृत व्यक्ति अपने आप को अक्रिय व उर्जाहीन मानने लगते हैं। इस तरह से कुंठा व अवसाद के शिकार हो जाते हैं।

अत: इन क्षेत्रो में उसे सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है। सेवानिवृत व्यक्ति अपनी इस बदलती हुई परिस्थिती को स्वीकार करेगा तो जीवन में सहज रूप से जीवन यापन कर सकेगा तथा भविष्य में अपने लिए लक्ष्य निर्धारित कर सकेगा तथा उर्जावान रह सकेगा इस प्रकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में बदलाव के साथ अपनी भूमिका का निर्वहन करेगा | यदि वह बदलाव की इस अवस्था को स्वीकार कर लेता है तो अपने लिए कई साधन खोज कर उर्जावान रह सकेगा। इसके लिए उसे स्वय ही प्रयास करने होगें तभी अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकेगा ओर संतोष प्राप्त करेगा।

15.8 समायोजन हेतु प्रयास

1 **रूचियो का विकास -** प्रत्येक व्यक्ति की अपने जीवन में कई रूचियां होती है लेकिन काम की व्यस्तता से अपनी रूचियों की तरफ ध्यान नहीं दे पाता है अत: सेवानिवृति के पश्चात जब व्यक्ति के पास में काफी समय होता है तो उसे पुरानी रूचियों को जीवन्त करने का प्रयास करना चाहिए तथा बदलती हुई स्थितियों का ध्यान में रखकर नवीन रूचियों को उत्पन्न करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस प्रकार व्यक्ति अपने समय का उपयोग कर पाएगा एवं निरर्थक बातों से ध्यान हट पाएगा। यह रूचियां उसके जीवन में नई आनंद व खुशी लेकर आएगी जिससे वह स्फूर्तिदायक व सक्रिय बनने का प्रयास करेगा।

2 **शारीरिक रूप से स्वस्थ्य : -** सेवानिवृति के पश्चात व्यक्ति के जीवन में आए बदलाव से वह नीरस हो जाता है ओर कई रोगो से ग्रसित हो जाता है अत: अपने आप को सक्रिय व स्वस्थ्य बनाने के लिए उसे प्रयासरत रहना होगा जैसे – घुमना, व्यायाम करना, खेलकूद आदि कई गतिविधियों में संलग्न रहकर वह स्वस्थ्य रह सकता है।

3 **समाज सेवा व पारिवारीक कार्यों में भागीदारी** – सेवाकालीन अवस्था में व्यक्ति अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए भागादौडी करता है परन्तु सेवानिवृति के पश्चात वह अपने आप को परिवार से पृथक देखता है जबकि सेवानिवृति के पश्चात भी उसे अपने परिवार के

सदस्यो के साथ भागीदारी निभानी चाहिए, परिवार के कार्यों में हाथ बंटाने का प्रयास करना चाहिए, अपने संबंधो को प्रगाढ करने का प्रयास करना चाहिए इसी प्रकार वह समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वह विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यों में भागीदारी निभा सकता है जो उसे संतुष्टि प्रदान करेगें ओर यह आभास दिलाएगा कि उसकी समाज व परिवार में एक महत्वपूर्ण स्थिति है ओर सभी को उसकी आवश्यकता है।

4 **अंशकालीन व अस्थाई कार्य में संलग्नता : -** सेवानिवृति के पश्चात आए हुए परिवर्तनों में बदलाव लाने हेतु अथवा उसी तरह की दिनचर्या प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अंशकालीन व अस्थाई कार्य में संलग्न हो सकता है इस प्रकार बहुआयामी लाभ प्राप्त होगें जैसे – इस तरह के कार्य से जुडकर वह अपने ज्ञान व अनुभव का सदुपयोग कर सकेगा, धनोपार्जन कर सकेगा, अन्य व्यक्तियों से सम्प्रेषण स्थापित कर सकेगा तथा मानसिक परेशानी से दूर रहेगा अत: सेवानिवृति के पश्चात अस्थायी तौर पर व्यवसाय से जुडे रहने से उसमें वही स्फुर्ति व सक्रियता बनी रहेगी।

5 **संबंध :-** सेवानिवृति के पश्चात व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने परिवार, रिश्तेदारो, दोस्तो, अडौस-पडौस व समाज में संबंध स्थापित करने का प्रयास करे चूंकि कई बार संबंध स्थापित बनाने के अभाव में वह पृथकता महसूस करता है अत: इसे दूर करने के लिए उसे प्रयासरत रहना होगा ताकि वह समन्वय स्थापित कर सके।

अत: इस प्रकार वह विभिन्न प्रकार के समायोजन के तरीको को अपनाएगा तो उसे आत्म संतुष्टि प्राप्त होगी तथा अपने आप को इस बदलते हुए परिवेश में ढाल सकेगा इसके अलावा अपने जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1 सेवानिवृति के अर्थ को स्पष्ट किजिए ?

Explain the Retirement ?

2 सेवानिवृति समायोजन क्या होता है, स्पष्ट किजिए ?

What is the retirement adjustment, Explain it ?

3 सेवानिवृति समायोजन हेतु क्या-क्या प्रयास करने चाहिए वर्णन किजिए ?

Describe the efforts for retirement adjustment in detail ?

15.9 वृद्धावस्था

मध्यावस्था के पश्चात की जीवन की अवस्था को वृद्धावस्था कहते हैं। प्राय: यह 60 वर्ष की आयु के पश्चात का काल कहलाता है हेडफिल्ड के अनुसार 61 वर्ष से मृत्यु तक की अवस्था को वृद्धावस्था की श्रेणी में रखा गया है। पाश्चात्य देशो में जैसे – युनाईटेड स्टेट में वृद्धाव्स्था की आयु को 60 से 65 वर्ष की आयु के पश्चात माना गया है WHO के अनुसार 50 वर्ष की आयु के पश्चात शारीरिक स्वास्थ्य में गिरावट आती है अत: 50 वर्ष के पश्चात की आयु को वृद्धावस्था कहा गया है। प्रश्न यह उठता है कि वृद्धावस्था की आयु का निर्धारण कैसे हो क्योंकि कई व्यक्ति 60 वर्ष की आयु के पश्चात की काफी स्वस्थ्य व तंदुरूस्त दिखाई देते हैं अत: इस अवस्था को कई अन्य अवस्था में विभाजित किया है। वृद्धावस्था में सहवस्था का वर्गीकरण विभिन्न आयामों को ध्यान में रखते हुए किया गया है जैसे – जैवकिय, मनोदैहिक, सामाजिक व क्रियात्मकता के आधार पर अत: वृद्धाव्स्था की सह या उप अवस्था निम्न है –

60 से 69 वर्ष - प्रौढ वृद्धावस्था

70 से 79 वर्ष - मध्य वृद्धावस्था

80 वर्ष के पश्चात - अति वृद्धावस्था

अत: उपर वर्णित आयाम भी प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग आनुपातिक रूप से क्षीण होते हुए दिखाई देते है। यह कह सकते हैं कि वृद्धावस्था में शारीरिक व मानसिक क्षीणता दिखाई देने लगती है ओर यही वृद्धावस्था के लक्षण है।

15.10 वृद्धावस्था के लक्षण

वृद्धावस्था में कई परिवर्तन दिखाई पडते है, वे निम्न है –

1 शारीरिक परिवर्तन – जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु बढती है वैसे-वैसे उसकी शारीरिक योग्यता व क्षमता में कमी दिखाई देती है वृद्धावस्था में शारीरिक क्षमता लगभग क्षीण हो जाती है ओर यह लक्षण प्रत्येक व्यक्ति में दिखाई देते है।

(i) हड्डियों व जोड संबंधि रोग
(ii) दांतो में परेशानी या गिरना
(iii) पाचन तंत्र संबंधी परेशानियां
(iv) दृष्टि रोग या कमजोरी
(v) श्रवण क्षमता में कमी
(vi) बालो का गिरना
(vii) हृदय रोग
(viii) अवरोधक क्षमता में कमी
(ix) श्वसन संबंधी रोग
(x) अंगो व मांसपेशियों में दर्द

(xi) योन क्षमता में गिरावट
(xii) त्वचा संबंधी परेशानियां
(xiii) वाणी कमजोर

2 मानसिक परिवर्तन – वृद्धावस्था में दूसरा मुख्य परिवर्तन मानसिक परिवर्तन है क्योंकि स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ्य मस्तिष्क का विकास होता है अत: यह कह सकते है कि शारीरिक स्थिति में गिरावट होने पर मानसिक स्थिति में भी गिरावट होगी। मानसिक स्थिति में कई परिवर्तन लक्षित होते है जो निम्न है –

(i) याददाश्त में कमी
(ii) स्वभाव में परिवर्तन
(iii) डर
(iv) मानसिक योग्यता में कमी

इस प्रकार मानसिक क्षमताओ में गिरावट आती है वह इससे संबंधित शक्तियों का भी धीरे-धीरे नाश होने लगता है।

इसके अलावा भी कई रोग व कई लक्षण इंगित करते हैं कि व्यक्ति वृद्धावस्था को प्राप्त कर रहा है।

15.11 पारिवारिक जीवन शैली

मध्यावस्था के पश्चात की आयु वृद्धावस्था कहलाती है जीवन की अंतिम अवस्था है जिसमें व्यक्ति की जैवकीय मनोदैहिक दृष्टि से गिरावट आने लगती है यदि वह ध्यान न दे तो वह कई रोगों से पीड़ित हो जाता है जैसे-जैसे आयु बढती जाती है उसको विभिन्न परेशानियों का सामना करना पडता है उसे परिवार के विभिन्न सदस्यो से सहायता की अपेक्षा रहती है चूंकि धीरे-धीरे उसके काम करने की योग्यता कम हो जाती है इसका प्रभाव उसकी जीवन शैली पर भी पडता है। सबसे ज्यादा व्यक्ति के परिवार के सदस्यो पर प्रभाव पडता है। बदलती हुई पारिवारिक जीवन शैली के मुख्य कारण निम्न है –

1 **रोग एवं शारीरिक स्थिति में गिरावट** – जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु बढती है वैसे-वैसे उसके शरीर के अंग सुचारू रूप से काम नहीं कर पाते हैं | उसके शारीरिक तंत्रो की कार्य क्षमता में भी कमी आ जाती है। व्यक्ति सही ढंग से खान-पान, रहन-सहन आदि पर ध्यान नहीं रख पाता है। कई व्यक्तियो में जैसे पोषक संबंधी रोग उत्पन्न हो जाते हैं तो कई में हड्डियों व जोडो संबंधी रोग हो जातेहैं। कई बार इन रोगों के कारण वे मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार उनकी शारीरिक गिरावट उनकी पारिवारिक जीवन शैली में बदलाव लाती है।

2 **संवेदनशीलता की अधिकता** – कहा जाता है कि इस आयु में व्यक्ति की संवेदनशीलता अत्यधिक पाई जाती है वह ज्यादा खुशी व दुख को सहन न हीं कर पाता है।

3 **पारिवारिक स्थिति में बदलाव** – अधिकांशत: वृद्धावस्था में व्यक्ति अपने आप को असहाय महसूस करता है। पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाने में असमर्थ होता है क्योंकि अब वह भी परिवार की एक जिम्मेदारी बन जाता है अत: इस प्रकार परिवार में उसकी स्थिति व प्रभुत्व में बदलाव आता है।

4 **धार्मिक व सामाजिक स्थिति -** प्राय: वृद्धावस्था में धार्मिकवृति में आस्था देखी जा सकती है व धार्मिक व धर्म की बातो में अधिक रूचि लेने लगता है व समाज व धार्मिक क्षेत्रो में जाने की चाह रखता है अपने जीवन में भी वह धार्मिक बातो का अनुसरण करना चाहता है।

अत: हम कह सकते हैं कि वृद्धावस्था में पारिवारिक जीवनशैली में कई बदलाव आते है।

15.12 सारांश

40 से 60 वर्ष की आयु को मध्यावस्था कहा जाता है, मध्यावस्था में व्यक्ति को कई तरीकों से व्यवसायिक समायोजन करना पडता है, मध्यावस्था के अन्त में व्यक्ति अपने कार्यों व सेवाओं से निवृति प्राप्त करता है। 60 वर्ष से मृत्यु पर्यन्त तक की अवस्था वृद्धावस्था कहलाती है यह जीवन का अन्तिम चरण है इसमें व्यक्ति की पारिवारिक जीवनशैली में कई परिवर्तन दिखाई देते है।

15.13 संदर्भ ग्रन्थ सूचि (Bibliography)

- जिन प्याजे टु अण्डर स्टेण्ड द डेवलपमेंन्ट ऑफ एज (1973)
- कुलश्रेष्ठ एस.पी. – शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा (1982)
  शर्मा ए.पी.ए. – शिक्षा सिद्धांत, अशोक पब्लिशिंग हाउस, मेरठ (1980)
- करणीक एफ.जी. एण्ड जॉन – एडल्ट साईकोलॉजी, हॉट राइनहेट, न्यूर्याक

इकाई -16

एरिक्सन की प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था के प्रति अवधारणा, सफल जरण व मौत के प्रति संप्रत्यय व अवधारणा , वृद्धाश्रम की भूमिका

Erikson's concept regarding adulthood, middle age and old age, Concept and attitude towards successful aging, death and dying. Role of 'Homes for old Age'

इकाई की रूपरेखा

16.0 प्रस्तावना (Introduction)

16.1 उद्देश्य (Objective)

16.2 एरिक्सन की प्रौढ़ावस्था , मध्यावस्था सबंन्धित अवधारणा (Erikson's concept regarding Adulthood stage, Middle age)

16.3 एरिक्सन की वृद्धावस्था सबंन्धित अवधारणा (Erikson's concept regarding Old age)

16.4 सफल जरण व मौत के प्रति संप्रत्यय व अवधारणा (Concept & attitude towards successful ageing, death & dying)

16.5 वृद्धाश्रम की भूमिका (Role of home for old age)

16.6 सारांश (Summary)

16.7 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

16.0 प्रस्तावना

मानव विकास का व्यवस्थित अध्ययन लगभग बीसवी शताब्दी के दूसरे या तीसरे दशक से आरंभ हुआ । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोविज्ञान का उद्देश्य मानसिक प्रक्रियाओं जैसे स्मृति, प्रत्यक्षीकरण, तर्क आदि के अध्ययन के साथ-साथ व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करना भी है । सन 1930 में मनोवैज्ञानिक की रूचि विकास संबंधीगोचरो व तथ्यों का अध्ययन करने में भी बढने लगी तथा इसके वर्णन के लिए अनेक सिद्वांतों का प्रतिपादन हुआ। जिनमें से फ्रॉयड का मनोलैंगिक,

एरिक्सन का मनोसामाजिक विकास सिद्धान्त, बंडूरा का सामाजिक अधिगम सिद्धांत, कोहलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत, प्याजे का संज्ञान विकास का सिद्धान्त प्रमुख है।

एरिक्सन नव फ्रॉयडवादी माने जाते हैं, फ्रॉयड का विकास का सिद्धान्त मनोलैंगिक सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है जबकि एरिक्सन मानते थे की मनुष्य एक सामाजिक परिवेश में रहता है अत: उसके विकास पर सामाजिक अनुभवों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। इसलिए सामाजिक सन्दर्भ में ही उसका अध्ययन किया जाना चाहिए । एरिक्सन ने अपनी पुस्तक ***childhood and society'***;1963 में कहा है कि मनुष्य केवल जैविक और मानसिक प्राणी ही नहीं होता बल्कि वह एक सामाजिक प्राणी भी होता है। उन्होंने सामाजिक परिवेश के साथ समायोजन में इदम् की अपेक्षा अहम् को अधिक महत्वपूर्ण माना है।

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- एरिक्सन द्वारा प्रस्तुत प्रौढ़ावस्था की अवधारणा को समझेंगे |
- एरिक्सन द्वारा प्रस्तुत मध्यावस्था की अवधारणा को समझेंगे |
- एरिक्सन द्वारा प्रस्तुत वृद्धावस्था की अवधारणा को समझेंगे |
- सफल जरण व मौत के प्रति संप्रत्यय व अवधारणा को समझेंगे |
- वृद्धाश्रम की भूमिका को समझेंगे |

16.2 एरिक्सन की प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था सबंन्धित अवधारणा

एरिक्सन के सिद्धान्त का केंद्र बिंदु मानव के व्यक्तित्व का विकास कई निश्चित अवस्थाओं , जो सार्वजनिक होता है, से होकर होता है। जिस प्रकार प्रक्रिया द्वारा ये अवस्थाएँ विकसित होती हैं ,ये विशेष नियम द्वारा नियंत्रित होती हैं। इस नियम को पश्जात नियम कहा जाता है। एरिक्सन ने मनोसामाजिक अहम् विकास की आठ अवस्था बतलायी हैं जो एक क्रम से एक के बाद एक आती है और उनमें व्यक्तित्व का विकास जेविक परिपक्वता तथा सामाजिक अन्तरक्रिया के फलस्वरूप होता है । विकास की घनिस्थात्मक बनाम विलगन की अवस्था के पश्चात की अवस्था मध्य व्यस्कावस्था सृजनात्मकता बनाम निष्क्रियता स्थिरता की अवस्था है जो की 30 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 65 वर्ष की आयु तक मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति में सृजनात्मकता का भाव उत्पन्न होता है। सृजनात्मकता से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अपने अगली पीढ़ी के लोगों के कल्याण तथा साथ ही साथ उस समाज के लिए जिसमें वे लोग रहेंगे को उन्नत बनाने की चिंता से होता है। यदि व्यक्ति में सृजनात्मकता नहीं होगी तो वो निष्क्रिय रहेगा और उसमें हीनता के भाव जागने लगेंगे।

16.3 एरिक एरिस्कन का वृद्वावस्था संबंधित अवधारणा

यह मनोसामाजिक विकास की अंतिम अवस्था है, जिसमें व्यक्ति तेजी से वृद्वावस्था की ओर बढ़ता है। वह इस अवस्था में लगभग 65 वर्ष तक की आयु से मृत्यु तक सम्मिलित है। इसे बुढ़ापे की अवस्था कहा गया है। जिसके सामने कई तरह की चुनौतियां होती है। व्यक्ति विकास की, पिछली

अवस्था में पहचान, घनिष्ठता, आदि के भाव विकसित कर चुका होता है। समाज के लिए अपनी क्षमता के अनुरूप योगदान दे चुका है तो वह जीवन की इस अंतिम अवस्था को पूरे उत्साह के साथ गुजारने में सक्षम होता है। इसके विपरीत जब कोई व्यक्ति यह महसूस करता है कि उसने पिछली अवस्थाओं को ईमानदारी से व्यतीत नहीं किया है तो वह निराशा का अनुभव करता है। वह इसी अपराध भावना के साथ जीवन के अंतिम क्षणों को जीता है कि वह अपने जीवन में कुछ नहीं कर पाया। प्रत्येक अवस्था की तरह इस अवस्था की अपनी विशेषता है। जिसमें नेगेटिव और पॉजिटिव तत्व शामिल होते है तथा इस अवस्था का निर्माण उससे पहले की अवस्था में हुए निकायों से संबंधित होता होता है। जन्म से लेकर पूर्व तक की मनोसामाजिक घटनाओं का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव इस अवस्था में भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिलक्षित होता है।

ऐरिक्सन ने अपने सिद्वांत में अहम (इगो) को सर्वोपरि माना है तथा वे इगो को व्यक्तित्व का एक स्वतंत्र संरचना मानते हैं। उनके अनुसार यह इगो प्रत्येक अवस्था में महत्वपूर्ण होता है, जो कि व्यक्तित्व सोच की दिशा निर्धारित करता है।

फ्रॉयड ने व्यक्तित्व विकास में विशेषकर प्रारंभिक बाल्यावस्थाओं की अनुभूतियों को ही महत्वपूर्ण माना है, जबकि एरिक्सन ने व्यक्तित्व विकास की व्याख्या की है।

16.4 सफलतापूर्ण जरण (वृद्धावस्था), मृत्यु के प्रति अवधारणा और अभिवृत्तियां

वृद्वावस्था अथवा जरण जीवन की अंतिम अवस्था है। यह वह आयु है जब व्यक्ति में अनेक शारीरिक व मनोवैज्ञानिक परिवर्तन तीव्रता से होते है। उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता क्षीण होने लगती है तथा इन परिवर्तनों के साथ समायोजन करना पड़ता है। सामान्यतयाः 60 वर्ष की आयु को मध्य आयु एवं वृद्वावस्था के बीच की विभाजन रेखा स्वीकार कर लिया है। परंतु वर्तमान में रहन-सहन की अच्छी परिस्थितियों और चिकित्सा के उन्नत तरीकों के कारण वृद्वावस्था के लक्षण 65 वर्ष व कभी 90 वर्ष तक नहीं दिखाई पड़ते हैं।

कई व्यक्ति वृद्वावस्था के साथ सकारात्मक अभिवृत्तियों के साथ समायोजन करते हैं। वृद्वावस्था को सफलतापूर्वक व्यतीत करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए :

1. इस अवस्था में पूरी तरह सक्रिय रहना चाहिए। सामाजिक कार्यों में अपनी भूमिका सुनिश्चित कर लेनी चाहिए।
2. वृद्धावस्था में नियमित व्यायाम जरूरी है ताकि शरीर फिट और तरोताजा रहे |
3. संतुलित आहार का सेवन कर शरीर को रोगमुक्त रखा जा सकता है |
4. परिवार के अन्य सदस्यों के साथ प्रेम और सौहार्द का व्यवहार बनाकर रखना चाहिए। इससे वृद्धावस्था को सुखी बनाया जा सकता है।
5. वृद्धावस्था में मानसिक रूप से स्वस्थ बने रहना अति आवश्यक है। इसके लिए स्वयं के स्तर पर प्रयास करना चाहिए।

6. वृद्धावस्था में आर्थिक रूप से सशक्त रहने के लिए जीवन की प्रारंभिक अवस्थाओं में तैयारी पूरी कर लेनी चाहिए ताकि जरूरत के समय पैसों की कमी का सामना नहीं करना पड़े।
7. वृद्धावस्था में युवा पीढ़ी की सोच के साथ तालमेंल बिठाकर, व्यवहार में लचीलापन लाकर, परस्पर सहयोग की भावना रखते हुए जीवन को सफलता पूर्वक आनंद से जिया जा सकता है।
8. इस अवस्था में अपने अनुभवों के आधार पर पारिवारिक, सामाजिक , व्यक्तिगत समस्याओं के प्रति बेहतर समायोजन किया जा सकता है। नई परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालकर समस्याओं का सामना आसानी से किया जा सकता है |
9. वृद्धावस्था में व्यक्ति कर भूमिका में अनेक परिवर्तन हो चुके होते है। वह व्यक्ति जो अब तक दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहा था, अब वह दूसरों पर निर्भर रहने लगता है। इससे उसके अहं को चोट लगती है अत: इस समय सकारात्मक अभिवृत्तियों के साथ स्वयं को शारीरिक व मानसिक रूप से तैयार रखना आवश्यक है।
10. वृद्धावस्था को लेकर समाज में अनेक रूढिय़ा प्रचलित है जिससे उन्हें समाज व परिवार पर बोझ स्वरूप माना जाता है। इनके चलते वृद्वों का समायोजन प्रभावित होता है। यदि समय रहते इन रूढिय़ों को परिवार में उचित ढंग से नकारा जाए तो वृद्व भी सम्मान सहित परिवार में जीवन व्यतीत कर सकते है।

जरण (वृद्वावस्था) को प्रभावित करने वाले कारक :

वृद्वावस्था जीवन की अंतिम अवस्था है। खानपान में सुधार करके, आत्मनिर्भर बने रहकर, शरीर को अच्छे से देखभालकर वृद्वावस्था को अच्छे से जिया जा सकता है। यदि जरण के कारणों का सही ज्ञान हो जाए तो जीवन का प्रबंधन बेहतर ढंग से किया जा सकता है। इसके कारक निम्न प्रकार है :

1. **जैविक दैहिक कारक** - मनुष्य का शरीर अनेक कोषों से मिलकर बना है, आयु वृद्वि के साथ उसमें होने वाली बायोकेमिकल चक्रण की क्रिया रूक जाती है। जैसे हड्डियों का सख्त होना, खनिज लवणों का हड्डियों में जम जाना, खोखला होना, फ्रेक्चर की संभावना का बढ़ना। स्नायु तंत्र में होने वाले कई परिवर्तन भी इसके महत्वपूर्ण कारक है। इस समय मतिष्क का वजन कम हो जाता है, केंद्रीय नाड़ी संस्थान में परिवर्तन के कारण संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं धीमी हो जाती है तथा अधिगमन की योग्यता एवं बौद्विक क्षमताओं में कमी होती है। हृदय के वाल्व का मुलायमपन कम हो जाता है। थायराइड ग्रंथि से निकलने वाले थायरॉक्सिन हारर्मोन को कोशिकाएं ग्रहण करने में असमर्थ रहती है इससे चयापचय प्रक्रिया प्रभावित होती है तथा पोषक तत्व शरीर ग्रहण नहीं कर पाता। शारीरिक कमजोरी होने से अनेक बीमारियां शरीर को घेर लेती है।

2. **आर्थिक कारक** – पैसों की कमी से भी जरत्व की अवस्था शीघ्र आ सकती है क्योंकि शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य इसी से प्रभावित होता है ।पेंशन समय पर ना मिलने, दूसरों व संतान पर आश्रित होने से भी प्रभाव पड़ता है।

3. **सामाजिक कारक** – एकाकीपन , उपेक्षा , अवसाद ,लाचारी , तनाव भी समय से पूर्व जरावस्था ला देता है।

4. **मानसिक कारक** – जीवन को बोझ मानना , नकारात्मक विचारों वाले , समायोजन नहीं करने वाले ,सनकी, लापरवाह , व्यक्ति जल्दी जरा अवस्था को प्राप्त करता है।

इनके अलावा व्यक्ति का ऊर्जा स्तर, कार्य शैली, आहारचर्या, परिवारजनों का सम्बन्ध भी जरत्व के निर्धारक तत्त्व है।

16.5 वृद्धाश्रम की भूमिका

वृद्धाश्रम एक ऐसा बहु-निवास, नर्सिंग होम या घर है जहां दंपति जोड़े या एकल व्यक्ति एक छत के नीचे या अपार्टमेंट शैली में निवास करते हैं। यहां भोजन, स्वास्थ्य और अस्पताल की देखभाल के साथ-साथ मनोरंजन गतिविधियां जैसी विभिन्न सुविधाएं फ्री या सशुल्क प्राप्त होती हैं । भारत में वृद्धाश्रम के प्रकार :

भारत में वृद्धाश्रम तीन प्रकार के होते हैं–

पहला : जिनमें मुफ्त सुविधाएं उपलब्ध होती हैं, जो बेसहारा होते हैं। जिन्हें आश्रय,भोजन,कपड़े और चिकित्सा जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती है।

दूसरा : यहां देखभाल के लिए शुल्क देना होता है। आजकल यह भारत में बहुत लोकप्रिय हैं। जिनमें वृद्धावस्था को सम्मानपूर्वक जिया जा सकता हैं। इनमें वृद्ध स्वयं जागरूकता व सुरक्षा के लिए आकर या परिवार वालो की सहमति से भी रहते हैं।

तीसरा : इस प्रकार का वृद्धाश्रम डे केयर सेंटर की तरह होता है जहां दिन के समय देखभाल की सुविधा प्रदान की जाती है।

वृद्धाश्रम की प्रासंगिकता :

वरिष्ठ नागरिक अपने सभी उम्र के साथियों के साथ किसी भी मजबूरी के बिना स्वतंत्रता पूर्वक सृजनात्मक जीवन जीते हैं। यहाँ उन्हें अपने दुख के साथ ही खुशियों को साझा करने के लिए एक स्थान मिल जाता है । कर्मचारियों का अच्छा व्यवहार,अच्छी सेवा से जीवन का अंतिम समय परिजनों के बिना भी खुशी-खुशी निकल जाता हैं।

निम्नलिखित कई कारणों से वृद्धाश्रम की भूमिका समाज में बढ़ती जा रही है | परिवार मूल्य प्रणाली के बदलने के कारण बच्चों की उपेक्षा व शोषण के शिकार होने के कारण अवसाद, अकेलेपन तथा स्वास्थ्य समस्या से उभरने के लिए, आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाने से स्वयं की देखभाल करने में असमर्थ होने पर, युवाओं के रोजगार की तलाश में प्रवासन कर जाने से , युवा संतान के विदेश में बस जाने के कारण, युवा संतान के माता- पिता से समायोजन नहीं कर पाने से, संतानहीनता के कारण असहाय हो जाने से,एकल परिवार के अस्तित्व में आने तथा संयुक्त परिवार के टूटने के कारण

सामाजिक और आर्थिक कारणों से सुरक्षा की दृष्टि से भी वृद्धाश्रम की प्रासंगिकता अधिक हो जाती है।

वृद्धाश्रम कैसा व किस स्थान पर हो : -

वृद्धाश्रम एक शांत एक प्रदूषण मुक्त वातावरण और आरामदायक आवास परियोजना के रूप में अन्य सभी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने वाला होना चाहिए। यह लोगों के प्रकार के आधार पर ग्रामीण या शहरी स्थिति में स्थित हो सकता है। वृद्धाश्रम लोगों के सामाजिक और आर्थिक स्थिति के आधार पर स्वतंत्र कमरे, सामुहिक आवास या कॉटेज हो सकता है। सभी कमरे अच्छी तरह हवादार होने चाहिए। संभवतया सभी सुविधाओं को भूमि तल पर होना चाहिए। ऊपरी मंजिलों का निर्माण किया जाना है तो एक आसान रैंप बना होना चाहिए ताकि पहिया कुर्सी को आसानी से ले जाया जा सके। साथ ही सुविधाजनक रेलिंग भी सुरक्षा के हिसाब से बनी होनी चाहिए। शौचालय कमरों और बाथरूम में फिसलन वाली फर्श नहीं होनी चाहिए ,तथा उपयुक्त रेलिंग समर्थन के लिए प्रदान की जानी चाहिए। अल्पकालिक उपचार की जरूरत वाले बीमार लोगों के रहने की अलग व्यवस्था होनी चाहिए। चिकित्सा देखभाल के साथ मनोरंजन के कमरे का भी निर्माण किया जाना चाहिए , जैसे मनोरंजक और पढ़ने की सुविधाएं, टीवी, वीडियो प्लेयर, समाचार पत्र और किताबें उपलब्ध होनी चाहिए। मानसिक स्वास्थ्य के लिए योगा की कक्षा भी नियमित रूप से होनी चाहिए। उन्हें धार्मिक क्रियाओ में सक्रिय रखा जाना चाहिए। आज के संदर्भ में कंप्यूटर की सुविधा विशेष रूप से देने की व्यवस्था की जानी चाहिए ,टेलीफोन और संचार के अन्य साधन भी प्रदान किये जाने चाहिए। मोबाइल स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली , एंबुलेंस, नर्सों और अच्छी तरह से संतुलित भोजन का प्रावधान होना चाहिए। वृद्धाश्रम सुरक्षित होने के साथ ही सुखद वातावरण होना चाहिए जहां वे एक दूसरे के साथ अपने सुख और दुख साझा कर सुरक्षा और दोस्ती की भावना का अनुभव कर सके।

16.6 सारांश

वैज्ञानिक शब्दावली के अनुसार जब हमारी कोशिकाओं में डी.एन.ए. डी-ऑक्सीराइबो न्यूक्लिक एसिड की अतिरिक्त मात्रा इकट्ठी हो जाती है तो यह मात्रा ऐसे स्तर तक पहुँच जाती है जिससे कोशिका का सामान्य कार्य अवरुद्ध हो जाता है। इसके फलस्वरूप हम धीरे-धीरे बूढ़े होते चले जाते हैं। एक शोध के अनुसार बुढ़ापा आने का कारण यह है कि जब कोशिकाओं में क्रोमोसोम गुणसूत्रों के सिरों को बाँधने वाले डी.एन.ए.के छोटे-छोटे टुकडे जिन्हें टेलीमीयर्स कहा जाता है हर बार कोशिकाओं के विभाजित होने के साथ-साथ सिकुडने लगते हैं कोशिका विभाजित होना बन्द कर देती है | वह शिथिल होकर निर्जीव हो जाती है। बुढ़ापे में शारीरिक परिवर्तनरूप बुढापा प्राणिमात्र के जीवन से अविच्छिन्न रूप से जुडा हुआ एक चरण है, इसलिए युवावस्था से वृद्धावस्था का परिवर्तन सर्वत्र चर्चित रहा है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ हृदय थोडा बड़ाहो जाता है फेफडों की श्वसन क्षमता में लगभग 40 प्रतिशत की कमी आने लगती है। मस्तिष्क में कुछ कोशिकाएँ न्यूरौंसद्ध में कमी आने लगती है और दूसरी नष्ट हो जाती है | गुर्दे धीरे-धीरे अपनी कार्य क्षमता खोने लगते हैं. वे रक्त की अशुद्धियों को नहीं निकाल पाते तथा मूत्राशय की क्षमता भी गिरने लगती है। शरीर में वसा इकट्ठी होने लगती है। स्त्रियों में यह वसा नितम्बों और जाँघों में इकट्ठी होती है, पुरुषों में वसा के कारण तोंद निकल आती है। सत्तर की उम्र तक पहुँचते ही हमें वस्तुओं की बारीकियाँ दिखाई नहीं देती। बुढ़ापे में सुनने की क्षमता कम होने लगती है | पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा यह क्षमता ज्यादा गिरती है।

लंबाई हड्डी इस अवस्था में ऑस्टियोपोरोसिस आर्थराइटिस और हड्डियों व जोड़ों की कमजोरी के रूप में रोगों के लिए अधिक से अधिक संवेदनशीलता हो जाती है।

16.7 मूल्यांकन प्रश्न

1. वृद्धावस्था के प्रति एरिक्सन का संप्रत्यय बताइए ?
2. वृद्धावस्था में जरण के प्रति आशावादी सोच क्या है ?
3. वर्तमान समय में वृद्धाश्रम की प्रांसगिकता पर अपने विचार लिखिए।